२१८
श्री

ॐ

श्री भूमा-विद्या

(ब्रह्मविद्या)

छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय

सातवें पर प्रवचन

स्वामी श्री त्रिवेणी पुरीजी महाराज

प्रकाशक

मन्त्री स्वामी श्री पूर्णानन्द शास्त्रीजी

श्री प्रकाश संन्यास आश्रम

कालीमाटी डोल

काठमाण्डू, नेपाल

प्राप्तिस्थानः–

१ श्री प्रकाश संन्यास आश्रम

कालीमाटी डोल

काठमाण्डू, नेपाल । फोन ४१३८११

२. श्री संन्यास आश्रम

संन्यास मार्ग

कनखल –२४९४०८

(हरिद्वार) उ: प्र. फोनः ३७४

३. वेदान्त कुटीर 'विपुल'

१७३ गरोडिया नगर

घाटकोपर

बम्बई — ४०००७७ फोनः ६७८३७३

प्रथम आवृत्ति २०४५ अक्षय तृतीया

मूल्य — ………… (प्रकाशन विभाग संचालनार्थ)

मुद्रक:- विजय प्रिन्टिङ्ग प्रेस 'रामशाह पथ' पुतली सडक काठमाण्डू, नेपाल ।

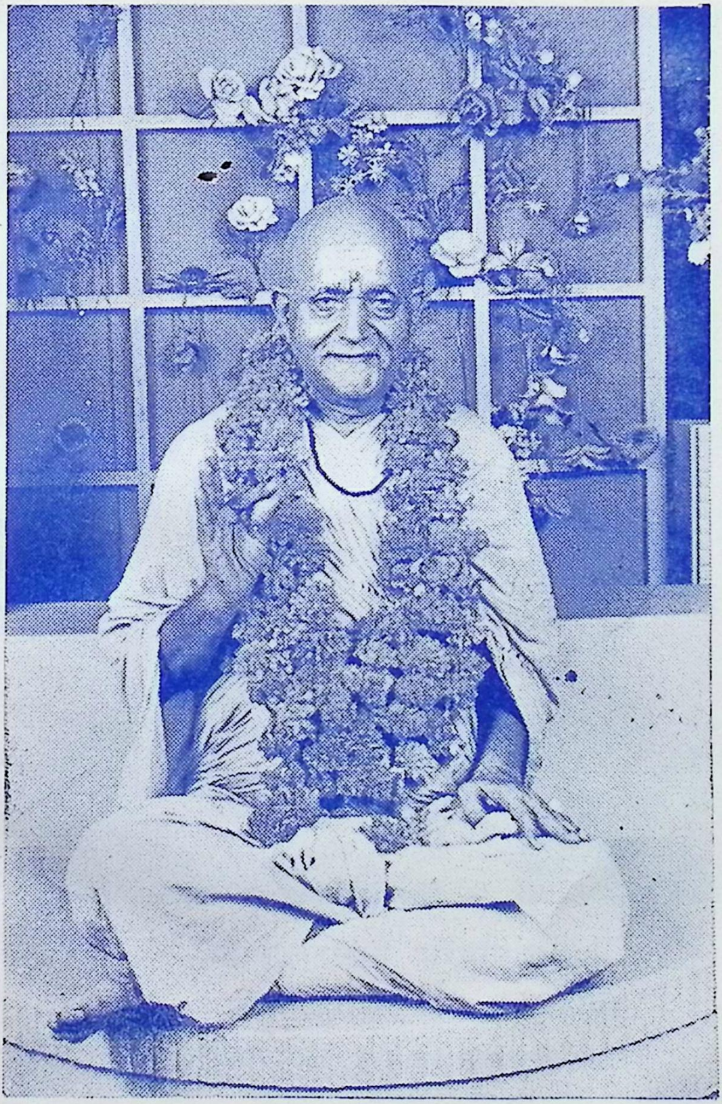

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
श्री १०८ स्वामी त्रिवेणी पुरी जी महाराज

5001

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी
महेश्वरानन्द पुरी जी महामण्डलेश्वर

2584529C
639 A

ॐ

श्री परमात्मने नमः

श्री भूमा–विद्या

छान्दोग्य उपनिषद् अ. ७

प्रस्तावना

भारत भूमि प्राचीन काल से हि तयोभूमि एवं ज्ञानभूमि के रूप में प्रसिद्ध रही है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

(मनुस्मृति अ. २/२०)

यह मनु की दिव्य पवित्र घोषणा इस अभिप्राय को स्पष्ट करती है कि यह भारत वर्ष कभी अन्धकार में नहीं था। यह सर्व देशों का गुरू था।

मनुष्य प्राणी का दो प्रकारका जीवन है–
बाह्य जीवन और आन्तर जीवन। बाह्य जीवन यह लोक जीवन है जिसमें अहन्ता ममता, काम, क्रोध, लोभ, मोह नानाविध चित्त विकार रजोगुण और तमोगुण के आजकल के दुर्दम आतंकवादियों की तरह विचरण करते है, अतः वेदोंमें परा और अपरा दो प्रकार से विद्या का कथन मिलता है–

''द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।।

(मुण्डकोपनिषत् १/१/४)

महर्षि अङ्गिरा शौनक को उपदेश देते हुए लोकजीवन को पवित्र करने के लिये अपरा विद्या का कथन भी करते है।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्या एताश्चतस्त्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ।।१।।

आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।

अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ।।२।।

अपरा विद्या के अन्दर ही समग्र कर्म मीमांसा है, जिसके द्वारा जीव महान अभ्युदय करके ब्रह्मलोक तक विविध भोगों को भोगता है किन्तु मोक्ष नहीं कर सकता क्यों कि जाल में फँसी हुई मछली जहाँ भी जायेगी जाल में ही रहेगी। जाल जब तक नष्ट नहीं होगा तब तक यह मछली जाल बन्धन से मुक्त नहीं होगी । इसी प्रकार जीवात्मा का अविद्या सहित सूक्ष्म शरीर सुदृढ जाल है । यह किसी भी कर्म या योगाभ्यास से कट नहीं सकता है, अतः अपरा विद्या के द्वारा मोक्ष हो नहीं सकता ।

अतः वेदों में परा विद्या का प्रतिपादन किया गया है जिसके द्वारा जीवों को परमात्मतत्त्वका बोध होता है । अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह परा विद्या क्या है जिसके द्वारा जीवों को परमात्मतत्त्वका बोध होता है । तो कहना होगा कि यह उपनिषद् विद्या ही वास्तव में पराविद्या है, । "उपनिषाद्यति सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति संसारकारणभूतांचाविद्यां शिथिलयति ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्"

यह एक ऐसी विद्या है जो संपूर्ण दुःखों की जड़ संसार को नष्टकर देती है, क्यो कि यह संसार अविद्या के आश्रय में ही प्रतीत हो रहा है, अविद्या की शिथिलतासे संसार स्वयं शिथिल होकर नष्ट हो जाएगा, अतः मुमुक्षु ब्रह्मविद्या उपनिषद् के द्वारा ब्रह्मात्मबोध प्राप्त कर अपने आत्मा के मोक्ष में समर्थ होता है ।

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्दधीत आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।।

(मुंडकोपनिषद् २/२/३)

महर्षि कहते हैं हे सोम्य उपनिषद् विद्यारूप धनुष पर ब्रह्माकारवृत्ति रूप बाणको चढाकर बढी सावधानी से ब्रह्मलक्ष्य का भेदन करो इसके वेधन से ही तेरा जन्म मरण का चक्र खतम हो जायगा। दूसरा मन्त्र धनुष बाण क्या है इस अर्थ को स्पष्ट करता है

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

(मुण्डकोपनिषद् २/२/४)

भावार्थ यह कि ओंकार धनुष है जीवात्मा ही बाण अर्थात् ब्रह्माकारवृत्ति के द्वारा जीवात्मा रूप बाण को ब्रह्मरूप लक्ष्य में सावधानी से श्रद्धाशील मुमुक्षु विलीन करे।

यह उपनिषद विद्या अनेक उपनिषदों में बडे विस्तार से स्पष्ट है किन्तु फिर भी छान्दोग्य और बृहदारण्यक दो उपनिषद जैसे अपने आकारमें विशाल है वैसे ब्राह्मी विद्या में भी विशाल है। जो मुमुक्षु गुरुमुख द्वारा इन उपनिषदों का अध्ययन किये है वे ही इनकी महत्ता को जानते हैं। छान्दोग्य उपनिषद के षष्ठ अध्याय में तत्त्वविद्याका प्रख्यापन किया जिसके द्वारा मुमुक्षु ब्रह्मबोध प्राप्त करता है, जैसे छठवां मंत्र स्पष्ट करता है।
तस्य क्व मूलं स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा

(छांदोग्योपनिषद् ६/८/६)

उद्दालक महर्षि प्रिय पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश करते हुऐ निर्देश करते हैं कि हे सोम्य सम्पूर्ण चराचर विश्व सत् के आश्रय मे है यह सत् ही विश्व का जीवन है

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति

(छांदोग्योपनिषद् ६/८/७)

इस मंत्र द्वारा गूढ रहस्य का उपदेश किया यही मोक्ष कारणभूता परा विद्या है, जिस के अज्ञान से देवर्षि नारद अनेक विद्याओं का ज्ञाता होने पर भी अकृतार्थ है, सदात्मैकत्व का गूढ विचार ही षष्ठाध्याय का विषय है किन्तु नाम से लेकर प्राण तक जितने विकार है उनका विचार करते हुए भूमा ब्रह्मका विचार सप्तम अध्याय में है।

देवर्षि नारद सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञाता होने पर भी शोक मोह से मुक्त नही हो सका अतः उसको मनमें स्वभाव से विचार उडा कि शोक मोहवाला ज्ञानी नही होता उस समय ब्रह्माके पुत्र महर्षि सनत्कुमार महान ब्रह्मवेत्ता थे। देवर्षि नारद ने उनको पास जाना ही अच्छा समझा नारद को हृदय में बहुत सी विद्याओं के जानने का अहंकार नहीं था और नहीं दम्भ था।

छांदोग्य सप्तम अध्यायमे देवर्षि नारदका सनत्कुमार के पास जाना तथा ब्रह्मविद्या की प्रार्थना करना प्रसिद्ध है,

"ॐअधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच"

(छांदोग्य उपनिषद् ७।१।१)

परीक्ष्य शिष्य उपदेष्टव्य इस महदुक्ति के अनुसार ही भगवान सनत्कुमार ने कहा हे नारद तुम जो जानते हो उसको मेरे समक्ष स्पष्ट करो छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय में नारद ने अपनी विद्याओं की पूरी सूची सनत्कुमार के समक्ष रखी। भगवान सनत्कुमार ने कहा हे नारद यह सब शब्द मात्र है, हे नारद इस शब्द को ब्रह्म समझ कर उपासना करो। इस प्रकार उपदेश करते हुए अन्त में भूमाब्रह्मका उपदेश किया है जिसका सप्तम अध्याय में विस्तार से वर्णन है। प्रकाश संन्यास आश्रम काठमाण्डू नेपाल में मैं ने यथासम्भव योग्यता से उस भूमा के विषय मे जो प्रवचन १९८५ में किया था वह सब मेरे प्रवचनोंका बडी निपुणता के साथ लिखनेवाली प्रिय शिष्या श्रीमती राजेश्वरी आनन्द है। इसने प्रवचनोंको लेख रूपमे उतारने में बहुत ही श्रम किया है अतः प्रिय शिष्या राजेश्वरी आनन्द (ग्वालियर निवासिनी) को मेरा हार्दिक शुभाशीर्वाद एवं धन्यवाद है।

सुश्री प्रिय बेटी श्री मंजु डाक्टर ने इस उपनिषद् के अनुवाद को देखा बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की तथा कहती है कि श्रद्धेय स्वामी जी ! आप की आज्ञा होतो मै इस प्रवचन का गुजरार्ती में अनुवाद कर के गुजराती जनता के कल्याणार्थ पुस्तकाकार में प्रकाशित कर देती हूं, अतः प्रिय बेटी ने गुजराती में पुस्तक प्रकाशित कर जनता का बहुत ही सुमङ्गल. किया है इस के लिए प्रिय बेटी मंजु डाक्टर को बहुत २ धन्यवाद एवं हार्दिक शुभाशीर्वाद है। प्रिय शिष्य

पटेल का और सुश्री चन्द्रिका पटेल का भी बहुत सहयोग है उनको तथा श्री एम. आई पटेल प्रिंसिपल के. ओ. शाह आर्टस एण्ड कमर्स कालेज धोराजी का भी बहुत सहयोग है उन सब को भूरि २ प्रशंसा करते हुए हार्दिक धन्यवाद एवं शुभाशीर्वाद है।

इस हिन्दी प्रवचन का प्रकाशन कार्यभार काठमाण्डों निवासी स्वर्गीय श्री राधाकृष्णजी काब्रा के सुपुत्र श्री प्रेमनारायण काब्राजी ने लेकर जनता के हित के लिए भारी उपकार का कार्य किया। इस लिए उनको और उनके सकल परिवारको हार्दिक धन्यवाद देते हुए शुभ मङ्गल की कामना करता हूं। पुनः इसके मुद्रण-संशोधन मे सहयोग देनेवाले प्रा. श्री गोपाल निधि तिवारीजी के प्रति भी शुभ-कामना प्रकट करता हूं। आशा है कि पाठकगण भूमा विद्या की महिमा को समझ कर अभ्यास द्वारा अपना उद्धार करेंगे।

सतामनुचरः

स्वामी त्रिवेणी पुरी

२०४५ अक्षयतृतीय

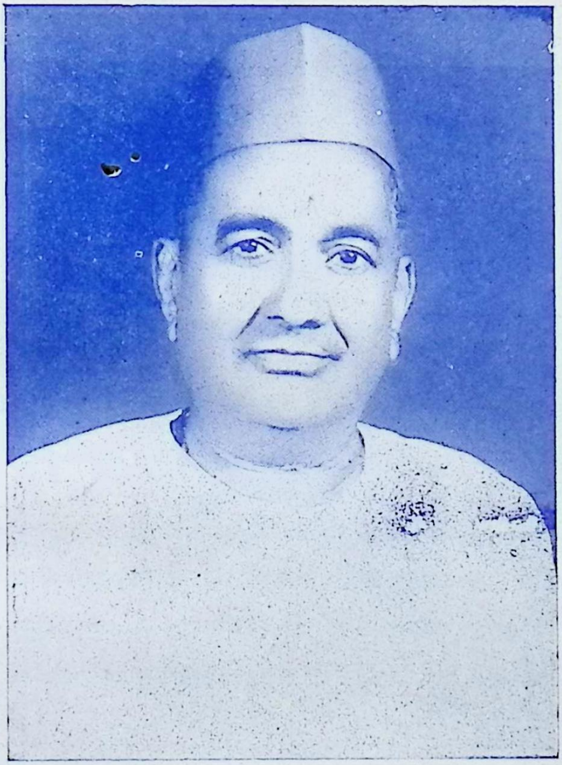

धर्मनिष्ठ स्व. श्री राधाकृष्ण कावराजी
की पुण्य स्मृति में समर्पित

परा चैवाऽपरा चापि
विद्या द्वेधा विचारजा
वेदितव्या विशेषेण
चात्मनः शुभमिच्छता ।।१।।

नारदः सर्वविद्यानां
ज्ञाता सन्नपि शोकवान्
शोकमोक्षाय वै चिन्तन्
भूमविद्यामवाप्तवान् ।।२।।

विचार करने पर दो प्रकार की विद्या परा और अपरा स्पष्ट होती हैं। अपना शुभ चाहनेवाले मनुष्य को विशेष रूप से यह विद्या जाननी चाहिए।।१।।

नारद सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता था, फिर भी शोक ने उसको छोडा नही। अतः उसने शोक से मुक्त होने के लिए चिन्तन करके (ब्रह्मवेत्ता भगवान श्री सनत्कुमार से) भूमा नाम की परा विद्या को प्राप्त किया। (तब अज्ञान की निवृत्ति द्वारा तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार होते ही नारद शोक मोह से मुक्त हो गया) ।।२।।

ॐ

छान्दोग्य उपनिषद् सातवां अध्याय

प्रवचन सं. १

२०-४-८५

"ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ।"

(छान्दो. ७।१।१)

छान्दोग्य उपनिषद के इस सातवे अध्याय में भूमा ब्रह्मका उपदेश है। नारद ऋषि सब विद्याओं में पारंगत है परन्तु शोक को पार नहीं कर पाते। उन्हो ने सुनाथा कि "शोकं तरति आत्मवित् ।" शोक से केवल आत्मवेत्ता ही पार हो सकता है। जब तक बुद्धि के अन्दर यह विचार नही आता कि यह प्रपञ्च मिथ्या है, झूठ है, तब तक चित्त के विकार शान्त नहीं हो सकते। "सत् असत् विवेक करना चिन्तन है।" अपना बेटा भी यदि झूठ बोलने लग जाता है तो माता पिता का विश्वास खो बैठता है। मनुष्य का मूल्य विश्वाससे ही है परिवार समाज, गाँव औरराष्ट्र का विश्वास सत्य के द्वारा ही प्राप्त होता है। "**सत्यमेव जयते नाऽनृतम्**" जय सदा सर्वत्र सत्य की ही है। झूठ कभी विजयी नही हो सकता। अपना शरीर ही जब यह मालूम पड़ जाता है कि असत् है तो इस से कोई प्यार नहीं करता। संत् आत्मरूप है जिस के रहने से असत् शरीर भी सत् जैसा लगता है। प्रिय लगता है। इसी उपनिषद के छठवें अध्यायमें महर्षि उद्दालक अपने प्रिय पुत्र श्वेतकेतु को आत्म विद्या का उपदेश करते हैं। इस सातवें अध्याय में भूमा ब्रह्म का उपदेश है। परिवार भी भूमि समझो माता पिता क्या है? चलती फिरती भूमि है।

ज्ञानवान महामना होता है। गम्भीर हो जाता है। संसार के शोक मोह से वह विचलित नहीं होता। वेद के अर्थ को जानना और उस का व्याख्यान करना दोनो ही कला जिस में हों वह "अनूचान" है।

स्तब्ध अविनीत स्वभाव वाला है। परस्पर विचार करने का उद्देश्य हृदयको कोमल बनाना है। गीता में आया है।

"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।"

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

गीता अ. ३।३६

अर्जुन भगवान कृष्ण से पूछता है। अर्जुन का प्रश्न बड़ा महत्त्व पूर्ण है कि ऐसा कौन है ? जिस के द्वारा यह प्राणी न चाहते हुए भी पाप कर बैठता है। भगवान कहते है—

"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥

गीता अ. ३।३७

यह काम और क्रोध ही मनुष्य के महान शत्रु हैं जिन की उत्पति रजोगुण से होती है। यह दोनो ही मनुष्य की मति को भ्रान्त करते है। इन दोनो की शक्ति महान है। यह मतुष्य को पाप की ओर खींच कर ले जाते हैं। इन की उत्पति रजोगुण से होती है। भोग भोगने से ही मन को शान्ति नहीं मिलेगी। भोग तो पशु भी करते हैं। "गहना कर्मणो गतिः।" कर्म की गति वड़ी गहन है "तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये" मुमुक्षु जब शुद्ध चित्त हो जाता है तब वह सत् चित् आत्मा की शरणागति प्राप्त करता है।

श्वेताश्वेतर उपनिषद का मंत्र है **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये"॥ श्वेता श्वतरोपनिषद् ६।१८** जो परमात्मा सव से पहले अपने नाभि कमल से ब्रह्मा

को उत्पन्न करते हैं। उन्हे समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करते हैं और जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए अपने भक्तों के हृदय में शुद्ध बुद्धि को प्रगट करते हैं। मुमुक्ष उन सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरणागति प्राप्त करता है। मोक्ष के लिए जो इच्छा करे वह मुमुक्षु है। कर्म उपासना और ज्ञान तीनो की आवश्यकता है। मन की मलिनता और चंचलता को मिटाने के लिए कर्म और उपासना आवश्यक है। इस से चित्त की शुद्धि और निश्चलता होती है। शरीर महत्त्व पूर्ण है उस से महत्त्व पूर्ण इन्द्रियां हैं। इन्द्रियों से भी अधिक महत्त्व पूर्ण मन है। जीवन को नीरस मत बनाओ सरस बना रहने दो। माता पिता को भी वडे विवेक से चलना पड़ता है। हृदय को सुन्दर बनाओ तभी परिवार मे सुख शान्ति रह सकती है। मूर्ख के साथ मूर्ख जैसा व्यवहार मत करो। चेतनरूपी विद्युत के करंट से सब फ्यूज जोड़ते रहो। किसी के पास पहुंचना कुछ और होता है और मिलना और ही होता है। जब तक ज्ञान नहीं होगा चेतन का करंट नहीं लगेगा तब तक मिलना नहीं होगा। ज्ञान ही ब्रह्म है। "**विज्ञानं ब्रह्म**"

यह सारा जगत जिस के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। जिस की प्रियता से प्रिय लग रहा है उस तत्त्व का चिन्तन करो। यह शरीर जङ्गल है इस में जो चेतना खो गया है उसको प्रगट करो। महान आदेश के द्वारा उस महान ब्रह्म को प्रगट करो। उस चेतन की खोज करो। जब हम ठीक हैं तब तक विचार और ज्ञान ठीक रहता है। जो "मैं" को ही भूल गया 'अहं' को ही भूल गया वह 'मम' 'मेरा' क्या समझेगा। अन्य को क्या समझेगा। जो इस 'अहं' को जान जाता है वही सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता आत्मविद् हो जाता है। "**योमामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्**" गीता अ. १०।३५ गीता में भगवान स्पष्ट करते हैं कि जो मुझे अज अनादि और सब लोकों का सब जीवों का ईश्वर जानता हैं "असंमूढा स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते" वह ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता हैं सब पापों से मुक्त हो जाता हैं।

व्यवहार करो पर शोक मोह को सिर पर मत चढ़ने दो। ज्ञान को मत बिगड़ने दो। स्वयं की ओर दृष्टि करने से ही शोक मोह को पार किया जा सकता है। जिज्ञासु कभी कठोर नहीं हो सकता। जाग्रत चित्तका लक्षण सत्य

की जिज्ञासा उत्पन्न होना है। उस सत्य को अज अजन्मा अनादि और सबका ईश्वर समझो। अनेक आकारोंकी कल्पना मिथ्या है। ''वाचारम्भणं विकारो'' नाम रूप केवल वाणीका विलास है। मृत्तिका ही सत्य है। देखने की चीज से देखने का व्यवहार करो। यह जीवन का ड्रामा है अपना पार्ट ठीक से करो। सत्य को स्वीकार करो और मिथ्या से व्यबहार करो। सत्य तत्त्व आत्मा ही है। इसे समझो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं २

२१-४-८५

ॐ ऋग्वेदंभगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थ मितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवंनिधिवाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यांब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।।''

(छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)

उपनिषद के छठे अध्याय मे तत्त्वका विचार किया। तत्त्व वह है जिसके विना कुछ रह नहीं सकता। जैसे गुलाब का फूल है इस में रस रूप वह परामात्मा ही तत्त्व है। उस के विना फूल निस्सार हो जाता है। इसी प्रकार इस सारे ब्रह्माण्ड को गुलावका फूल ही समझो। इस के अन्दर एक सत् है जो इसका अधिष्ठान है। उसी की सत्ता में यह अमृत दीखता है। **''सदेव सोम्येदमग्र आसीत्''** सद् ही इसका कारण है। कारण के बिना कार्य सम्भव हो नहीं सकता। वीज में बर का वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता किन्तु क्या उस में वह है ही नहीं ? यदि है नहीं तो व्यक्त हो नहीं सकता। इस लिए यह कहना पड़ता है कि उत्पत्ति से पहले वह कारण रूप में था। उत्पत्ति के समय भी कारण है और लय के पश्चात् भी कारण रहता है। इस प्रकार आदि

मध्य और अवसान मे सब कारण ही है। परमार्थ तत्त्व एक ही है। कार्य कारण सब वही है। जगद्गुरु शंकराचार्य जी कहते हैं कि असत् का आधार सत् है। सत् के बिना असत् टिक नहीं सकता। गीता में भी कहा है **"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि ;।।** गीता अ. २।१६ यहाँ इस सातवें अध्याय में इसी तत्त्वको भूमा रूप में समझाया है। प्राण इन्द्रियां मन सभी शक्तिशाली हैं पर वास्तविक शक्ति तो उस परामात्मा की है। जब तक इस में वह सत् तत्त्व विद्यमान है तभी तक इन की शक्ति है। सबका आधार वह भूमा है। भूमा शब्दका अर्थ व्यापक है। सत् चित् आनन्द रूप आत्मा व्यापक रूप भूमा है। यह प्राण इन्द्रियां मन इस व्यापक में समाये हुए हैं। इसी की सत्ता से क्रियाशील हैं। फूल में भी जीवन दीख रहा है पर जड़ है। इस में चेतनभाव नहीं। पर शरीर में चेतनताका भान है। मोक्षका उपदेश चेतनता में ही दिया जा सकता है। जहाँ चिदाभासका सम्बन्ध होगा वहीं बन्धन भी दीखेगा। जीवभाव प्रगट होगा तब इसी जीव भाव में बन्धनकी प्रतीति होती है। इस लिए इस में मोक्षकी व्यवस्था है। यह जीवात्मा अनेक योनियों में भटकता हुआ जब मनुष्य शरीर में पहुंचता है तब मोक्षका अधिकारी बनता है। बृहदारण्यक श्रुति है "अथात्मनिर्देश .... नेति नेति" आदेश माने उपदेश। नाम रूप से प्रगट जो भी है वह आत्मा नहीं। तत्त्व सदा नाम रूप से भिन्न है, परे है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में नाम रूप से जो प्रतीति हो रही है इसका आधार चेतन है। जिसको कर्मेन्द्रियां पकड़ती हैं वह आत्मा नहीं हो सकता। इन्द्रियां साकार पदार्थ को पकड़ सकती हैं। निराकार तत्त्वको इन्द्रियां नहीं पकड़ सकती। क्यों कि इन्द्रियां स्वयं उस तत्त्व की पकड़ में हैं। **"न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनोन विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ।।"** केनोपनिषद् खण्ड १।३। बिना अधिष्ठान शक्ति के कर्मेन्द्रियां कुछ नहीं कर सकती। चेतन इनको पकड़ेगा तभी यह इन्द्रियां कुछ काम करेंगी। नहीं तो यह कुछ नहीं करेंगी।

याज्ञवल्क्य ऋषि जनक को उपदेश करते हैं

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि

शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः ।।

(बृहदारण्यकोपनिषद् अ. ४।२।४)

राजन् यह आत्मा विनाशी नही अविनाशी है । इस का किसी के साथ सम्बन्ध नहीं । यह बन्धन में दीखता हुआ भी सदा मुक्त है । शरीर के कण २ में ओत प्रोत होते हुए भी इस से सदा भिन्न है । जैसे दूध में मक्खन । मृत्यु देवता ने जरा सा हिलाया कि मक्खन अलग हो गया । खाली हंडी रह गई । दीखने मात्र का सङ्ग है "असितो न व्यथते" इसी सत् को गीता में स्पष्ट किया ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

(गीता अ. २।२३)

मनुष्य को भय दूसरे से लगता है । भूतों का पंचमहा भूतो का बंगला मिला यदि इस की दीवारें खोदने लगोगे तो मालिक शीघ्र खाली करवा लेगा । महर्षि कहते हैं हे जनक अपने को पहचान तू देह नहीं इस देह से परे है । इतना जान लेने पर तू भय से मुक्त हो जाएगा । अभय पद को प्राप्त हो जाएगा । मृत्यु का भय प्राणि मात्र को है । जन्म जात बच्चे को भी यह भय है क्यों कि यह पहले भी मृत्यु की मार खा चुका है । कई बार मार खाकर आया है । इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्जन्म है । अमर होते हुए भी अमरत्व को नहीं समझ रहा । इस लिए भयभीत है । ब्रह्मविद्या का लक्ष्य अभय करना है । सब से प्रबल भय मृत्युका ही है । भूमा अक्षय है । निरतिशय तत्त्व है । न कम न अधिक सातिशय वस्तु आकार वाली होगी तथा विकारी होगी । परन्तु इस आत्म तत्त्वमें कोई आकार नही । सब आकार इसी में हैं पर यह स्वयं आकार रहित है विकार रहित है । जब तक बाहर के आकार मे घुम रहे हैं तब तक भेद दीखेगा । परन्तु तत्त्व के भितर प्रवेश करने पर, रसात्मा में पहुंच जाने पर भेद नहीं रहता । जैसे किसी शाखा के आधार के द्वारा चन्द्रमा को

लक्ष्य किया जाता है। इसी प्रकार इस शरीर इन्द्रियोंकेद्वारा उस तत्त्वका निर्देश किया जाता है। आत्मा उत्कृष्ट है। दीखने वाला तत्त्व अपकृष्ट है। पंचभूतो का सार रूप यह शरीर है। यहाँ यह पचंभूत इतने परिशुद्ध रूप में आगये कि इन मे चेतन तत्त्व दीखने लगा। "**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तुसः ।। गीता अ.** ३।४२,, जिन अर्थो से इन्द्रियाँ बनी है वह उन अर्थो से श्रेष्ठ हैं। इन इन्द्रियौं में अर्थो को पकडने की शक्ति है। इन्द्रियो से श्रेष्ठ मन है। मन ठीक होगा तो इन्द्रियां ठीक काम करेगी मन अस्त व्यस्त होने से इन्द्रियाँ की गति भी अस्त व्यस्त हो जाती है। इस लिए इस मन की रक्षा करो। विवेक के द्वारा सत्यको पकडने का प्रयत्न करो। वैराग्य से असत से हटो। मनका आकर्षण स्वभावतः असत की ओर है विवेक वैराग्यसे मनको स्थिर करो।

मन से श्रेष्ठ तत्त्व बुद्धि है। बुद्धि निश्चय करती है। मन संशय प्रधान है। केवल मन से चलने वाला सदा संशय में जीता है। निश्चय होने पर ही चंचलता नष्ट हो कर स्थिरता प्राप्त होती है। "**यो बुद्धे परतस्तु सः**" बुद्धि स्थिर होने पर वह आत्मतत्त्व दिखाई देता है क्यों कि वह बुद्धि से भी परे है। बुद्धि स्थिर होने पर ब्रम्हाकार वृत्ति बनती है। मुमुक्षु सदा मन बुद्धि और इन्द्रियो का संयम करे। संयम से शरीर भी स्वस्थ रहेगा। मन बुद्धि भी स्थिर रहैंगे। तब चेतन आत्मा की ओर वृत्ति बनेगी आत्मा में प्रवेश होगा। "**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्**"

नारद देवर्षि हैं, सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञाता हैं। कृतकृत्य हैं परन्तु फिर भी शोक में हैं। मर्यादा का वर्णन है, बिचार है। अपरा विद्या में लोक स्थिति की मर्यादा है। इस लिए बुद्धिमान को इस बिचार को पकडना आवश्यक है। उपनिषद में दो प्रकार की विद्याओं का वर्णन है परा विद्या और अपरा विद्या।

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म
यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापराच ।।

(मुंडकोपनिषद १।१।४)

अपरा विद्या में अन्वीक्षिकी विद्या अर्थात् तर्क विद्या जिस के ज्ञाता गौतम और कणाद ऋषि माने जाते है। मानव का मन तर्कशील हैं इस विद्या में विज्ञान का विचार किया है। वेद विद्या त्रयी विद्या है। इस में मानव जीवन के उत्थान की विद्या है। अपना कर्त्तव्य ठीक करने से मानव की उन्नति होती है। सत्य असत्य का निर्णय करने वाली महान शक्ति सदा हमारे साथ है। उस के सामने सदा सच्चे बनो। अन्तरात्मा की वाणी की उपेक्षा ही पाप है। वार्त्ता-विद्या अर्थाऽनर्थ विद्या। शब्द के अर्थ की व्याख्या करना। लोक में वाणी का बडा महत्त्व है। दण्डनीति राजनीति में न्याय अन्याय का विधान है। यह चार विद्याएँ लोकजीवन को व्यवस्थित करती हैं। माया नगरी मनुष्य को जोंक की तरह चिपकती है। असङ्ग भाव जोंक को चिपकने नहीं देता। इस से बचने के लिए परा विद्या है। अपनी आत्मा की ओर ले जानेवाली विद्या। मुमुक्षु का सब से बडा कर्त्तव्य अपने स्वरूप को जानना है।

महर्षि नारद अपरा विद्या के महान पण्डित होते हुए भी परा विद्या के अभाव में दु:खी थे। तो साधारण जीव का क्या हाल होगा। नारदोपाख्यान के द्वारा नारद को निमित्त बनाकर भगवान सनत्कुमार मुमुक्षु को आत्मा का भूमा ब्रह्म के रूप में उपदेश करते हैं। गुरुमुख से ही श्रुति का उपदेश फलदायी होता है। मुमुक्षु इस बात का विवेक करे कि यह शरीर भी इस को कर्मानुसार प्राप्त होता हैं। इस लोक अथवा परलोक के सभी भोग पदार्थ नाशवान हैं। इस लिए गुरु शरणागति ग्रहण करे और ब्रह्मोपदेश प्राप्त करे।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

२२-४-८५

प्रवचन सं. २

"सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतं ह्येव भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तं होवाच यद्वै किञ्चै तदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ।।"

(छान्दो० ७।१।३)

नारद ऋषि सब विद्याओं के ज्ञाता होने पर भी शोक में डूबे हुए हैं और भगवान सनत्कुमार के पास जा कर प्रार्थना करते हैं **"अधीहि भगवो ब्रह्मेति"** हे भगवन मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए। मुमुक्षु जब यह विचार करता है कि इह लोक और परलोक क्या है ?

"तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते ।
एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते ।।

छांदोग्य उपनिषद अ. ८।१।६

यह मायाका बगीचा है। यह मनुष्य शरीर इस में गुलाब के पुष्प की तरह है। यह कर्मानुसार मिला है और सीमा में बंधा हुआ है। इस लोकका क्षय निश्चित है। इस की सभी अवस्थाएँ सीमा में बंधी हुई हैं। अवस्थानुसार भोग भी सीमित हैं। इस लिए इन में वैराग्य होना आवश्यक है। वैराग्य तभी सम्भव है जब विवेक जाग्रत होगा। कर्म सीमित होने से फल भी सीमित ही होगा। इस लिए जगत के भोगों से मुमुक्षु वैराग्य धारण करके रहे। जैसे इस लोक के भोग कर्म से प्राप्त है और विनाशी हैं। **"अपाम सोमाममृता"** श्रुति कहती है कि स्वर्ग में मृत्यु का भय नहीं है। पर साथ ही यह भी कहती है स्वर्ग भी कर्म का ही फल होने से सीमा में ही है। केवल कर्म बडा होने से पुण्य अधिक होने से चिरस्थायी हो सकता है पर अविनाशी नहीं है। केवल मानव लोक की अपेक्षा दीर्घ काल तक रहने के कारण अमृत कहा है। जैसे मच्छर मक्खी की अपेक्षा मानव शरीर अमृत है। इस आत्मा के विषय में कुछ न जानने से केवल इन्द्रियों के भोग ही प्राप्त होते हैं। विषय दृश्य हैं। केवल दृश्य में ही जीए द्रष्टा के सम्बन्ध में कुछ विचार ही नहीं किया उधर ध्यान ही नहीं दिया। कामचार का तात्पर्य है विचरण करने में स्वतंत्र। अकामचार का तात्पर्य, यह जीव वासना के अधीन ही रहेगा स्वेच्छा से विचरण नहीं कर सकेगा। उसका सोचना, बोलना और करना सब वासना के अधीन हो जाएगा। कामना के पंजे में फंसा रहेगा। मुमुक्षु को वासना के पंजे से ही मुक्ति पाना है। अन्तःकरण रूपी जाल से बाहर निकलना है। जो इस जाल से बाहर हो जाएगा वही मुक्त हो जाएगा।

य इ ह आत्मानम् अनुविद्य वृजन्ति एतांश्च सत्यान्कामा स्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति

छान्दोग्योपनिषद ८।१।६

विवेक विचार के द्वारा वासनाको क्षीण करता है। इच्छा प्रधान जीवन नहीं होना चाहिए। बढिया से बढिया भोजन से भी केवल प्राण रक्षा ही होगी। अमरत्व नहीं मिलेगा। इस आत्मा को जानने से ही सम्पूर्ण लोकों में घूमने के लिए स्वतन्त्र हो जाएगा। पर इस का तात्पर्य यह नहीं कि यह जीव इधर उधर जाने में स्वतंत्र हो जाएगा। व्यापक भाव में आ जाएगा। व्यापक भाव में आना ही स्वतंत्र होना है। वासना क्षय होने से, सर्वात्मभाव में प्रतिष्ठित हो जाने से इसे सभी भोग प्राप्त हो जाते हैं। तृप्ति हो जाने से भोगों की इच्छा ही समाप्त हो जाती है। तव अप्राप्त कुछ रहता ही नहीं। सत्य ब्रह्म को गुरुमुख से जान लेने पर इच्छा क्षय, वासना क्षय हो जाता है। उस के लिए तव स्वर्ग पद भी तुच्छ हो जाता है।

नारद का अभिप्राय यह है कि आत्म बोध होने से शोक नहीं होना चाहिए पर मैं सब विद्याओं को जानते हुए भी अभी शोक से मुक्त नहीं हो पाया। जब तक मन के घेरे में हैं तब तक मन शोक से परे नहीं हो सकते। मन के घेरे से निकल कर ही शोक मोह से मुक्त हो सकेगा। सुषुप्ति इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है जो माया भगवती तुम्हें नित्य ही दिखाती है। यह मन गाईड की तरह तुम्हें माया के बगीचे में घुमाता रहता है। शोक मोह से मुक्ति विचार और विवेक के द्वारा ही सम्भव है। **मुण्डकोपनिषद** की श्रुति है, बडी सुन्दर श्रुति है।

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो, निर्वेदमायान्ना-स्त्यकृतः कृतेन।"

मुण्डकोपनिषद् १।२।१२

"परितः ईक्षणं" अच्छी प्रकार से देखो, विचार करो, परीक्षा करो। यह शरीर कर्म का फल है। अनित्य है। कर्म अनित्य है इस लिए फल भी अनित्य है। अतः वह परमात्मा क्रिया साध्य नहीं है वह सर्वथा अकृत है। नित्य है। इस लिए कर्म उस नित्य परमेश्वर की प्राप्ति कराने में सक्षम नहीं हैं। जो जीव

भाव से छुट्टी पा जाता है वही ब्राह्मण है । कर्म से वही प्राप्त होगा जो अपने पास नहीं है । प्राप्त की प्राप्ति तो विवेक के द्वारा ही सम्भव है ।

अहंकाराविष्ट जीव पशु है और इस की अन्तरात्मा इसका पति है । इस लिए भगवान का एक नाम पशुपति भी है । इस की प्राप्ति कर्म से नहीं हो सकती अपने स्वरूप की प्राप्ति कौन से कर्म से होगी ? जेब में रखे हीरे को प्राप्त करने के लिए केवल ज्ञान की आवश्यकता है । स्वभाव से प्राप्त होने पर भी अज्ञान से अप्राप्त हो रहीं है । अज्ञान को ही दूर करना पडेगा तब हीरे के ज्ञान ही उस की प्राप्ति हो जाएगी । परन्तु वह ज्ञान देगा कौन ? इस लिए आगे मंत्र कहता है **''तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।''** ऐसा सोच कर उस जिज्ञासुको परमात्मा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रद्धा युक्त हो कर गुरू की शरण में जाना चाहिए । गुरू का लक्षण बताया **''श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं''** श्रोत्रिय माने वेदों का रहस्य जानने वाला एवं परमात्मा में निष्ठावान अर्थात् पारब्रह्म में स्थित होना चाहिए । उन ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष को भी अपनी शरण में आने वाले शिष्यों को उस ब्रह्मविद्या का तत्त्व चिन्तन कराना चाहिए ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४

२३–४–८५

ॐ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहास-पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमे-कायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ।।''

(छान्दोग्योप० ७।१।४)

नारद ऋषि जब भगवान सनत्कुमार से ब्रह्मोपदेश की प्रार्थना करते हैं तब भगवान सनत्कुमार ने नारद जी से पूछा कि पहले आप अपने ज्ञान का

परिचय दो। अर्थात गुरु के पास जब भी कोई नया शिष्य जाता है तो गुरु पहले उसके पूर्व ज्ञान का परिचय लेते है। भगवान सनत्कुमार ने भी नारद जी से यही पूछा कि अभी तक आप क्या २ जानते हैं। पहले यह बताओ तब हम उस के आधार पर आप को आगे का ज्ञान समझाएंगे। नारद चूकि अठारह प्रकार की विद्याओं के ज्ञाता थे। अहंकार में भी थे। इस लिए एक लम्बी list बता दी। वह बोले कि भगवान मैं ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद सब जानता हुँ। ऋग्वेद ऋचा प्रधान है यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। सामवेद गायन प्रधान है और अथर्ववेद में लोक कलाएं हैं। इतिहास पुराण का भी मैं ज्ञाता हुं। वेदो का वेद जो व्याकरण है वह भी मैं जानता हूं। इसके अतिरिक्त वाकोवाक्य अर्थात तर्क विद्या एकायन विद्या यानि नीति शास्त्र पितृविद्या देवविद्या, भूत-विद्या, ब्रह्मविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्याएं. मैंने सब पढी हैं। परन्तु इतना ज्ञान होने पर भी मैं अभी तक शोक में डूबा हुआ हुँ। मैंने सुन रखा है कि "शोकम तरति आत्मवित्।" आप कृपा करके मुझे ऐसा ज्ञान दीजिए जिस से मैं इस शोक से मुक्त हो जांऊ।

भगवान सनत्कुमार समझ गये कि नारद अभीतक केवल शब्द ज्ञान में ही फंसा है। अर्थ में प्रवेश न पाने के कारण ही यह अभी भी दुखी हो रहे हैं। वह बोले हे नारद स्वर और शब्द दोनों पर ध्यान देकर वाणी का प्रयोग करो नहीं तो शब्द वही होने पर भी स्वर बिगड़ जाने से अर्थ बिगड़ जाता है वेदों का वेद व्याकरण है, यह भी शब्द नाम है। जब तक अर्थ में प्रवेश नहीं होता निरर्थक ही रह जाता है। किसी दिव्य आत्मा की स्मृति मन में होती है तो चित्त में एक दिव्य अनुभूति होतीं है। किसी दुष्टात्मा की स्मृति से ही चित्त में भय, शोक क्रोध आदि विकारों की उत्पत्ति होने लगती है। विवेकेशील वह है जो नित्य अनित्य का विचार करे। "को नोऽहमस्मि" "मैं कौन हुं" सत्य का विचार करने वाला ही आत्मवित् होता है। "तरतिशोकमात्मवित् इति" शोक समुद्र से आत्मवेत्ता ही पार हो सकता हैं।

भूतों से भोजन निकालने की कला मे तो हम पशु तुल्य ही हैं। जीवन तो ज्ञान ही है। परम दिव्य जीवन है चेतन तत्त्व। स्वरूपभूत ज्ञान। परम तत्त्वका ज्ञान। जीवन मे स्वर मे स्वर मिला कर जीना पडता है। जहाँ जैसा व्यवहार

देखो वहाँ वैसा ही करो। सदाचार यही है। ब्रह्मविद्या परम सत्य को पकड़ने की विद्या है। इस लोकमे मन की वृत्तियां बदलती रहती है। किसीकी कठोर वृत्तिसे चित्त नहीं मिलाना। उपेक्षा करना पिछे हट जाना, यह लोक जीवन है। महान की महात्ता की स्मृति हमारी बुद्धि मे महानता उत्पन्न करती है पापात्मा की स्मृतिसे चित्तमे भय या क्रोध की उत्पत्ति होती है। हमारी संस्कृति मे श्राद्धादि का तात्पर्थ्य यही है की एसी पुण्यात्माओं की स्मृति बनी रहे। एक कर्म निमित से चित्तामे पुण्य कर्म की वृद्धि भी हो जाती है। ज्ञानके बिना जीवनकी कोई मी क्रिया नहीं हो सकती। रोना हंसना सब ज्ञान में हो है। दवाई की गोली मे रोगको नष्ट करने की जो शक्ति है वह यद्यपि दिखाई नही देती परन्तु रोगको नष्ट तो कर देती है। सत्य कर्मानुष्ठान भी एक प्रकार की गोली है। इस से चित्त निर्मल हो कर भूतों की विद्या का विचार किया गया है। ईश्वर की इच्छा से ही परमाणु आपस में मिलते रहते हैं। भूतों का नियन्त्रण ईश्वर के हाथ में ही है। भूतों मे हेर फेर करने की शक्ति केवल ईश्वर में ही है। जीव में यह सारी शक्तियां नहीं होती। हाँ योग के द्वारा कुछ मायाबल प्राप्त हो जाता है परन्तु ईश्वर जैसा नहीं हो सकता। मुमुक्षु के लिए सिद्धियां भी बाधक होती हैं। कुछ योगी यह सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं। पर इनसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐश्वर्य में खेलने वाले को अपने मन की ओर देखने का समय ही नहीं मिलता। पूर्व जन्म के योग भ्रष्ट महापुरुष भोगों में रहते हुए भी प्रमाद रहित हो कर आत्मा की ओर लौटता है। संसार के सारे भोग तुम्हारे काम तभी तक आ सकते हैं जब तुम्हारे यंत्र ठीक होंगे। रोगी शरीर के लिए कौन सा भोग है? "अकारो वै सर्वावाक्" जैसे अकार 'अ' सभी स्वर व्यंजन का मूल है। विशाल वाङमय शब्द जगत इस 'अकार' के आश्रय में है। इसी प्रकार अविद्या स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर आदि सब चेतन के आश्रय में जी रहे हैं। जब हम अपने विश्वरूप को विराट में मिलादेंगे तो राग द्वेष कहाँ टिकेगा?

यह सारा जगत ब्रह्मका विलास मात्र है। जब उस ब्रह्म को जान लेगा तो सारे जगत को जान जाएगा। 'अहं' की स्मृति होने से ही 'मम' की स्मृति' होती है। आत्मा की स्मृति तो सब से पहले ही है। ज्ञान तो है परन्तु उस में

जो आवरण आगया है, अविद्या का जो पर्दा है इसे हटाना है "**अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।**" (गीता ५।१५) अज्ञान से ज्ञान ढक गया है जिस से सब प्राणी मोहित हो रहे हैं। तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" आत्मा ही परम मित्र है इस के ज्ञान से ही सब ज्ञात होता है। क्षत्र-विद्या नक्षत्रविद्या अर्थात युद्धकला, धनुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र उन्नति की ओर अग्रसर होता है। गीता में कहा है "**एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः, कुरु कर्मैव तस्मात्त्व पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।**" (गीता अ. ४।१५) पूर्व में भी मुमुक्षु पुण्य कर्म करते आये हैं। जैसे पूर्व में श्रेष्ठ पुरुष करते आए हैं वैसा ही तुम को भी करना चाहिए।

आगे कहा "**कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।**" (गीता अ० ५।११) योगी मन वाणी और बुद्धि से आसक्ति का त्याग कर के कर्म करे इस से आत्म शुद्धि अर्थात अन्तः करण शुद्ध हो कर उस में आत्म दर्शन होगा। जिस का हृदय शुद्ध होता है उस का संकल्प कैसा होता है। ऋषि इस मंत्र द्वारा स्पष्ट करता है '**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया**" आमय माने रोग निरामय रोग रहित होना। ऋषिका संकल्प है कि सब सुखी हो सब रोग रहित हो। "**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ।।**" सभी भद्र दर्शन करें। भद्र दर्शन यानि श्रेष्ठदर्शन। सब से श्रेष्ठ दर्शन आत्मदर्शन है। इस के पश्चात कोई दर्शन बाकी नहीं रहता। सोचो तो जिसने मुर्दा शरीरको इतना सुन्दर बनाकर रखा है वह स्वयं में कितना सुन्दर होगा ?

जैसे शरीर में भोगो की वृद्धि होने पर शरीर रोगी हो जाता है, अपक्षय हो जाता है, इसी प्रकार जब किसी समाज में भोगी जीव अधिक बढ जाते हैं तो जाति का पतन हो जाता है। प्राचीन काल में देव और असुर भिन्न २ कर देने का विधान भी यही है। रोग से शरीर का पतन होता है इसी प्रकार समाज मे भोगी जीव भी रोगों के ही बराबर होते हैं। उन के बढ जाने से समाज का पतन होता आया है। इस लिए समाज में विवेक वैराग्य आदि दिव्य गुणों की वृद्धि करो। निरुक्त विद्यादैव विद्या भी नारद जानते हैं। निधिशास्त्र महा-काल विद्या-संशय भ्रम विपरीत ज्ञान आदि से बचने के लिए तर्कविद्या है।

गौतम ऋषि की परम्परा में सर्पविद्या देवजनविद्या नृत्य संगीत आदि सभी प्रकार की कला में देवर्षि नारद पारंगत हैं। परन्तु इतनी विद्याएं जानने पर भी वह केवल मंत्रविद् है। केवल शब्द जाल को ही जानता हैं। अर्थ का ज्ञान नहीं। अर्थ ज्ञान के बिना केवल शब्द ज्ञान भ्रम मात्र है। जैसे किसी ने तमिल भाषा में 'नेरे पो' कहा 'नेरे पो' माने पास आओ या इधर आओ। परन्तु जब तक हमे इस शब्द का अर्थ ज्ञात नही होगा। शब्द हमारे लिए सार्थक नहीं होगा। अर्थ ज्ञान के बिना लक्ष्य का ज्ञान ही नही। इसीलिए देवर्षि नारद अभीतक शोक मोह के घेरे में है तो सामान्य प्राणी का तो कहना ही क्या? देवर्षि नारद प्रार्थना करते हैं सोऽहम् भगवो मन्त्रविदेवास्मि" भगवन् मैं अभी तक केवल कर्म को ही जानता हूँ कृपा करके मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए। भगवान सनत्कुमार कहते हैं अच्छा आज तो सीधे बैठ कर ध्यान करो कल तुम्हे उपदेश करेंगे।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

२४-४-८५

प्रवचन सं० ५

"ॐ स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नोगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नोवाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥

(छान्दोग्योप. ७।१।५)

महर्षि नारद कहते हैं कि हे भगवान मैं "मन्त्रविदेवास्मि" अर्थात् मैं केवल कर्म को ही जानता हूं पर कर्म जिसकी सत्ता में हो रहा है उस चेतनको मैं नहीं जानता। जो आत्मा स्वभाव से ही सत् चित् आनन्द स्वरूपहै उसे मैं नहीं जानता। आत्मा केवल देह परिच्छिन्न नहीं। "आप्नोतिहवै इदं सर्व सवै आत्मा" यह जो भी नाम रूप देखनें में आ रहा है उस की सत्ता, उसकी अस्तित्व जिस के कारण दीख रहा है वह आत्मा है। सारे जगत की सत्ता जब तुम्हारे हृदय में

प्रकट होती है तो चेतन रूप हा जाती है । यह चेतन ही आनन्द स्वरूप है । **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** (तैति० २।१।१) यह ब्रह्माण्ड आत्मा सारे जगत में व्याप्त हो रही है । पर हम अपने शरीर में ही इसको बंधा हुआ मान बैठते है तो जीव भाव में वंध जाते हैं । ध्यान रखो Electric को Wire नहीं पकड सकता । आत्मा के स्वरूप का वोध भी मंत्र ही कराते हैं । विधिमुख और निषेध मुख से । निषेध मुखेन नेति नेति के द्वारा जो लक्ष्य में तात्पर्य होगा ।

नारद अपने को केवल मंत्रविद् क्यों मानता है ? आत्मविद् नहीं मानता । मंत्र में वाच्य वाचक भाव होता है । यद्यपि यह विकार रूप है । शब्द बोधक है अर्थ वोध्य है । जहां विकार होगा वह विनाशी होगा । आत्मा के निर्विकार स्वरूप का वोध केवल शब्द से नहीं होगा । वाणी केवल शब्द को पकडती है **"यतो वाचो निवर्तन्ते"** पर वाणी जिस की सत्ता से बोल रही है उस का स्वरूप यह वाणी नहीं जानती । यह ब्रह्म वाणी से प्रगट नहीं होता क्योंकि वाणी उस की सत्ता से बोल रही । है । उस को वाणी नहीं पकड सकती । वाणी केवल 'माईक' का काम करती है । जो वाणी को प्रकाशित कर रहा है, वाणी उसे कैसे प्रकाशित कर सकती है । **"तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि"** वाणी केवल नाम रूप की व्याख्या करेगी । इस लिए निषेध मुख से उस आत्मा का उपदेश किया । विधि मुख से वाच्य वाचक भाव होगा । जो २ इन्द्रियों की पकड मे है वह आत्मा नही है । इन्द्रियां उसे नहीं पकड सकती । नेति २ के द्वारा इस का उपदेश किया । जीवन का लम्बा सफर बुर्के में रह कर ही तय कर दिया । अन्त में बुर्का यहीं छोड कर चले गये । एक वहिन लखनऊ से आई और दूसरी काठ-मांडू से । दोनों बजार में मिल गई । दिन भर साथ २ रह कर घूमती रहीं । खाया पीया खरीददारी भी की और शाम को अपने २ घर चली गई । दिन भर बुर्के में ही घूमती रहीं एक दूसरे को देखा ही नहीं ।

अन्नमय कोश को प्राण और पांच कर्मेन्द्रियां उठाकर चल रही हैं । प्राण और कर्मेन्द्रियों को मन और पांच ज्ञानेन्द्रियां उठा कर चलती हैं । मनोमय कोश को मन और पांच ज्ञानेन्द्रियां संचालित करती हैं मन संशय प्रधान है । संशय में रहने से जीव की दृढवृत्ति नहीं बनती । इस लिए बुद्धि के निश्चय में जीवन चलता है विज्ञानमय कोश बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियां । बुद्धि में आया हुआ

चेतन का आभास ही जीव है। मुमुक्षु सत्य को पकड़ कर चलता है। आनन्दमय कोश अविद्या और बुद्धि की मोद प्रमोद वृत्तियां है। अविद्या स्वयं जीव को दुख नहीं देती। अपने कार्यो द्वारा जीव को पकड़ती है। अविद्या का कार्य मन बुद्धि चित्त और अहंकार इन्द्रियां प्राणादि हैं। यह सब मिल कर जीव को दुख देते हैं। जैसे भोली स्त्री अपने पति को दुख नहीं देती। पर जब उस के बेटे बेटियां बडे हो जाते हैं तब पति दुखी हो जाता है, जब वे उसका विरोध करने लगते हैं।

अविद्या यदि स्वरूप से दुख देने वाली हो तो सुषुप्ति में जीव को आनन्द की अनुभूति कभी न हो। श्रुति भगवती विवेक वैराग्य के द्वारा जीवको जगाती है। मन को आत्मा की ओर लगाने का उपदेश देती है। आत्मा के स्वरूप के उपदेश के लिए नारद ऋषि भगवान सनत्कुमार से प्रार्थना करते है। यद्यपि श्रुति भी शब्द के द्वारा ही ब्रह्म (आत्मा) का उपदेश करती है पर जब तक शब्द देहादि को पकड़ कर चलेगा तब तक आत्मा का ज्ञान नहीं होगा। ब्रह्म का उपलक्षण श्रुति मंत्र के द्वारा करती है। आत्मा की महिमा में ही शरीर के सब यंत्र क्रियाशील हैं। जैसे "राजा गच्छति" सेना सहित छत्र हाथी आदि समेत राजा जारहा है। राजा के न दीखमे पर भी सेना आदि के लक्ष्य से राजा का ज्ञान हो जाता है। जैसे "कौए से दही की रक्षा करना" का तात्पर्य दही की रक्षा से है। यह उपलक्षण है। केवल कौए से ही नहीं अन्य प्राणियों से भी तात्पर्य है। पर यदि बच्चा केवल कौए से ही दही को बचाता है तो वह लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। दही दूसरे प्राणी खाजाएंगें। इसी प्रकार केवल उपलक्षण को ही पकड़ कर चलने से आत्मा का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। काम क्रोध लोभ मोहादि गैस विवेक के द्वारा ही दबाए जा सकते हैं। वैराग्य और विवेक दोनों उस शक्ति को उत्पन्न करते हैं जिस से मुमुक्षु धीर बन कर आगे बढने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मविद्या गुरु मुख से गुरु परम्परा से ही फलवती होती है। नाम रूप दीखने पर जाग्रत मे शोक मोह प्रबल रहते हैं। वृत्ति जहां तक बहिर्मुखी रहती है वहां तक शोक मोह चलता ही रहता है। लोक जीवन में भी जब तक दृष्टि बाहर रहती है नाम रूप पर ही टिकी रहती है तब तक राग द्वेष चलता रहता है

सुषुप्ति में यद्यपि राग द्वेष से तो छूट जाते हैं पर अविद्या के घेरे में रहते हैं। ब्रह्मविद्याके द्वारा ही सर्वथा दुखों की निवृत्ति सम्भव है। श्री मदभागवत के ग्याहरवे स्कन्ध में भगवान कहते हैं– यद्यपि विद्या और अविद्या दोनों मेरी ही शक्तियां है। अविद्या बन्धन और विद्या मोक्ष देने वाली है। तत्त्व विद्या जब प्रगट हो जाती है तब जाग्रत में भी शोक मोह से पार कर देती है। नारद के शोक का कारण यही था कि वह केवल नाम को ही पकड कर बैठा है। केवल शब्द से ही कुछ होने वाला नहीं जब तक अर्थ में नहीं जाएंगे तब तक ज्ञान सम्भव नहीं। शब्द वाचक है अर्थ वाच्य है। वाणी कामधेनु है। इस की उपासना करो।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ६

२५।४।८५

"ॐ वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यंराशिं दैवं निधिंवाकोवाक्यमेकायनं"

(छान्दोग्योप० ७।२।१)

भगवान सनत्कुमार अपने समय के महान ब्रह्म वेत्ता थे और ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। वह महर्षिनारद को ब्रह्मविद्या का उपदेश करने के उद्देश्य से कहते हैं किसी भी कार्य को करने से पहले उस का संकल्प मन में आता है। संकल्प में वह योजना निराकार रूप में आती है। तदुपरान्त नक्शे के रूप में साकार होता है। पर यह साकार भी सूक्ष्म रूप में होने के कारण पकड में नहीं आता। सुख दुख भी यह आकार नहीं दे सकता। स्थूल रूप में आने पर ही इन्द्रियों की पकड में आता है। तब सुख दुख देने लगता है। प्रजापति ब्रह्मा ने भी पहले सूक्ष्म रूप से ब्रह्माण्ड की कल्पना की। सुषुप्ति में इच्छा नहीं होती किन्तु स्वप्न में संकल्प सृष्टि होती है। जाग्रत में जो सृष्टि होती है वह

स्थूल शरीर में स्थूल सृष्टि होती है। सूक्ष्म की सृष्टि सूक्ष्म होने से महान बलशाली होती है जाग्रत अवस्था में बुद्धि को पकड चलने वाला महान कार्य कर सकता है परन्तु शरीर की शक्ति को पकड कर ही चलने वाला केवल शारीरिक शक्ति के अनुसार ही कार्य कर सकता है। इस का अर्थ यह है कि जितना स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाएंगे उतनी ही शक्ति बढती है। सब से सूक्ष्म चेतन आत्मा ही है। "वह आत्मा मैं हूँ" ऐसा बोध ही शोक मोह से परे कर सकता है। चित्त में शोक होना अज्ञानी का लक्षण है। अनन्त शक्ति का आश्रय आत्मा है। वह आत्मा मैं हूँ। ऐसा बोध होने से ही उस महान शक्ति का अनुभव होने लगता है। जैसे सीमेंट के पक्के फर्श पर कीचड नहीं होता ऐसे ही आत्मावेत्ता के चित्त में शोक नही ठहरता। शोक मोह आएगा पर टिकेगा नहीं अज्ञानी प्राणी मरना स्वीकार कर लेता है पर शोक मोह को छोडना स्वीकार नहीं करते। नारद कहता हैं कि हे भगवान मैं ने सुना है कि आत्मवित् ही शोक को पार करता हैं। **"तरति शोकमात्मवित्"**

(छान्दोग्योप. ७।१।३)

विदेह कैवल्य तो देहपात के पश्चात ही होता है। "विगतो देहो विदेह:।" परन्तु जो इस देह के अहंकार से मुक्त हो जाता है वह जीवन काल में ही विदेह हो जाता है। जब तक शरीर अहंकार रहेगा शोक मोह भी रहेगा। स्थूल सूक्ष्म से निवृत्त होने पर ही शोक मोह से निवृत्ति हो सकती है। वर्षा हो जाने के बाद जैसे बादल सफेद हो जाते हैं ऐसे ही यह वृद्धावस्था समझो। मुमुक्षु सदा तत्त्व का विचार करता रहे। चिन्तन करे कि वास्तविक जीवन क्या है। नारद प्रार्थना करते हैं कि भगवन मुझे शोक मोह से पार करो। महर्षि सनत्कुमार कहते हैं हे नारद जो विद्या अभी तक तुम ने पढी है वह केवल नाम मात्र है। नाम को पकडो। शब्द ही ब्रह्म है। इस शब्द ब्रह्म को पकड कर तुम आत्मा में प्रवेश कर जाओगे। मुमुक्षु गुरु मुंख से शब्द को पकड कर उसके सहारे ब्रह्म में पहुंच जावे। अर्थ में प्रवेश करेगा तब शोक मोह की निवृत्ति होगी। **"पुरमेकादशंद्वारमजस्यावक्रचेतस:"** श्रुति कहती है यह शरीर ब्रह्म पुर है। इस पुरी में प्रवेश करने के लिए बहुत से दरवाजे हैं। एकादश द्वार हैं। इस में परमात्मा का निवास है। इस में वह महान शिब बैठा है। दो नेत्र

छिद्र, दो कर्ण छिद्र, दो नासिका छिद्र एक मुख ब्रह्म रन्ध्र, नाभि, गुदा और शिश्न यह एकादश द्वार हैं। 'अजस्य' कैसा है वह परमात्मा १ अज है। **"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः"** (भ. गीता अ. २।२०) परन्तु माया भगवती दिखा रही है। प्रतीत हो रहा है। इस स्थूल शरीर के सम्बन्ध से ही जन्म मरण की प्रतीति हो रही है। मन के सम्बन्ध से इस में सुख दुःख की प्रतीति हो रही है। यद्यपि उस में जन्म मरण सुख दुख कुछ नहीं, परन्तु अपनी सत्ता में यह सब होने से आत्मा में इन का आरोप हो रहा है। ब्रह्म सत्ता में प्रतीति मात्र है। मुमुक्षु अपने मन को नाम शब्द के सहारे इस महान ब्रह्म में प्रवेश करावे। वह सब जगह परिपूर्ण रहते हुए भी अपनी राजधानी रूपी इस मनुष्य शरीर के 'हृदय महल' में विराजमान है। मुमुक्षु ऐसा समझ कर हृदय में निरन्तर उस का ध्यान करे।

इस हृदयाकाशमें **'अहं'** रूप से चेतन आत्मा प्रकाशित हो रहा है। अहंभाव में जीव भाव प्रगट होने से यह संसारी बन जाता है, संसारी माने संसरण करने वाला आवागमन के चक्रमें फंसा हुआ। केवल आभास में यह सब हो रहा है। यह संसारी मन जिस इन्द्रिय के साथ हो जाता है उसी अर्थ को पकड लेता है। स्वभाव से यह विषयों को पकडता और छोडता जा रहा है। पर संस्कारको पकड कर शोक मोह में डूब जाता है। अपने को साक्षी मानोगें तभी शोक मोह से पार हो सकोगे। मुमुक्षु बडी सावधानी से अपने मन को आत्मा की खोज में लगावे। शब्द ही एक मात्र आश्रय है। शब्द को पकड कर अर्थ में प्रविष्ट हो सकता है। जव तक अर्थ प्रगट न हो तब तक शब्द को घुमाओ। यही मन्त्रजप बा विज्ञान है। शब्द की महान शक्ति है। शब्दको Sugar Coated कर के प्रयोग करो। संवार कर व्यवहार करो। क्रोध में भी वाणी का संयम करोगे तो हृत पुण्डरीक में जो अमृत भरा है वह सूखेगा नही। भगवान को सुनाने के लिए recitation करो। बार २ शब्द का उच्चारण करने से पहले तो पाप सस्कार नष्ट होगे। पाप नष्ट हो जाने के पश्चात् पुण्य उत्पन्न होता है। शब्द की उपासना करो। इस का फल यह होगा कि इस के द्वारा तू अर्थ में प्रवेश कर जाएगा। ब्रह्म लोक तक पहुँचने का भी साधन यह शब्द ही है। नारद बोले **"अस्ति भगवो नाम्नो भूयः"** हे भगवन नाम से ऊपर क्या है? भगवान सनत्कुमार ने कहा आज तो नाम की उपासना करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ७

२६-४-८५

"ॐ देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि"

(छान्दोग्योप० ७।२।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस लोक में नाम की ब्रह्म रूप से जो उपासना करता है वह कामचार हो सकता है। कामचार माने स्वेच्छा से जहाँतक शब्द की शक्ति है वहाँ तक पहुंच सकता है। ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत का जीवन है उस के बिना जड चेतन कोई जी नहीं सकता। यह सब प्राणी इसी प्रकार शब्द के अन्दर ही जी रहे हैं। पशु भी वाणी के द्वारा ही अपने भाव प्रगट करते हैं। जगत का कोई भी व्यवहार शब्द के बिना सम्भव नहीं। श्रुति कहती है **"तस्य ॐ इति नाम"** उस ब्रह्म का नाम ॐ है। मुमुक्षु इस ॐ शब्दको पकड कर उस महान परमात्मा के स्वरूप में प्रवेश कर जाता है। गुरुमुख से शब्द का उपदेश है। **"तस्य वाचकः प्रणवः"** पतञ्जलि ऋषि कहते हैं परमात्मा का बोध देने वाला 'प्रणव' ॐ कार ही है। यह बडा सार्थक नाम है। प्र=प्रपञ्चो ण=नास्ति व=तेरा। अर्थात तू इस प्रपञ्च से परे है। यह प्रणव का उपदेश है। तू प्रपञ्च से न्यारा प्रपञ्च का साक्षी है। व्यास ऋषि कहते हैं प्र=प्रकृति माया भगवती का लम्बा चौडा जो जाल है। ण=न=नौका अर्थात यह ॐ इस माया जाल से पार होने के लिए सुदृढ् नौका है। जो बलात मोक्ष की ओर खींच ले उसे प्रणव कहते हैं।

जो सद्ज्ञान सत् तत्त्व से दूर है वह शोक मोह के समुद्र में डूबा हुवा है। उस का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब और कहां निकलेगा। यदि कर्म और ज्ञान उत्तम, दिव्य होगा तो अच्छी जगह पहुंचेगा। स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। बन्धन तो है ही। जीवन में मोक्ष की इच्छा से जीओ। जैसे कैदी सदा पुलिस के घेरे में रहता है ऐसे ही यह जीव इस शरीर रूपी

जेल में पडा है। बीच २ में कर्म की मार खाता जा रहा है। यहाँ से इसी स्थिति में निकलेगा तो पन्द्रह सैनिकों का 'troop' दल इस के साथ चलेगा। मन बुद्धि रूपी कमांडर भी साथ ही रहें गे। पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां और पंच प्राण यह पन्द्रह सैनिक हैं। इस स्थिति में इसें रूप, रस, गन्ध, शब्द आदि सभी प्रकार का भोजन भी मिलता रहेगा। परन्तु कैद से छुट्टी नहीं मिलेगी। इस जाल से यदि छूटना है तो 'प्रणव' रुपी नौका को पकडो। मुमुक्षु गुरू मुख से 'ॐ' शब्द को सुन कर उस के अर्थ को समझे और इसी के आश्रय में आगे बढे।

इस संसार से पार होने के लिए यह 'ॐ' ही ऐसा शब्द है जो ब्रह्म रूप है। इस की ब्रह्म रूप से उपासना करने वाला मुमुक्षु ब्रह्म लोक तक जा सकता है। जैसे किसी देश का राजा सम्पूर्ण जनता से स्वतंत्र होता है। इसी प्रकार मुमुक्षु इस नाम के आश्रय में रह कर सामान्य जीवों की अपेक्षा स्वतंत्र रह सकता है। प्र=प्रकर्षेण अच्छी प्रकार इस प्रणव शब्द को समझ कर इस के अर्थ में प्रवेश कर जाने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। नाम से ऊपर वाणी है। नाम को पकडने वाली वागिन्द्रिय ही है। बिना इस यंत्र के नाम भी क्या पकडेगा। इस जगत में यह सुन्दर वाणी भी बडे भाग्य से मिलती है। यह बडी महत्त्वपूर्ण है। इस के बिना शास्त्रों का व्याख्यान कौन करे गा? महान ऋग्वेद जो महान शब्द समुद्र है इस का विज्ञापन वाणी ही करती है। स्वतंत्र रूप से इस शब्द समुद्र में विचरण करने वाली वाणी ही है। शब्द के दो स्वरूप हो ते हैं एक प्रकृति और प्रत्यय से और दूसरा रूढि। रूढि, शब्द में प्रकृति प्रत्यय का भेद नहीं। जैसे पंकज—पंका ज्जायते इति पंकज" पंक माने कीचड कीचड से उत्पन्न होने वाला कमल। यह प्रकृति प्रत्यय के योग से बना है। व्याकरण ही शब्दों का स्वष्ट अर्थ करने वाला है। इस लिए इसे वेदों का भी वेद कहा गया है। श्रद्धाशील पुरूष अपने वंश की भी स्मृति करता है। जिस वंश में जन्म ले कर अच्छे २ भोगों को भोगते हुए तत्त्वज्ञान प्राप्त कर के अपनी आत्मा का मोक्ष मार्ग भी प्राप्त किया है। सभी कर्मो के लिए कोई न कोई निमित्त भी आवश्यक होता है। ज्ञान रूपी प्रकाश ही जीव का मोक्ष करने वाला है। और इस ज्ञान का प्रकाश करने वाली वाणी ही है। पृथ्वी जल तेज सभी

का वर्णन वाणी ही करती है।

हमारा प्राण केवल हमारे शरीर में ही नहीं जी सकता। विराट आत्मा के प्राण से मिलकर ही जी रहा है। व्यष्टि जीवन समष्टि के आश्रय में ही चल रहा है। सब के स्वरूप का व्याख्यान वाणी ही करती है। समष्टि से मिलकर व्यापक भाव में जीने से ज्ञान कर्म गुण व्यापक हो जाते हैं। व्यापक भाव में जीने वाला शोक मोह को पार कर जाता है। भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को समझाते हुए कहते हैं कि वाणी शब्द से ऊपर है। वाणी बडी महत्त्व पूर्ण है। इस लिए तुम इस वाणी की ब्रह्म भाव से उपासना करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

२७-४-८५

प्रवचन सं० ८

"ॐ तृणवनस्पतिं श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति ॥"

(छान्दोग्योप० ७-२-१)

भगवान सनत्कुमार नारद को इस बात को स्पष्ट करते हैं कि नाम शब्द मात्र है। यह कितना ही महत्त्व पूर्ण क्यों न हो किन्तु यदि इस का उच्चारण करने वाली वाणी ठीक नहीं होगी तो इस का महत्त्व स्पष्ट नहीं होगा। शब्द क्या करेगा ? इस लिए शब्द से अधिक महत्त्वपूर्ण वाणी है। जिस की वागिन्द्रिय अच्छी है वह बडा ही सुकृती है। यदि पूर्व जन्म के सुकृत अच्छे हैं तभी वाणी सुन्दर प्राप्त होगी अन्यथा सुकृत अच्छे न होने पर वाणी सुन्दर नहीं होगी। तत्त्व का व्याख्यान वाणी ही करती है। यह पृथ्वी सब भूतों का जीवन बनी हुई है। वह परमेश्वर ही पृथ्वी शरीर को धारण करके सब प्राणियों का आधार

बना हुआ है। हम पृथ्वी को तो देखते हैं परन्तु उस अन्तरयामी परमात्मा को नहीं देखते। बृहदारण्यक उपनिषद के अन्तरयामी ब्राह्मण में आया है।

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मा ऽन्तर्यामयमृतः।

(बृहदारण्यकोपनिषद् अ. ३।७।३

यह शरीर तो कार के समान है। अपने को जानने के लिए तुम स्वयं ही हो। यह शरीर नहीं जानेगा कि तुम कौन हो ? इसी प्रकार पृथ्वी भी अपने आत्मा रूप उस अन्तर्यामी को नहीं जानती आत्मा ही 'स्व' 'पर' साक्षी है। यह सब व्याख्यान वाणी के द्वारा ही सम्भव है। पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश सब का व्याख्यान वाणी ही करती है। अन्तिम सत्य यह है कि सब दुनियां अपने में ही व्यस्त है। दिखाने के लिए भले ही दूसरे के लिए व्यस्तता हो। इस लिए अपने मन को अपने प्राणात्मा में ही लगाओ। इसी से प्रेम करो झगडा करना हो तो दोष से करो। प्राण से झगडा करने से तुम हिंसक बन जाओगे। बुराई दोषों से ही उत्पन्न होती है। जगत के सब सम्बन्ध प्राणसे ही हैं। **"प्राणः प्राणाय ददाति, प्राणः प्राणेन याति।"** व्यवहार में समता लानेके लिए यह निश्चय करो कि प्राणात्मा एक ही है, यही मेरा स्वरूप है। यह राग द्वेष, यह क्रोधादि पर रोक लगाने का साधन है। आकाश ही सब भूतों को इधर उधर आने जानेका मौका देता है। यद्यपि इस का कोई आकार देखने में नहीं आता तथापि यह सब प्राणियों का आधार बना हुआ है। सभी भूत स्वभाव से, स्वरूप से निर्गुण निराकार हैं। उपाधि के द्वारा सगुण साकार दिखते हैं। आकार और भेद उपाधि में है। यही तत्त्व विचार है।

इसी प्रकार यह परमात्मा अपने स्वरूप में निर्गुण निराकार होते हुए भी उपाधि के कारण नाना प्रकार की योनि भेद से दीखता है। यह प्राणी निरन्तर गतिशील हैं। इस शरीर रूपी गाडी में कब से चल रहे हैं। भगवान शंकराचार्य ने एक बालक से प्रश्न किया था। कथा इस प्रकार है कि—

दक्षिण भारतमे एक बालक का जन्म हुआ। वह सात आठ वर्ष तक कुछ बोला

ही नहीं। माता पिता बडे दुखी थे। एक बार भगवान शंकराचार्य जी घूमते-घूमते उधर से निकले । माता पिता ने बालकको उनके चरणों में डाल दिया । भगवान शंकराचार्य ने बालक से पूछा "कस्त्वं शिशो ! कस्य कुतोऽसिगन्ता

किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि

एतन्मयोक्तं वद चार्भक ? त्वं, मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोसि" ।।

हे बालक तुम कौन हो ? कहाँ से पधारे हो ? तुह्मारा नाम क्या है ? कहाँ जाना है ? अर्भक कहते हैं अबोध शिशु को । भगवान कहते हैं कि हे अर्भक तुम तो प्रेम स्वरूप हो । मेरी प्रीति को बढाने के लिए तुम बोलो ।

बालक एक दम मुस्करा कर बोल पडा ।

"**नाऽहं मनुष्यो न च देवयक्षौ,** न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाऽहं निजबोधरूपः" ।। अर्थ तो स्पष्ट ही है । न मैं मनुष्य न देव न यक्ष हूं । न मैं ब्राह्मण हूं न क्षत्रिय न वैश्य और न शूद्र हूं । अर्थात मुझ में जाति भी नहीं है । न मैं ब्रह्मचारी हूं न गृहस्थी हूं न ही वान-प्रस्थी हूं और न सन्यासी हूं । मैं केवल ज्ञान स्वरूप चेतन आत्मा हूं" । कहने का अभिप्राय यह है कि यह जीव जन्म जन्मान्तर से भटक रहा है । कभी कोई भाग्य वश सुन्दर सौभाग्य प्राप्त होता है तो सत्सङ्ग की प्राप्ति होती है । महा-पुरूष की शरण प्राप्त होती है । उस महान ब्रह्म वेत्ता के द्वारा इस जीव को स्व-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है । परन्तु यह ज्ञान जब एक बार हो जाता है तो फिर लुप्त नहीं होता। श्री मद् भागवत में जड भरत इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है । मृग की योनि में भी उन्हे ज्ञान की विस्मृति नहीं होती और तृण खाना छोड कर शीघ्र ही उस योनि से छुटकारा पा जाता है ।

यहाँ भी भगवान श्री शंकराचार्य जी दृष्टि पडते ही जान गये कि वह कोई साधारण बालक नहीं है महान योगी है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी महापुरूष की दृष्टि पडते ही जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। मनुष्यका कर्तव्य है कि दुर्गुणों को दूर कर के सद्गुणों की वृद्धि करे । बुद्धिमान मुमुक्षु सत्य को स्वीकार करे ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ९

२८-४-८५

"ॐ तत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति, स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति"

(छान्दोग्योप० ७।२।१–२)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं कि इस जगत में जो कुछ भी निराकार अथवा साकार रूप में है, सब का व्याख्यान वाणी ही करती है। जैसे इस शरीर को हम लोग सामान्यतः 'अहं' या 'मम' रूप से तो जानते हैं परन्तु डाक्टर इसे विशेष रूप से जानता है। प्रत्येक पदार्थ की कुछ विशेषता होती है। देव अर्थात् दिव्य प्रकाश देने वाला। ज्ञान रूपी प्रकाश देने वाला विद्वान भी देव है। इन्द्रिय गण भी देवता है। **"विद्वान सो वै देवः"** यास्क मुनि कहते हैं विद्वान इस लोक के देव हैं जो इस लोक में जीवन का प्रकाश देते हैं। प्रकाश से ज्ञान, गुण बढते हैं। ज्ञान न होने से दोष बढ जाते हैं। विद्वान समाज के अन्धकार को दूर करता है। जो भोगासक्त होगा वह मोहासक्त हो जाएगा। क्रोधाशक्त हो जाता है। अशान्ति बढ जाती है। समाज को उन्नत बनाना भी तप है। विद्वान को सदा ध्यान रखना चाहिए कि वह समाज के light house हैं। प्रकाश स्तम्भ हैं। विद्वान के लिए पूरा राष्ट्र ही उस का घर है। विवेक शील पीछे भी हटता है तो ज्ञान से। संसार से जब पीछे हटो तो अपनी आत्मा की ओर लौटो।

इस जगत के स्वरूप को जो समझे वह मनुष्य है। धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य जिस में स्वभाव से हैं वह मनु है। ब्रह्मा को भी मनु कहते हैं। विद्या प्राप्त करने के छः साधन हैं। ब्रह्मचारी विद्या का अधिकारी होता है। धनदायी, सेवा करने वाला, प्रिय, श्रोत्रिय और विद्या विनिमय। ज्ञान का परिशोधन गुरू एवं शास्त्र करता है। ज्ञान सत्य और असत्य दोनों का प्रकाश करता है। क्रोध लोभ मोहादि दोषों से अपने ज्ञान की रक्षा करो।

किसी से द्वेष भी करो तो उस के दोष से करो। आत्मा से द्वेष करना तो अपने आप से द्वेष करना है। संसार में अनन्त प्रकार के भोग हैं परन्तु सब हमारे लिए ही नहीं हैं। जी अपने लिए हैं उन्हे ग्रहण करो और शेष से वैराग्य धारण करो। सदा ज्ञान और वैराग्य को अपने सामने रखो। ज्ञान से अपने मन की रक्षा करो और वैराग्य रूपी शस्त्र से अपने मन पर अंकुश लगाओ। मनु स्वभाव से ही वैराग्य शील है पर मनुष्य को वैराग्य विवेक के द्वारा उत्पन्न करना पडता है। वैराग्य की रक्षा करो।

वैराग्य चार प्रकारका होता है । यतमान वैराग्य माने यत्नशील होना। विवेक करना कि कितना राग करना है और कितना वैराग्य। व्यतिरेक वैराग्य समयअनुसार आवश्यक भोग ले कर शेष छोड़ दो। गुण को धारण करो। मानव मन की वृत्तियां भोगों में अनादि काल से ही स्वाभाविक रूप से जा रही हैं। बुद्धिमान मन को समझा कर आत्मा की ओर लगावे। लोक जीवनका सारा सम्बन्ध मन से ही है। मन का जितनां हिस्सा वैराग्य शील है वह आत्मा की ओर लगाओ और शेष जो भोगों की ओर जा राहा है उसे भी पकाने का प्रयत्न करो। यह साधना है। मुमुक्षु ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा मन को धीरे धीरे उपर उठाता है। गीता मे भी कहा है:—

'शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपिचिन्तयेत्''

(गीता अ. ३ ।२५)

धीरे २ उपरामता को धारण करो। मनको आत्मा में संस्थापित अर्थात् अच्छी प्रकार से स्थापित करो प्रतिष्ठित करो। मन को इधर उधर चंचल मत करो। एकेन्द्रिय वैराग्य जब हृदय में राग कम रह गया हो। सूक्ष्म रूप में रह गया हो। "हृदि रागसौक्ष्म्यम्"। मुमुक्षु जब ब्रह्माकार वृत्ति में आ जाता है तो इस जगत को माया का मन्दिर समझने लगता है। तो भी राग सूक्ष्म रुप से हृदय में बैठा है यही एकेन्द्रिय वैराग्य है। यह सूक्ष्म राग समय पाते ही वढ़ जाता है और मन को पुनः बिषयों में घसीट ले जाता है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः

(गीता. अ. ६।५)

यहाँ मुमुक्षु को वडी सावधानी की आवश्यकता है। मन को दृढ विचार दो। आत्मा का उद्धार करो। कभी इसका आवसादन मत होने दो। मन को नीचे की ओर मत जाने दो। यह आत्मा ही अपना मित्र है। यही अपना शत्रु भी हो जाता है जब मन चंचल हो जाता है तो जीवको अधोगति की ओर ले जाता है। जिसने मन को वश में कर लिया है उस का आत्मा बन्धु है मित्र है। वशीकार वैराग्य में मन पूर्णता वश में हो जाता है। ''इहामुत्र भोग विराग वशीकार संज्ञा'' संसार के सारे भोग, इस लोक और परलोक के समस्त भोगों के प्रति वैराग्य हो जाना वशीकार वैराग्य है। आत्मा ही अमर है इसी में मन लगाओ। बड़े से बडा सिद्ध हो या साधारण मनुष्य हो सभी आत्मा के अधीन है। वार २ विचार करने से वैराग्य दृढ़ होता है।

मुमुक्षु ब्रह्माकारवृत्ति को धारण करे बार २ विचार करो ''आत्मैवाऽहमस्मि''

''ब्रह्मैवाऽहमस्मि'' दृढ निश्चय करो। मैं आत्मा हुं ''मैं ब्रह्म हुं'' बुद्धिमान उतना ही संकल्प करे जितना पूरा कर सके। अनर्गल संकल्प मत करो। इस से संकल्प शक्ति भी क्षय होती है। संकल्प जितना कम करोगे संकल्प शक्ति उतनी ही बढ़ेगी। मन को आत्मा में लगाओ। अच्छे संकल्प करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं १०

२६-४-८५

ॐ इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति। मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वे द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति''

(छान्दोग्योप० ७-२-२; ७-३-१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह वाणी ही धर्म अधर्म का सत्य

असत्य का ज्ञान अज्ञान का व्याख्यान करती है। महर्षि व्यास के अनुसार

"धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति शुश्रुमः ॥"

धर्म वह जो हमे धारणा करे। अर्थात गिरने से बचाये। **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उस की रक्षा करता है। गुरु मुख से ही श्रवण करने पर विद्या वीर्यवती होती है। शोक मोह अविद्या के कार्य है। विवेक जाग्रत होने पर वह शोक मोह दुख नहीं देते। जीव भोगों के अधीन हैं। इस सत्य को स्वीकार करो कि यह चेतन आत्मा ही अमर है। यही परम धर्म है। यह चेतन आत्मा ही है जिस ने हम सब के शरीरों को धारण कर रखा है। वाणी से सत्य को पकडो। अनृत में, झूठ में, अपनी वाणी का दुरुपयोग कभी मत करो। सत्य सदा प्रिय है असत्य कभी भी प्रिय नहीं। हां यह जगत भी सत्य असत्य के मिश्रण से ही दिखाई देता है। दाल में नमक की तरह तो असत्य चल सकता है परन्तु नमक में यदि दाल की तरह असत्य का प्रयोग करो गे तो वह कभी नहीं चलेगा। देखो झूठ बोलते ही चेहरे की चमक मन्द पड जाती है। चेहरा फीका पड़ जाता है। वह जो अन्तरयामी सब के हृदय मन्दिर में विराजमान है वह कभी झूठ की प्रशंसा नहीं करता।

ब्रह्मसूत्र भाष्य में जगद्गुरु शंकराचार्य जो कहते हैं कि व्यवहार असत्य के मिश्रण से ही चल रहा है। केवल सत्य अथवा केवल असत्य से जागतिक व्यवहार भी सम्भव नहीं। इस शरीर को ही देखो। यह जब तक सत्य आत्मा में मिलकर चल रहा है तभी तक सांसारिक सम्बन्ध हैं। जरा आत्मा ने इस को छोड़ा फिर देखो कौन इस का सम्बन्धी है? कौन इस को रखता है? सत्य की रक्षा करो और जगत में व्यवहार करो। सत्य ही तुम्हारी रक्षा करेगा। यही तुम्हें ऊपर उठाएगा। पतन नहीं होने देगा। धर्म के भी दो रूप हैं। स्वरूप धर्म और साधन धर्म। अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक पालन करना साधन धर्म है। कर्म को ठीक से पकडो। इन्द्रियां कर्म को धारण करने वाली हैं। इस लिए कर्मेन्द्रियों का संयम करो। कर्म की अपेक्षा इन्द्रियों का संयम श्रेष्ठ है। ईश्वर ने प्राकृतिक रूप से तुम्हें संयम की शक्ति दी है। आँख में पलक परमात्मा ने आँख के संयम और सुरक्षा के लिए ही दी है। वाणी के सामने दाँतों की

पक्ति वाणी की किलेबन्दी की है। फिर सामने होंठ उन दाँतो की सुरक्षा के लिए हैं।

इन्द्रिय संयम से तुम दीर्घ जीवी हो सकते हो। दीर्घकाल तक कर्म करने की शक्ति इन्द्रियों में बनी रहे गी। इन इन्द्रियों को उठाने के लिए उस परमात्मा ने प्राण शक्ति दी है। प्राण इन्द्रियों की अपक्षा श्रेष्ठ है। इस लिए प्राण की रक्षा करो। प्राणायाम का विचार इसी लिए है। ध्यान के समय प्राणायाम भी करो। यह भी योग है। क्रिया प्रधान तत्त्व का नाम प्राण है। ईश्वर ने तुम्हें अपनी तीनों शक्तियाँ दी हैं। ज्ञान शक्ति, संकल्प शक्ति और क्रिया शक्ति। ज्ञान शक्ति बुद्धि के अधीन है। संकल्प शक्ति मन के अधीन है और क्रिया शक्ति प्राण के अधीन है। प्राण शक्ति को धारण करने वाला मन है। मन संकल्प करता है। तभी इन्द्रियाँ क्रियाशील होती हैं। कर्म में प्रयुक्त होती हैं। अतः प्राण से उत्तम मन है। इस लिए मुमुक्षु मन की रक्षा करे। मन का संयम धर्म है। गीता में कहा है **"मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।**

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥" (गीता. अ. १७।१६)

मनको सदा प्रसन्न राखो। पर सत्य के द्वारा झूठ मूठ की बातों से मन को मत वहलाओ। संशय ज्ञान और निश्चय ज्ञान में निश्चय ज्ञान ही श्रेष्ठ है। निश्चय करना बुद्धि का काम है। बुद्धि का धर्म है। अतः बुद्धि की रक्षा करो। बुद्धि की रक्षा करना भी धर्म है। बुद्धि अविद्या के घेरे में है। अविद्या उस चेतन के आश्रय में ही जी रही है। सर्व श्रेष्ट चेतन ही है। चेतन परम धर्म हैं और इस के आश्रय में रहने वाले सब धर्म हैं। धर्म की व्याख्या व्यापक है। वेदों में धर्म की व्याख्या इसी प्रकार की गई है। इस चेतन ने ही सब को धारण कर के रखा है इस लिए यह परम धर्म है। इस सारे विश्व को धारण कर के बैठा है वही परम धर्म है। ऋषियों का ज्ञान है कि जो सारे ब्रह्माण्ड को धारण कर रहा है वही तुम्हारे शरीर को भी धारण कर रहा है। यह सब जीव उसी चेतन के आश्रय में जी रहे हैं। मुमुक्षु अपने मन को इस चेतन में मिलाए। तुम्हारा मन शोक मोह की खान है। यह शरीर भी शोक मोह का भंडार है। यदि इसी में अपने को बांध कर रखोगे तो शोक मोह में ही डूबे रहोगे। इस से बाहर निकलो। अपने मन को विश्वात्मा में मिलाओ

एकत्व देखने वाले में शोक मोह नहीं रहता।

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।"

ज्ञान जितना विशुद्ध होगा, जितना ऊंचा होगा उतना ही अच्छा कर्म करने की शक्ति तुम में आएगी। भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद से कहते हैं इस प्रकार मन वाणी और इन्द्रियों का संयम करने वाला महान शक्तिशाली हो जाता है। अर्थात उस की संकल्पशक्ति, ज्ञानशक्ति बढ जाती है। और वह वहाँ तक स्वेच्छा से जा सकता है जहां तक मन की पहुंच है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ११

३०-४-८५

"ॐ स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुंचेच्छेयेत्यथेच्छेते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ।।"

(छान्दोग्योप० ७।३।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं कि यह वाणी यदि ज्ञान के आश्रय में नहीं रहेगी तो यह अपने लिए ही दुखदायी है। वागिन्द्रिय का तप वाणी को ठीक रखना है। बुद्धिमान वाणी से ऐसा बोले कि सुनने वालेका हृदय भी शान्त हो जाए। ऐसा वचन कभी मत बोलो कि दुसरे को उद्वेग उत्पन्न हो। "अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्" अपने हृदय के मैल को दूसरे के हृदय में मत फैंको। अपने मन का कचरा मन के कोने में पडा रहे। मैला सारे घर में मत फैलाने दो। वैदिक सनातन धर्म सत्य पर आधारित है। वेद विहित कर्म जो "पूर्वैः पूर्वतरं कृतं" जो पूर्व काल से चले आ रहे हैं। जो कर्म आत्मा के लिए हो सदा सत्य होने से वह सनातन है। केवल घृणा से कोइ काम नहीं होता

लोक जीवन में भी विवेक से अपने जीवनको व्यवस्थित करना है। परत्मा से सदैव प्रार्थना करो कि हे प्रभु मुझे अपना तेज प्रदान करो। जिस से मैं तुम्हें जान सकूं। विश्वामित्र ऋषि गायत्री मन्त्र के द्रष्टा हैं। "ध्यायेतेजोमयं ब्रह्म" सदा गायत्री मंत्र की प्रार्थना करो। विलक्षण तेज ज्ञानभयी ज्योति है। इस महान दिव्य तेज का ध्यान करो। भौतिक ज्योतिको पकडने से, भौतिक तेज का ध्यान करने से भूतों में ही रह जाओगे। इस लिए ज्योति स्वरूप आत्मा का ध्यान करो।

व्यसन कोई भी हो पहले तुम उसे पकडते हो परन्तु बाद मे व्यसन तुमको पकड़ लेता है। कथा आती है। एक गुरू शिष्य नदी किनारे घुम रहे थे। दोनों ने देखा नदी के तेज धारा में एक काला कम्बल बहता हुआ जा रहा है। चेला लालच में आ गया नदी में कूद पडा। कम्बल के पास पहुंच कर उसे पकड़ लिया। पर थोडी देर तक दोनों में खेल सा चलता रहा। कभी कम्बल ऊपर चेला नीचे और कभी चेला ऊपर कम्बल नीचे। गुरू जी भी कुछ देर तक तो तमाशा देखते रहे सोचा शायद चेला कलाबाजी दिखा रहा है। फिर जोर से आवाज लगाई जल्दी बाहर आ जाओ। नहीं ला सकते तो कम्बल को छोड दो पर स्वयं तो निकल आओ। परन्तु चेला चिल्लाया कि गुरू जी मैं तो कम्बल को छोडना चाहता हूं पर अब तो कम्बल ने मुझे ऐसा पकड लिया है कि यह मुझे छोड ही नहीं रहा। वास्तव में वह कम्बल नहीं था। भालू था जो कहीं भूले से तेज धारा में फंस गया था। सहारा पाते ही उसे पकड लिया। इसी प्रकार जब व्यसन तुम्हे पकड लेता है तो तुम चाह कर भी उस से छुट नहीं सकते।

मुमुक्षु विषयों से जो भी सम्बन्ध जोडे विवेक पूर्वक ग्रहण और त्याग की भावना से ही जोडें। ग्रहण और त्याग का Balance बना कर रखना चाहिए। सारे विश्व का प्रकाश तो सूर्य भगवान ही कर सकते हैं। जिस के हाथ में केवल टार्च ही है वह कितना प्रकाश कर सकता है। मुमुक्षु सदा याद रखे ईशावास्योपनिषद का मंत्र है **"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यांजगत्**
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"
भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। यह सब भोग त्याग की भावना को सामने रखकर लो। यह समस्त जगत उस सर्वशक्तिमान परमात्मा से व्याप्त है। उस

विश्वरूप परमात्मा की पूजा के लिए ही सब कर्म करो। मन को विषयों में मत फंसने दो। यह भोग्य पदार्थ आज तक किसी के भी नहीं हुए। भक्त के हृदय में लोभ मोह काम क्रोध आदि प्रबल नहीं होते। वह दवाई की तरह इन का सेवन करता है। दृष्टि सदा सत्य पर रखो। यह चेतन ही जीवन है। इस के बिना कोई आज तक जी नहीं सका। वह चेतन प्रकाश ही वैदिक सनातन धर्म है। यह सार्वभौम धर्म है। राजमार्ग है। इस को छोडकर गली कूचों में क्यों भटकना। भिन्न २ मत मतान्तर इन गली कूचों की तरह ही हैं। मत माने बुद्धि के अनुसार अपना मत प्रतिपादित करना। सार्वभौम धर्म मानव धर्म है। विश्व धर्म है।

ऋषि प्रार्थना करते हैं "**सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:**
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत् ।"

इस देहरूपी पिंजरे में चेतन फंस गया है।
माया ने इस जीव को इस पिंजरे में बांध रखा है। ब्रह्म विद्या इसे मुक्त कराती है। बुद्धिमान सदा उदार वृत्ति रखे। प्रकृति के राज्य का यह नियम है कि जिस बंगले में रह रहे हो, उसे भी यहीं छोड जाओ। यहां से कुछ भी लेकर नहीं जा सकते। दुनियां के सब काम करते हुए अपने को सदा याद रखो। "का ते कान्ता कस्ते पुत्र: संसारोऽयमतीव विचित्र: " यह संसार बहुत ही विचित्र है। अपना ही रूप प्रतिक्षण बदलता जा रहा है। कहाँ से आए. कहाँ जा रहे हो? विचार करो। इस संसार में जो भी मिला है उस की कीमत चुकानी है। सब आत्मा का ही खेल चल रहा है। माता पिता भाई बहिन सब सम्बन्ध आत्मा से ही हैं। माया का पर्दा पडा हुआ है। "आत्मैवेदं सर्व" अधर्म अनात्मा है और धर्म आत्मा है। देहादि अनात्मा है। इसे ही सब कुछ मान लेना, इसी के लिए सब कुछ करना अधर्म है। जो सदा मर रहा है उसे अमर करने का प्रयत्न करना ही अधर्म है।

ज्ञानवान आत्मा की ही प्रशंसा करे। प्रतिष्ठा करे। आत्मा से प्यार करने के लिए हृदय में इस का ध्यान करे। मन का साक्षी मन से न्यारा समझ कर इस का ध्यान करो। सांसारिक वस्तुएं देखने का सत्य है और इनकी आत्मा परम सत्य है। यही जगत की आत्मा है। फल फूलों में रसात्मा है। "रसोह-

मप्सु कौन्तेय" गीता में भगवान स्वयं कहते हैं मैं ही रस रूप ग्रात्मा हूं । उपनिषद इस की पुष्टि करते है "रसौ वै सः" तैत्तिरीय श्रुति है । इस शरीर को नोकर समझो । इसी में रहते हुए "ग्रमृतोऽहमस्मि" "ब्रह्मैवाऽहमस्मि" ग्रपने को सदा इस से न्यारा समझो । चेतन से ही मित्रता करो । सदा इसी के साथ ग्रभिन्न हो कर रहो ।"

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

१।५।८५

प्रवचन सं. १२

"ॐ स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्तिभगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।"

(छान्दोग्योप० ७।३।२)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह वाणी भी प्रकाश है । स्पष्ट वाणी स्पष्ट शब्द बोलेगी । उन शब्दों के द्वारा ग्रर्थ का प्रकाश होगा । वाणी से ही धर्म ग्रधर्म सत्य ग्रसत्य साधु ग्रसाधु सभी का व्याख्यान होता है । पशु पक्षी तो इस पेटरूपी हंडी को भरने तक ही सोचता है । सब योनियों का भोग उस २ योनि में मीठा लगता है । "स्वसंस्कार साक्षात्कार करणात्" ज्ञान का प्रकाश जाग्रत होता है तब ग्रपने संस्कार दीखने लगते हैं । सात्विक बुद्धि में ही संस्कार दीखते हैं । उस परमात्मा का ध्यान करने से पाप संस्कार जल जाते हैं ग्रौर बुद्धि निर्मल हो जाती हैं । निर्मल बुद्धि ही सात्विक विचार देती है । लोभ मोह से बुद्धि राजसी व तामसी होती है । ऐसी बुद्धि में शुद्ध संस्कार नहीं जाग्रत होते ।

जिस धर्मशाला में जितना कम रहो उतना कम मोह उस से होता है । इस शरीर को भी धर्मशाला ही समझो । "धर्मं शालयति इति धर्मशाला" जो धर्म की शोभा बढावे वह धर्मशाला । धर्म का व्याख्यान कल किया था । धर्म

अर्थात् आत्मा । यह चेतन आत्मा ही सर्वोत्तम धर्म है । इस शरीर में आने पर ही इस आत्मा का ऐश्वर्य फैलता है । दीखने में आता है । जो इस ऐश्वर्य के ठीक से उपयोग में लाता है ठीक से इस का उपभोग करता है वह इस की शोभा बढाता है । अच्छे मन से अच्छे विचार से ही आत्मोन्नति सम्भव है । भोगों में तो पशु अपने से अधिक स्वतंत्र है । जो चीज अपने अन्दर होती हैं वही सामने वाले में भी आती है। जरा क्रोध से किसीको गाली दे कर देख लो। तुम यदि क्रोध की हंडी खोल कर बैठोगो तो दूसरा क्या करेगा । जो दोगे वही मिलेगा । यह संसार ऐसा ही है । तुम तत्त्व ज्ञान में रहोगे तो घर में शान्ति रहेगी । पशु भी भाव को समझता है । जब तुम्हारी आंखो में हिंसा का भाव होता है तो पशु भी जान जाता है। अन्तरात्मा सब जगह परिपूर्ण आनन्दरूप हो कर विराजमान है । तभी तो पशु को भी अपने भोग में आनन्द की प्राप्ति होती है ।

ज्ञान की वृद्धि होने पर वस्तु का वास्तविक स्वरूप समझ में आ जाता है । जगत का वास्तविक स्वरूप यह नहीं जो तुम्हें दीखाने में आ रहा है गीता में भगवान स्वयं स्पष्ट करते है "**न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो नचादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा** ।।"वेद श्रुति बडी महत्त्वपूर्ण है श्रुति कहती है "आत्मैवेदं सर्व" संसार में सब आत्मा ही ओत प्रोत है । माया ने मायापति को परदे में ढक रखा है । अपने रक्त मे ही देखो । सब cells चिन्मय हैं । तो यह समस्त जगत जड़ कैसे हो सकता है । सब ओर चिन्मय ही खेल रहा है । 'अश्वत्थं'' यह संसार अश्वत्थ कहा गया है । यह काल देवता " पश्यतो हरा" है । देखते देखते हीं तुम्हारा सब कुछ हरण करता जा रहा है पर यह जीव समझ नहीं पाता । विचारशील इस जगत मे बडी सावधानीं से रहे । परिवार मे परस्पर प्यार अवश्य करो परन्तु अज्ञान से नहीं । मूढ़ता से राग मत करो । । एक दुसरे की आत्मा का उत्थान करो । "असङ्गशास्त्रेण दृढ़ेन छित्वा" असङ्गतारूपी शस्त्र से मोह बन्धन को काटो । इस राग को काटते रहो ।

कारण दूषित होने से कार्य भो दूषित होता है । वैराग्य से ही आत्मा का उत्थान होंगा राग में फंसकर उन्नति कभी सम्भव नही । "साध्नोति पर कार्य

स साधु" जो संसार में दूसरे का भला करे वही साधु है जीवन पर और अपर दो भागों में बटा हुआ है। अपर जीवन सांसारिक जीवन है। शारीरिक सम्बन्ध भाई बहिन माता पिता पति पत्नी, बेटा बेटी सब व्यवहार अपर जीवन है। पररूप आत्मा है। जो अपर में व्यवहार करता हुआ पररूप आत्मा को सिद्ध करे वही साधु है। जीवनरूपी नदी में यह मनुष्य शरीर ही सर्वोत्तम स्टेशन है। यही इस सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा को माया के वन्धन से मुक्त किया जा सकता है। आत्मारूपी सत्य में जो निष्ठ हैं वही ब्रह्मवेत्ता है। हजारो में से कोई एक ही ऐसा तत्त्व निष्ठ होता है। जो है वह दीखता नहीं। जो नहीं है उसीको देखते जा रहे हैं। मानते जा रहे हैं। यही संसार है। काल देवता के थप्पड खाते खाते शरीर फूल गया। मां समझती है। बेटा जवान हो गया है।

अपने विचार को, ज्ञान को संकल्प और कर्म को जो ठीक समझे और करे वही साधु है। ऐसा साधु संसार में जहां भी रहेगा अन्य जीवों का उद्धार ही करेगा। मदालसा रानी थी। महान ब्रह्म वेत्ता थी। अपने बच्चों को दूध के साथ ही तत्त्व ज्ञान की गोली खिलाकर उन को संसार सागर से मुक्त करा दिया। बचपन में ही जब वह बच्चे को दूध पिलाती है। बच्चा रोता है मदालसा कहती है "**शुद्धोसि बुद्धोसि निरंञ्जनोसि संसारमायापरिवर्जितोसि।**

संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्।।"

मदालसा कहती बेटा तू शुद्ध है तू बुद्ध है अर्थात् बोध स्वरूप है ज्ञान स्वरूप है। तू निरञ्जन है। तुम में किसी प्रकार का अञ्जन, मल, नहीं। संसार की माया तुझ में नहीं है। यह संसार तो स्वप्न है मोह निद्रा त्याग और अपने स्वरूप को समझ। कहते हैं उस के तीन बेटे पाँच वर्ष के होते होते ही घर त्याग कर निकल गये। तब राजा को चिन्ता हुई उसने रानी को समझाया कि यदि सब ऐसे ही चले जाएंगे हो इस राज्य को कौन सम्भालेगा। अब होने वाले बच्चे को राजनीति की शिक्षा दो। तब चौथा पुत्र राजनीति में पारंगत हो कर राजा बना। परन्तु उस के गले में भी मां ने यही श्लोक लिख कर बाँध दिया था कि मुसीबत में इसे देखना। भाईयों ने देखा कि हमारा चोथा भाई संसार में फंस गया। उन्हों ने ऐसी योजना बनाई कि पडोसी राजाओं ने मिलकर उस पर

आक्रमण कर दिया। वह चारों ओर से घिर गया। तब उस के परमहंस भाई आए और उसे ज्ञान का उपदेश किया और इस प्रकार उसे भी राग रहित करके अपने साथ ले गये। माँ ऐसी होनी चाहिए कि अपने बच्चे को जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति दिला दे। ऐसा विचार दे कि उसे पुनः माता के गर्भ में न आना पड़े।

सोचो तुम स्वयं अग्नि रूप हो। ज्ञान रूप हो। जो तुम्हारे संसर्ग में आएगा वह अग्नि रूप ही हो जाएगा आत्मा से आत्मा को पकडो। मन से मन को पकडो। केवल शरीर का ही सम्बन्ध मत जोडो। जो केवल शरीर सम्बन्ध में ही जीएगा। उस का जीवन पशु तुल्य ही रह जाएगा। अपने जीवन के महत्त्व को समझो। मानव शरीर बडा दुर्लभ है। इस का उद्देश्य केवल भोग भोगना ही नहीं। महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह मानव शरीर मिला है। भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते आरहे है कि अर्थोसे इन्द्रियां महत्त्वपूर्ण हैं। इन्द्रियों से उत्तम प्राण है। प्राण से उत्तम मन है। इस लिए मुमुक्षु इस मन की ब्रह्मरूप से उपासना करता है वह कामचारी हो सकता हैं। अर्थात् जहां तक मन की पहुंच है वहा वह स्वेच्छा से जा सकता है। इस लिए हे नारद तुम इस मन की ब्रह्मरूप से उपासना करो। नारद ने जिज्ञासा की कि मन से आगे क्या है? हे भगवन मैं मन को ब्रह्मरूप से उपासना करता हूं। कृपा कर के इस से भी परे क्या है। मुझे समझाईए। भगवान सनत्कुमार कहते हैं अच्छा आज तो ध्यान करो कि यह मन ही ब्रह्म है। आगे कल आप को समझाएंगे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० १२

२-५-८५

"ॐ सकंल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।"

(छान्दोग्योप० ७।४।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद मन से उत्तम संकल्प है। सङ्कल्प मन का धर्म है। इस जगत के सब व्यवहार धर्म हैं और आत्मा परम धर्म है सब शक्तियां यद्यपि दीखती तो शरीरमें हैं परन्तु है सब आत्मा की सत्ता। एक देखने का सत्य। जैसे शरीर इन्द्रियां आदि। परन्तु वास्तविक सत्य आत्मा ही है। शरीरादि की सत्ता केवल भान मात्र है। आत्मा की सत्ता से ही यह सब सत्य और प्रिय दीखते हैं। मुमुक्षु इस आत्मा में ही मन को खींच कर ले आवे। मन का स्वाभाव है कि मन उधर ही जाता है जिधर उसे प्रिय लगता है। हम यह नहीं जानते कि वास्तविक प्रियतर आत्मा की ही है। आनन्द तो अन्तरात्मा का है। वस्तु में विषय में अपना आनन्द कुछ नहीं। यदि विषय में आनन्द हो तो एक ही विषय एक ही समय में सब को प्रिय लगे। आनन्ददायक लगे। परन्तु हम देखते हैं हमारा यह अनुभव है कि ऐसा होता नहीं। एक वस्तु एक व्यक्ति के लिए सुखदायक होती है और दूसरे के लिए वही वस्तु दुखदायी हो जाती है। यही नहीं बल्कि एक ही व्यक्ति के लिए एक ही वस्तु सदा आनन्द नहीं प्रदान करती। यह सब विषय माया भगवती के दर्पण समझो। जैसा मुंह लेकर जाओगे वैसा ही दर्पण तुम्हें दिखाएगा। जैसे शीशे के द्वारा अपना ही मुख दीखता है इसी प्रकार तुम्हारा स्वयं का आनन्द ही तुम्हें विषय में दीखता है। तुम्हारा आनन्द जब विषयों में जाता है तो तुम्हें भासने लगता है। माया भगवती ने तुम्हें घुमाने के लिए यह सब दर्पण लगा रखे हैं।

भगवान कहते है **"ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषुरमते बुधः॥"** (गीता ५।२२)

बुद्धिमान इन विषयों में रमण नहीं करते क्यों कि यह सब विषय आदि अन्त वाले हैं और स्पर्शमात्र से ही दुख देने वाले हैं। कोई भी भोग ऐसा नहीं जो नष्ट होने वाला न हो। अथवा जिस की परिणति दुःखरूप न हो। जब हम अपना आनन्द विषयों में फैंक देते हैं, और विषयों का स्वभाव परिवर्तनशील है, विषय गायब हो जाता है और जीव दुखी हो जाता है। बाहर के विषय तभी आनन्द देते हैं जब हमारे मन में कोई विकार नहीं होता। मन में क्रोध या कोई अन्य विकार होने से बाहर कोई आनन्द नहीं भासता। व्यामोह का कारण यह है कि हम अपने आनन्द को समझ नहीं पाते। बुद्धिमान को चाहिए कि

अपने भीतर झांके। दृष्टि भीतर की ओर देवे और तत्त्व की खोज करे।

संसार में व्यवहार तो बाहर ही करना पडेगा। पर विवेक से चलोगे तो मन व्यवहार में ही सुरक्षित रहेगा। नहीं तो अच्छे शुद्ध मन को लेकर बाहर गये और लौटे तो मन में शोक मोह भर कर ले आए। मन को व्यवहार में से सुरक्षित लौटा कर ले आना भी बडी भारी कमाई है। "न तेषु रमते बुध:" सत्सङ्ग और शास्त्र हमारे मन में ऐसा विवेक उत्पन्न करता है जो हमें व्यवहार काल में भी नहीं छोडता। सदा हमारे साथ रह कर हमे जाग्रत करता रहता है। इसलिए यह विवेक ही हमारा सच्चा मित्र है। इस जगत मे हम वही सम्बन्ध बनाते हैं जो हमें प्रिय लगता है। जो हमारे मन को भाता है। पर जितने अधिक सम्बन्ध बनाएंगे उतना ही शोक मोह बढता जाता है। प्रिय वहीं लगता है जो हमारे स्वर में स्वर मिला कर चले। हमारे साथ रोये। हमारे साथ हंसे। परन्तु ध्यान रखो अपना विक्षेप दूसरे के मन में कभी नहीं फेंकना चाहिए। बुद्धिमान विक्षेप में घबराता नहीं मन को चेतन में लगाओगे तो विक्षेप में भी मन शान्त बना रहेगा। लौकिक उपाय से गया हुआ विक्षेप पुन: लौट कर आजाता है। पर विवेक से गया हुआ विक्षेप पुन: लौट नही सकता।

विवेकशील जीवनका सुख बाहर से नहीं खोजे। अपने भीतर ही आनन्द की खोज करे। मन शान्त होगा तो सुख की अनुभूति होगी। इस निर्मल शान्त मनको आत्मा में प्रविष्ट करो। यह सब विलास वाणी का ही है। यह हृदय अपने अति प्रिय के सामने ही खोला जाता है। हृदयज्ञ माने हृदयको जानने वाला। जो अपना अति समीप होगा वही हमारा हृदयज्ञ होगा। हृदय शब्द भी बडा महत्त्व पूर्ण है। 'हृ' का अर्थ है अन्दर से बाहर ले जाना। 'द' का अर्थ बाहर से अन्दर लाना। य-यम् माने नियन्त्रण करना। इस प्रकार जो अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर आने जाने वाले भावों का नियन्त्रण करे वह स्थान हृदय है। और जो इस हृदय को जानता है वह हृदयज्ञ है। इस क्रिया के नियन्ता तुम स्वयं हो। तुम में निद्रा नहीं तुम तो सदा "सकृत् सदाविभास:" हो। यह सारी अवस्थाएँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुम्हारी हैं। परन्तु तुम इस सब के साक्षी सब से न्यारे, सबके द्रष्टा हो। यह शरीर तुम्हारा महल है और यह प्राण इस में ध्वजा की तरह लहरता रहता है। जब तक

महाराजा अन्दर है तब तक यह झण्डा लहराता रहेगा। यह सब का सब व्याख्यान वाणी का विलास है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं जो इस वाणी की ब्रह्मरूप से उपासना करता है। वह जहाँ तक वाणी की गति है वहां तक स्वच्छन्दरूप से जा सकता है। परन्तु वह सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा वाणीका विषय भी नही है। श्रुति स्पष्ट करती है **"यतो वाचो निवर्तन्ते"** जहाँ से वाणी भी लौट लाती है। अर्थात वह वाणी से परे है। यह जीव यदि वासना के अधीन हो कर जाएगा तो वासनारूपी रस्सी से बंधा हुआ उधर हीं जाएगा जिधर की वासना होगी। ब्रह्म वासना इस वासना का क्षय करती है। जब वासना क्षय हो जाती है तब जीव स्वच्छन्द हो जाता है। जैसे ब्रह्म व्यापक है ऐसे ही वाणी भी सर्व शब्द जगत में व्यापक है और अर्थ में भी व्याप्त है। सारा जगत वाणी के अधीन है। यह वाणी मन के अधीन है। और मन से उपर संकल्प है। मन संकल्प का आश्रय है। जैसा संकल्प करोगे वैसा ही तुम्हारा मन हो जाएगा। जैसा मन होगा वैसी वाणी हो जाएगी। अतः संकल्प शुद्ध करने का मुमुक्षु सदा प्रयत्न करता रहे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. १४

३-५-८५

"ॐ तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि।"

(छान्दोग्योप० ७।४।२)

नारद ऋषि भगवान सनत्कुमार से प्रश्न करते आ रहे हैं और भगवान सनत्कुमार जी भी नारद के प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं। पहले नारद ने पूछा वाणी से परे क्या है? भगवान सनत्कुमार ने पहले वाणी और शब्द की ब्रह्मरूप से उपासना का फल बताया। वाणी के उपर क्या तत्त्व है यह समझाते हुए आ रहे हैं। कोई शब्द ब्रह्म का वर्णन करने वाला है। कोई स्वर्गादि लोकों

का वर्णन करता है। इस लिए यह वागिन्द्रिय बड़ी महान है। बुद्धिमान वाणी का दुरूपयोग कभी नहीं करे। वाणी का तप महान पुण्यदायी है। 'सत्यं ब्रूयात्' 'प्रियं ब्रूयात्' 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' 'प्रियं नानृतं ब्रूयात् इति धर्मः सनातनः'' श्रुति कहती है। वाणी से ऊपर मन है। ''मननाय मनः'' यद् धीर्ध्यायति मनसा तद्धीर्वाचा वदति यद्धीः कर्मणा कुरूते तद्धीः कर्मणा सम्पद्यते'' जो पहले बुद्धि में आया वह मन में आया। जो मन में आया वह वाणी में आया। इन्द्रियों में आया और फिर वह कर्म में आया। फिर कर्म के फल के रूप में कर्ता को पकडेगा। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। यदि मनन नहीं होगा तो या तो जीवन में सूनापन आ जाएगा या पागलपन। मन अशान्त, अस्थिर होने से सत्य को नहीं पकड सकता। मन ही मनुष्य का सब से बडा मित्र है। इसे मना कर आत्माभिमुख करो। बाकी सारे सम्बन्ध शरीर तक ही सीमित हैं। तुम अकेले आए हो अकेले जाओगे। यह तो बीच में नौका में बैठ गये तो सब से अपनापन बाँध लिया। परिवार में भी एक दूसरे के ज्ञान की वृद्धि करो। केवल शोक मोह के लिए ही परिवार नहीं है। मदालसा की तरह बच्चों में आत्म बोध जाग्रत करो। जैसे अंजन आंख की सीमा में रहता है तो आंख को सुन्दर बनाता है परन्तु यदि सीमा से बाहर चला जाए तो असुन्दर कर देता है। इसी प्रकार माया भी सीमा में तो अच्छी लगती है परन्तु अन्धा मोह बन्धन का ही हेतु है। मन को जिस वृत्ति में लगाओगे मन वही वस्तु सामने लाएगा। मुमुक्षु सदा अभ्यास के द्वारा मन को ब्रह्माकार वृत्ति में ले जाए। यह मन लोक जीवन और आध्यात्मिक जीवन का प्रकाश है। दीप देहली न्याय के अनुसार मन दोनों का प्रकाश करता हे। यही मन ब्रह्म पुत्र है। इसे धर्म विरूद्ध वृत्ति में मत जाने दो। जीवन का प्रत्येक कर्म दिव्य होना चाहिए। विवेकी का संकल्प वाणी और कर्म दिव्य हो जाना चाहिए। मन का संकल्प वाणी में आता है। अतः मन वाणी से महान है। मन परमात्मा का दिव्य चक्षु है।''मनोऽस्य दैवं चक्षुः'' तुम्हारी आत्मा इस मन रूपी यन्त्र के द्वारा ही नाना प्रकार की कामनाओं को देखता है। उनमें रमण करता है। ''स मनसा पश्यति, मनसा शृणोति मनसा विजानाति'' इस का तात्पर्य यह था कि मन ही चक्षु है मन ही चक्षु है मन ही कर्ण है और मन ही बुद्धि है। बृहदारण्यक श्रुति कहती है—

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
५०६१

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा,

धृतिरधृति ह्री र्धी र्भी रित्येतत्सर्वं मन एव"

यह जीव अपनी कल्पना में सोचता है कि भगवान कहीं अपने लोक में होगा। परन्तु वह अखण्ड तत्त्व कहीं बाहर नहीं तुह्मारे भीतर ही विद्यमान है। **एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्या बुद्धचा सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः।।** (कठोपनिषद १।३।१२)। गीता में भी कहा है कि सब भूतो में वह गूढ आत्मा छिपा हुआ है। सबको दिखाई नहीं देता। भगवान कहते हैं "नाहं प्रकाशःसर्वस्य योगमायासमावृतः" मैं अपनी ही योगमाया द्वारा ढका रहता हूं। एक बात समझो जैसे जो चतुर स्त्री होती है वह अपने पति को जल्दी किसी को मिलने नहीं देती। इस प्रकार भगवान की योगमाया है वह इसे सब के सामने प्रगट नहीं होने देती। देह के साथ जो आत्मा का सम्बन्ध है यही योग-माया है। उस सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा का अनुभव तब होता है जब मन की वृत्तियां अन्तर्मुख होती है। जैसे शिव का भक्त शिवलिङ्ग पर चांदी का मुकुट चढा देता है ऐसे ही तुह्मारा यह शरीर इस आत्मा का मुकुट बना हुआ है। अपने मन का अन्तरमुख करने के लिए मुमुक्षु प्रति दिन अपने सांसारिक कार्यों से निवृत्त हो कर एकान्त में बैठ कर विचार करे कि यह संसार क्या है? मैं कौन हूं ? मैं यहाँ सदा रहने वाला नहीं हूं ? जिस के अन्तःकरण में विचार कणिका का प्रादुर्भाव हो जाता है उस का सब से बडा पुरूषार्थ सिद्ध हो जाता है। क्यों कि "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मासात् कुरूतें तथा (गीता ४।३७) विचार के सामने संसार क्षीण हो जाता है। इस लिए मुमुक्षु विचार के द्वारा अपने मन की चिकित्सा करे।

"**मनोब्रह्मेत्युपासीत**" मन भी ब्रह्म है। इस मन की ब्रह्मभाव से उपासना करो। अच्छी वस्तु का बारम्बार चिन्तन करने से जीव ब्रह्म तक पहुंच सकता है। ब्रह्म भाव में प्रतिष्ठित हो सकता है। वशिष्ठ जी राम जी को उपदेश देते हुए कहते हैं "**संकल्पपादपस्य तृष्णालतां छित्वा......**

मनरूपी जंगल में संकल्प विकल्प रूपी वृक्षों की तृष्णा रूपी लताएं ज्ञान रूपी खड्ग से समूल नष्ट कर दो और द्रष्टा भाव में स्थित हो कर संसार में सुख पूर्वक विचरण करो। इस संसार में सब से अधिक व्यवहार वाणी का है।

इस लिए इसे सुन्दर बनाओ। महाभारत का इतना बड़ा युद्ध द्रौपदी की वाणी के कारण ही हुआ "अन्धे की सन्तान भी अन्धी है"। बुद्धिमान वाणीको समाहित कर के वोले। वाणी से उत्तम मन है। इस मनका संशोधन सत्सङ्ग के द्वारा करो। यदि मन का परिवर्तन नहीं हुआ तो सत्सङ्ग का क्या लाभ हुआ ? यह तो ऐसे ही रहा जैसे चौकीदार किसी यूनिवर्सिटी में २५ वर्ष तक भी रहा। पर जैसे का तैसाही रहा। उस के सामने हजारो हजारो लड़के डाक्टर इन्जीनियर वकील बन गये परन्तु वह चौकीदार वहीं का वहीं रहा। मृत्यु से बचने के लिए अमर तत्त्व की खोज करो। अमरत्व हमारा स्वभाव है। मृत्यु नकली है और यह शरीरादि भी नकली है। मृत्यु नकली को ही पकड़ती है। ऊंचे विचार करना मनको ऊंचा उठाना है। सत्य की खोज करना, आत्मरूप को समझना धर्म है। अपनी प्रज्ञाकी रक्षा करना धर्म है। मन से महान संकल्प है। प्रज्ञा अच्छी होगी तो संकल्प भी उत्तम होगा। इस संकल्प की उपासना करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

४-५-८५

प्रवचन सं. १५

ॐ समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषां सङक्लृप्त्यै वर्षं सङ्कल्पते वर्षस्य सङक्लृप्त्या अन्नं सङ्कल्पते ......"

(छान्दो. ७।४।२)

भगवान सनत्कुमार कहते आ रहे हैं कि हे नारद यह सारा ब्रह्माण्ड वाणी के अन्दर है। यदि यह वाणी बन्द हो जाए तो विश्व के बहुत से झगडे तो स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे। वाणी से महान मन है क्यों कि वाणी वही शब्द बोलती है जो पहले मन में आता है। मन का ध्यान गलत होते ही वाणी बिगड जाती है अतः मन का सन्तुलन बनाए रखना भी धर्म है। सुन्दर विचार होने से ही वाणी सुन्दर रहेगी। क्रोधका पुट लग जाने से शब्द फट्‌फट्

निकलता है। भावना भी सुन्दर होनी चाहिए। यह शरीर भावनामय ही है। यह जगत भी मन की भावना के अनुरूप ही दीखता है। जैसी भावना होगी वैसा ही यह संसार दीखेगा। इस लिए इस भावना को ब्रह्ममय बनाओ। ब्रह्मभाव दृढ़ हो जाने से सारा जगत ब्रह्ममय दीखने लगता है।

श्री मद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान यदु को उपदेश देते हुए कहते हैं। **"यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया। स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ।।"** इस लोक में हमारा मन तीन प्रकार की भावना से जाता है। प्यार से (स्नेह से), द्वेष से और भय से। मन जिस भाव से जाएगा वही आकार दिखाई देने लगेगा। जैसे भृङ्गी कीड़ा जिस कीड़े को पकडता है उसे अपने जैसा ही बना लेता है। **"स्ववर्गे परमा: प्रीति:"** स्वभाव से ही सब को अपने अपने वर्ग में परम प्रेम होता है। पर इस आत्मा में जो मन जाएगा वह श्रद्धामय प्रेम से जाएगा। यह आत्मा देवाधिदेव है। अपनी चित्त वृत्ति को श्रद्धामयी बना कर इस अन्तरात्मा में लगाओ। इस शरीर में परमात्मा ने तीन यन्त्र लगाए हैं। ज्ञान का यन्त्र बुद्धि, संकल्प का यन्त्र मन और कर्म का यन्त्र इन्द्रियां। इन तीनों यन्त्रों को ठीक रखोगे तो लोक लोकान्तर में सुखी रहोगे। जैसे मुट्ठी में दो आम्ले या दो बेर पकड़े जा सकते हैं ऐसे ही इस मन में शब्द और अर्थ पकडे हुए हैं। मन के बिना कोई भी इन्द्रिय काम नहीं करेगी अकेली इन्द्रियां ठीक से चल नहीं सकती। मनुष्य के पास ज्ञान का यन्त्र बड़ा बलवान है। मनुष्य ही ईश्वर की सृष्टि में समस्त योनियों का सम्राट् है। इस लिए समस्त जीव इस से डरते हैं। जब यह अपनी शक्तिका विचार नहीं करता तो भोगों में ही अपनी शक्ति नष्ट कर देता है। अपना संकल्प दृढ कर के ही दूसरे को बांधा जा सकता है। वेद मन्त्रों को पढने के लिए या कोई भी अन्य कार्य करने के लिए भी पहले संकल्प होता है। हिन्दु परम्परा में कोई भी धार्मिक कर्म करने के पहले ब्राम्हण संकल्प कराते हैं। वेदों का अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व भी ऋषि संकल्प करता है। अत: संकल्प की शक्ति महान हैं। जैसा संकल्प करोगे वैसे ही बनोगे। इस मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है। अर्जुन इतना वीर और धीर होते हुए भी भगवान कृष्ण के उपदेश करने पर कहता है, **"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलबद्दृढम्।**

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्''। अर्जुन कहता है कि हे भगवान मेरा मन चंचल होने के कारण में आप की वात समझ नहीं पा रहा हूं। मन को रोकना वड़ा टेढा लगता है। वायु को पकड़ना एक बार सम्भव हो भी सकता है पर इस मनको पकडना वायु से भी कठिन है। भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बना कर इस मन को रोकने के साधन मुमुक्षु को वताते हैं कि इस को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा रोका जा सकता है। **'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।''** मुमुक्ष बार बार ब्रम्हाकार वृत्ति में मन को लगाने का अभ्यास करे। ''अहंब्रह्मास्मि' वृत्तिको धीरे धीरे दृढ़ करो। बार बार अभ्यास करने से वृत्ति दृढ होती है। मन की स्थिति धीरे धीरे दृढ होगी क्यों कि यह मन जन्मजन्मान्तर से अनात्मा में ही गुड़ा हुआ है। मन तुम्हारी सुनता है परन्तु जैसा तुम उसे समझाओगे वैसाही यह समझेगा। इसे विवेक से समझाओ। विवेक माने सद् असद् विचार। सद् केवल ब्रह्म है। बाकी सारा जगत असद् है मिथ्या है। असत् से वैराग्य धारण करो। मन में विकारों को मत पनपने दो। मन की पवित्रता ही सर्वोत्तम है। शुद्ध संकल्प करो। यह शरीर चमडेका बैग है इस से वाहर निकल कर मन को विश्वात्मा में लगाओ। सारा जीवन दूसरों से तो मिलते रहे पर अपनेको मिले ही नहीं। मन का उत्थान करने के लिए गुरु की आवश्यकता है। सद् गुरु ही तुम्हे चेतन आत्मा की ओर प्रेरित करेगा।

वह परमात्मा सर्वज्ञ है सर्ववित् है। ज्ञान रूप तप उस परमात्मा का है। ज्ञान तुम्हें कभी छोडे नहीं इस के लिए अपनी स्मृति को ठीक रखो। अपने संकल्प को ठीक रखो। स्मृति मन के अधीन है इस लिए मन को ठीक रखने से स्मृति ठीक रहेगी। परमात्मा ने मन की सृष्टि मनन करने के लिए की है। 'मननात् मन:' बहुधालोग कहते हैं परलोक किस ने देखा है। यह तुम्हारा मनुष्य शरीर मनुष्य लोक है तो अन्य जितने भी शरीर हैं सब परलोक ही हैं। यहीं देखलो ! पशु शरीर पशु लोक है। परलोक अर्थात दूसरा लोक। मानव शरीर से इतर जो भी शरीर हैं सब परलोक हैं। जीव वहीं जाता है जहां मन जाता है। इसलिए मन पर ध्यान रखना चाहिए। मन के न जाने पर किसी के कहने पर भी नहीं जाएगा। मन: हि आत्मा मन: हि लोको मन: ब्रह्म'' इस लिए मन

को सुव्यवस्थित करो।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:"

(ब्रह्मबिंदु उपनिषद्-२)

यह मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का हेतु है। सामान्य व्यवहार काल में तो विद्वान मी पशु के ही समान है। भूख लगने पर दोनों बराबर हैं। डंडा दिखाने पर पशु भी भागेगा और विद्वान भी। प्यार दिखाने पर दोनों ही सामान्य रूप से प्रसन्न होते हैं। मन का आना जाना ही स्वप्न सुषुप्ति और जाग्रत है। प्रकृति के नियम से ही तुम जीवन का चौथाई भाग तो नाम रूप जगत से मुक्त रहते हो। सुषुप्ति अवस्था में। जाग्रत काल में ज्ञान से इस नाम रूप से उठने का प्रयत्न ही साधना है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह मन संकल्प के अधीन है इस लिए संकल्प मन से श्रेष्ठ है।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं १६

५-५-८५

ॐ सङ्क्लृप्त्यै प्राणा सङ्कल्पन्ते प्राणानां सङ्क्लृप्त्यै मन्त्रा सङ्कल्पन्ते मन्त्राणां सङ्क्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणां सङ्क्लृप्त्यै लोक: सङ्कल्पते लोकस्य सङ्क्लृप्त्यै सर्वं सङ्कल्पते स एष सङ्कल्प सङ्कल्पमुपास्स्वेति"

(छान्दो० ७।४।२)

महर्षि नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन मन से ऊपर भी कुछ है ? भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह मन संकल्प के अधीन है, इस लिए संकल्प मन से श्रेष्ठ है। दूसरे से मिलना सरल है पर अपनी आत्मा से मिलने के लिए व्यवस्था करनी पडती है। जैसे किसी महाराजा से मिलने के लिए व्यवस्था करनी पडती है ऐसे ही इस आत्मा से मिलने के लिए भी पहले कुछ

करना पडता है । आत्मा के मार्ग में कई बाधक हैं । पहले तो यह इन्द्रिया ही बडी बाधा डालती हैं । इन्द्रियां जीव को बाहर के विषयो में फुटवाल की तरह उछालती हैं । मुमुक्षु बडी सावधानी से इन इन्द्रियों को सन्तुष्ट करे । गीता में भगवान कहते हैं "**इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च । जन्ममृत्युजरा व्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।** (गीता अ० १३।८) इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य धारण करे । संयम से भोग ले । संसार के सब भोग तुम्हारे लिए ही नहीं हैं । अपने मन को बार २ जन्म मृत्यु जरा रोग आदि के दुखों की स्मृति दिलाने से विषयों से वैराग्य हो जाता है । भोग तो औषधि की तरह इन्द्रियों को देना चाहिए । यदि भोजन की तरह लेंगे तो यह भोग हमें समाप्त कर देंगे ।

भर्तृहरि ने लिखा है "**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता स्तपो न तप्ता वयमेव तप्ताः । कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।**

(वैराग्य शतक–१२)

हम सोचते कि हम भोगो को भोग रहे हैं । परन्तु अब पता चला कि यह तो भोगों ने ही हम को भोग लिया है । लाखों आए और भोग भोग कर चले गये । परन्तु भोगों मे तो कमी आई नहीं । भोगने वाले ही समाप्त होते गये । इस धराधाम पर कितने राजा महाराजा आए और चले गये । "सम्मीलने नयनयो र्नहि किंचिदस्ति" जब तक आंख खुली है तब तक अपने जीवन का नियन्त्रण करो । आगे कहा " कालो न यातो वयमेव याता' तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः" यह भोग हमारे जीवन रस को ब्लाँटिङ्ग पेपर की तरह सोख लेते है । हम सोचते है कि हम भोग भोग रहे है परन्तु परिणाम यह होता है कि यह भोग ही हमे समाप्त कर देते है । इसलिए ज्ञान को सामने रख कर भोग लो । इन्द्रिय संयम करो । भोग के साथ त्याग आवश्यक है । तेन "त्यक्तेन भुञ्जीथाः" मन और इन्द्रियों को एकाग्र करना महान तप है । मन स्वभावतः इन्द्रियों की ओर और इन्द्रियां विषयों की ओर ही जाती हैं । श्रुति है **पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात्पराङपश्यति नान्तरात्मन्, कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।**" स्वयंभू भगवान ने इन्द्रियों का मुख बाहर की ओर बनाया । अविवेकी पुरूष इस बात को जान कर उन्मत्त की तरह दुःख और शोक के समुद्र में डुबाने वाले विषयों में ही लगे रहते हैं । वे अन्तर्यामी परमा-

त्मा की ओर ध्यान ही नही देते । कोई विरला ही बुद्धिमान मनुष्य ऐसा होता है जो सत्सङ्ग स्वाध्यायके अमृतत्त्व को प्राप्त करने की इच्छा करता है । मन और इन्द्रियों को एकाग्र कर के आत्मा की ओर लगाना परम तप है ।
इन इन्द्रियों के भोगों से आज तक किसी का पेट भरा नहीं ।
सब भूखे ही मर जाते हैं । भोगों से तृप्त हो कर कोई नहीं गया । मुमुक्षु विवेक और वैराग्य के द्वारा भोगों से संयम करे । और मन को अन्तरात्मा में लगाए । श्वेताश्वेतर उपनिषद में ऋषि की कथा है । ऋषि ने बुद्धि रूपी गुहा में इस आत्मा के दर्शन किए । इस बुद्धि को गुहा कहा है । क्यों कि यह जीव के धर्म और अधर्म को छिपाती है । जीव को जब अपने धर्म और अधर्म का ज्ञान हो जाता है तो वह पुरूषार्थ करना छोड देता है । अपने धर्मको जानने से जीव प्रमादी हो जाता है, आलसी हो जाता है, कभी २ उसे अहंकार भी दबोच लेता है । जब वह जान लेता है कि मैं तो बडा धर्मात्मा हूं । मेरे समान पुण्यशाली कौन है ? जब जीव को अपने अधर्म का ज्ञान होता है तो वह भयभीत हो जाता है । इस लिए बुद्धि जीव को धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं होने देती उन को छिपा कर रखती है । इस लिए इस बुद्धि को गुहा कहा है ।

ऋषि ने इस बुद्धि रूपी गुफा में देखा कि रात्रि में सब प्राणी इस में एक घोंसले की तरह प्रवेश कर जाते हैं । जगत की रात महाप्रलय है । उस में यह सब जीव परमात्मा में लीन हो जाते हैं । जैसे बट के बीज मे ही विशाल वृक्ष है ऐसे ही इस परमात्मा में यह प्रजाएं ओतप्रोत हैं । जैसे दूध के कण कण में मक्खन व्याप्त है ऐसे ही यह परमात्मा इस जगत के कण कण में व्याप्त है । जिस के बिना कान सुनता नहीं, आंख देखती नहीं वाणी बोलती नहीं । वह अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक अपने अन्दर विराजमान है । जब सारे ब्रह्माण्ड की वह आत्मा है तो अपनी आत्मा भी वही है । माया की नगरी उपाधिकृत है । उस चेतन का प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है । सब संसार उसी से प्रगट होता है उसी में लीन हो जाता है । उस महान ब्रह्म की ओर मन की गति होना चाहिए । मन उसी की सत्ता में क्रियाशील है । अतः यह मन ही ब्रह्म है ।

नारद जी ने प्रश्न किया था कि मन से ऊपर क्या है । भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद मन संकल्प प्रधान है । वास्तव मे तो "सङ्कल्पविकल्पात्मकं

मन:" संकल्प और विकल्प ही मन है। अतः सङ्कल्प मन से ऊपर है। मन संकल्प के बन्धन में रहता है। वाणी मन के बन्धन में और शब्द वाणी के बन्धन में रहते हैं। जैसा संकल्प होगा वैसा ही मन बनेगा। जैसा मन होगा वैसी ही वाणी होगी और वाणी के अनुसार ही शब्द होंगे। अतः संकल्प शुद्ध करने से मन वाणी शुद्ध हो जाते है। तुम संकल्प को ब्रह्म जानकर उस की उपासना करो।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० १७

६—५—८५

"ॐ स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते सङ्क्लृप्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति।"

(छान्दो० ७—४—३)

भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते हैं कि हे नारद जिस समय संकल्प वृत्ति आएगी कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निश्चय हो जाएगा। मेरी आत्मा के उत्थान के लिए यह आवश्यक है यह जानकर ही विवेकशील उसे पकडता है। जो आत्मा का पतन करने वाला है उसे छोड देता है। जब कोई संकल्प किया जाता है तो जल हाथ में ले कर किया जाता है। जल वरूण देवता का प्रतीक है। मन संकल्प के बन्धन में रहता है। प्रत्येक शुभ कर्म के पहले संकल्प करना वैज्ञानिक विधि है। इस से क्रिया करते समय धैर्य बना रहता है मुमुक्षु घबरावे नहीं। कुछ कर्म इस लोक में फल देने वाले होते हैं और कुछ परलोक में फल देने वाले हैं मन और वाणी संकल्प में बंधे हैं। सङ्कल्प दृढ होगा तो कार्य सिद्धि अवश्य होगी।

शरीर में अहंता और शरीर के सम्बन्ध में ममता यह 'अहं' और 'मम' का जंगल ही जीव को भटकाता है युवावस्था शरीरको कस देती है और वृद्धावस्था इसको ढीला कर देती है। पर होता सब धीरे २ है। उस की महिमा बडी विचित्र है। इस जगत में आत्मा की रक्षा करते हुए भोग लो। अति लोभ अति मोह मृत्यु का कारण हैं। जन्म मृत्यु उस परमात्मा ने अपने हाथ में रखा है। यदि तुह्मारे हाथ में दे दिया होता तो कोई भी जाने को तैयार नहीं होता। तुह्मारे हाथ में केवल कुछ भोग दिए हैं। हो सके तो आत्मोत्थान कर के चलो। मुमुक्षु शुभ संकल्पों के द्वारा अपने मन को ऊपर उठावे। मन अन्तःकरण की मनन वृत्ति है। इस से ऊपर संकल्प है। "**सङ्कल्पो वै मनसो भूयः यदा वै संकल्पयते— — —**" कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विभाग करके जिस वृत्ति को पकडा वह संकल्प है वृत्ति है। संकल्प से मन में, मन से वाणी में, वाणी से शब्द में और शब्द से कर्म में व्यक्त होता है। जीवन का मूल तत्त्व ज्ञान है। अपने ज्ञान की रक्षा करो। मुमुक्षु धैर्य शील होना चाहिए। धीर वह है जो अपनी बुद्धि को अपने ज्ञान से पकड कर अपनी आत्मा की ओर ले जावे। अभी तक हमारा जीवन मन के अधीन चल रहा है, जब यह चंचल मन शान्त हो जाएगा तभी ज्ञान मार्ग में विकास सम्भव है। जब यह मन शान्त हो कर हमारे वश में हो जाएगा तो इन्द्रियां विषयों की ओर नहीं दौडेगी। यह मन जितना शान्त शुद्ध होगा उतना ही आत्मा की ओर दौडेगा। अन्यथा शोक मोह में ही घूमता रहेगा। केवल विषयों में ही घूमते २ सारा रस सूख गया। जिस घर में जन्म लिया उसी में युवा हुआ, फल भी दिए और उसी में वृद्ध हो कर मर गया तो इस से क्या सिद्धि हुई? क्या लाभ हुआ? शरीर की लम्बाई चौडाई मरने पर भी उतनी ही रहती है। पर असली तत्त्व के न रहने पर उसी की सभी क्रियाएं वन्द हो जाती है। बुद्धिमान जीवन काल में ही आत्मवृत्ति को पकडे और मन को चंचल नहीं होने दे। वडी सावधानी से जीवन को काम क्रोधादि विकारों से बचावे।

"**संकल्पविकल्पात्मकं मनः" सम्यक् कल्पः संकल्पः विविधः कल्पः विकल्पः**" निश्चयात्मिका बुद्धि। संशयात्मकं मनः" यह पृथ्वी निश्चल दीखती है पर है यह भी गतिशील पर हमारी आँख इस की गति को पकड नहीं पाती।

जैसे हमारे सिर की जूं हमारी गति को नहीं जान पाँती अथवा जूं की गति से हमारे जीवन में कोई अन्तर नहीं पडता । ऐसे ही मनुष्य इस पृथ्वी पर जूं की तरह है ।

वेद में ईश्वर को आत्मा कहा हैं । पुराणों में ईश्वर अथवा भगवान शव्द का प्रयोग है । यह महान सृष्टि उस परमात्मा का संकल्प है । "स ईक्षत" उस ने इच्छा की । 'वहु स्याम्ः' मैं बहुत हो जाऊ । एक से अनेक हो जाऊँ । संकल्प की शक्ति महान है । जाग्रत की अपेक्षा स्वप्न में शक्ति वढ जाती है । स्वप्न क्या है ? हमारे मन के संस्कार ही स्वप्न में साकार बनकर दिखाई देते हैं । यह संस्कार इस जन्म के भी होते हैं और जन्म जन्मान्तर के भी स्थूल में शक्ति कम होती है सूक्ष्म शक्ति अधिक होती है । जीव की निद्राशक्ति संस्कार की सहायता से स्वप्न सृष्टि रच लेती है । यह माया उस महान ब्रह्म में महान सृष्टि की रचना कर लेती है । यह महान सृष्टि संकल्प में ही प्रतिष्ठित है । तुम्हारा यह शरीर भी तुम्हारी संकल्प सृष्टि है । जैसे संस्कार ले कर मन जाता है वैसा ही बंगला वना लेता है ।

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भावभावितः"

(गीता अ० ८।६)

गीता में भगवान स्पष्ट करते हैं कि यह जीव जिस २ भाव का स्मरण करते २ यह शरीर छोड़ता है । उसी स्वरूप के प्राप्त करता है । इस लिए मुमुक्षु अपने मन को सदा अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित करे । " गुरु वेदान्त वाक्येषु दृढ विश्वासः" गुरु और वेदान्त वाक्य पर दृढ विश्वास होना चाहिए । इस लोक में यह मन ही अपना शत्रु है और यही अपना मित्र है । राग द्वेष युक्त मन शत्रु है । मन को एकत्व में ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ही लगाया जा सकता है । यह मुमुक्षु के लिए राजमार्ग है । शुद्ध मन ही आत्मवाणी बनेगा । सत्ता, Existence को देखने में इस इन्द्रियां कोई काम नहीं करेंगी क्यो कि आत्मा का स्वरूप " अशब्द अस्पर्श, अरूप, अव्यय अनादि है । आत्मा शिव रूप है कल्याण रूप है । शरीर तो सदा मरा हुआ है । मनको इस शिव स्वरूपमे

लीन करो। आत्मा अमृत सरोवर है। आत्मतत्त्व का ज्ञान ब्रह्म विद्या के द्वारा ही सम्भव है। गुरु एवं शास्त्र जीव को देहांहंकार से उठा कर आत्मभाव में स्थिर करते है। संसार मे सर्वोत्तम भाव ब्रह्मभाव ही है। मुमुक्षु धीरे २ आगे वढ़ता जाए। यह मन स्वयं तो भगवान स्वरूप ही है। संसाररूपी मेले में भटक गया है। बुद्धिमान अपने विवेक को जाग्रत करता रहे। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद मन को शान्त प्रसन्न रखने के लिए अपने संकल्प को शुद्ध वनाना है। इस संकल्प की ब्रह्मरूप से उपासना करो।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. १८

७-५-८५

"ॐ स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते सङ्क्लृप्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितो ऽव्यथमानान व्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथकामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगवः सङ्कल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद् वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति"

(छान्दो० ७ ४।३)

भगवान सनत्कुमार नारद को निमित्त बना कर हम सब को उपदेश कर रहे हैं। ब्रह्म विद्या का उपदेश ही सर्वोत्तम उपदेश है। सब से श्रेष्ठ उपदेश है। विवेक करने पर यह शरीर हड्डी मांस का थैला ही है परन्तु ऊपर से कितना सुन्दर पालिश किया हुआ है। जरा ऊपर की चमडी को हटा कर देखो तो इस

की सारी सुन्दरता धरी रह जाएगी। मक्खिया भिनभिनाने लगेंगी। परमात्मा का Packing कितना सुन्दर है। उस परमात्मा को श्रुति कहती है "सत्य संकल्पः सत्य कामः" वह परमात्मा सत्य संकल्प है। सत्य काम है। जो उस सत्य काम परमात्मा में मन लगाता है वह भी सत्यकाम हो जाता है। सत्य काम माने जो भी कामना करेगा जो भी संकल्प करेगा वह पूरा हो जाएगा। इस संसार के विषयों में जिन का मन रमण करता है उन का संकल्प कभी पूरा नहीं होता। क्यों यह विषय विकारी एवं प्रतिक्षण बदलने वाले हैं। गीता में भगवान स्पष्ट करते हैं **"आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः"** (भ. गीता अ० ५।२२) यह विषय आदि अन्त वाले होने के कारण प्रतिक्षण परिणामी हैं। विषय परिवर्तनशील कैसे हो सकता है। विषयों में मन लगाने वाले पुरूष के संकल्प भी बार २ बदलते रहते हैं। अतः ऐसे संकल्प वाला कभी सुखी नहीं हो सकता। "तमेव धीरो विज्ञाय" उस परमात्मा को कोई धीर पुरूष ही जान सकता है। जो उस को जान जाता है उस का मन फिर इधर उधर भटकता नहीं। क्यों कि "तमेव भान्तमनुभाति सर्वं" क्यों कि वे जान जाते हैं कि यह सारा जगत उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। उन्हें फिर यह विषय अथवा इस विषयों से प्राप्त होने वाला सुख विचलित नहीं करते अतः वह धीर हो जाते हैं। उन्हें वह अमृतस्वरूप परंब्रह्म परमात्मा ही अपने आगे पीछे दाएं बाएं ऊपर नीचे, सर्वत्र दिखाई देता है। उन की दृष्टि में इस विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वोत्तम तत्त्व आत्मा ही प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

हम लोग सोचते हैं कि जो इन्द्रियों से दिखाई देता है वही ठीक है। पर सोचो तो जिस की सत्ता से इन्द्रियां क्रियाशील हैं उसे इन्द्रियां कैसे पकड सकती हैं। केनोपनिषद में कथा आती है कि देवता जब असुरों से युद्ध में जीत गये तो यह भूल गये कि हम परमात्मा के बल से जीते हैं। वह परमात्मा की शक्ति को भूल गये और उन्हें अहंकार हो गया कि हमने असुरों को अपनी शक्ति से हरा दिया है। असुर शरीर से बलिष्ट तो होते ही हैं "एको बलवान् शतं कम्पयते" परन्तु देवता भगवान की कृपा की ओर लक्ष्य न कर के उस परमात्मा की महिमा को अपनी महिमा समझ बैठे और अभिमान से यह मानने लगे कि हम ने अपने ही बल से असुरों को पराजित किया है। इधर भक्तवत्सल भगवान

भक्तों का पतन कैसे सहन कर सकते थे। इस लिए देवताओं के मिथ्याभिमानको चूर २ करने के लिए एक दिव्य यक्ष के रूप में उन के सामने प्रगट हो गये। देवता इस परम दिव्य तेज पुञ्ज को देख कर आश्चर्य में पड गये। वे लोग मन ही मन सहम भी गये परन्तु उस का परिचय जानने के लिए व्यग्र हो उठे। अग्नि देवता सब से महान तेजस्वी और सर्वज्ञ सा है। इसी लिए उस को उस यक्ष का पता लगाने के लिए भेजा। अग्नि देव भी यद्यपि मन में तो भयभीत हो रहे थे तथापि वाहर से किसी को मालूम न पडे इस लिए वोले इस में कौन सी बडी बात है अभी पता लगा कर आता हूं। वे यक्ष के समीप पंहुचे। यक्ष उन्हें देख कर पूछने लगे आप कौन हैं? अग्नि ने सोचा मेरे तेज स्वरूप को तो सभी जानते हैं। गर्व से बोले मैं प्रसिद्ध अग्नि देव हूं। साधारण चूल्हे में जलने वाली अग्नि नही लोग मुझे जातवेदा के नाम से जानते हैं क्यों कि मैं सभी जातवस्तुओं का ज्ञान रखता हूं। तव यक्षरूप ब्रह्म ने कहा अच्छा! आप में क्या शक्ति है? अग्नि पुनः गर्व से बोले आप मेरी शक्ति को जानना चाहते है। मैं चाहूं तो पल भर में सारे व्रह्माण्ड को जलाकर राख का ढेर कर दूं। तव यक्ष ने उस के आगे एक सूखा तिनका डाल कर कहा जरा इसे जला दिजिए। अग्नि देव ने उस सूखे तिनके को जलाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परन्तु वह जरा भी नहीं जला। जल भी कैसे सकता है। अग्नि में जो दाहिका शक्ति है वह तो शक्ति के मूल भंडार परमात्मा की है। उन्हें ने उस शक्ति स्रोत को रोक दिया। तो भला वह तिनका कैसे जला सकता है। तव तो अग्नि देव चुप-चाप सिर नीचा किए हूए देवताओं के पास लौट आए और बोले कि मैं तो नहीं जान सका कि यह महान तेजोमय ज्योति पुञ्ज कौन है। तव देवताओं ने वायु देवता को चुना और उस यक्ष का पता लगाने के लिए भेजा। वायु देवता ने सोचा अग्निदेव से कुछ गल्ती हो गई होगी नहीं तो यक्ष का पता लगाने मे क्या धरा है। वह भी वडे गर्व से यक्ष के समीप जा कर खडे हो गये। यक्ष ने पूछा आप कौन? वायु भी अपने गुणोंका बखान बडे गर्व से करने लगे। मेरा नाम वायु देवता है मेरा गौरवमय नाम मातरिश्वा है। यक्ष ने पुनः कहा अच्छा आप मातरिश्वा नाम वायु देवता हैं। आप क्या कर सकते है? वायु देवता वैसे ही गर्व से वोले इस सारे भूमण्ड पर जो कुछ भी देखने में आता है सब को उडा

सकता हूं। तव उस यक्षरूपी परब्रह्म ने वही सूखा तिनका उस के आगे डाल कर कहा अच्छा जरा इसे उडा कर दिखाओ। वायु देव ने अग्नि देवता की तरह अपनी सारी शक्ति उस तिनके को उडाने में लगा दी। परन्तु उसे जरा सा हिला भी न सके और अग्नि की भांति मुहं लटकाए देवताओं के पास वापिस लौट आए।

अब देवताओं ने सोचा कि हमारे तो प्रतिनिधि यही दोनों देवता थे जो महान बलशाली और बुद्धि सम्पन्न हैं। जब यही पता लगाने में असफल रहे तो अब तो महान देवराज इन्द्र ही इस काम को कर सकते है। अतः उन्होंने इन्द्रदेव को इस कार्य के लिए भेजा। इन्द्र को सब देवताओं से अधिक अभिमान था इस लिए ब्रह्म ने उन्हें वात करने का भी मौका नहीं दिया और अन्तरधान हो गये। परन्तु देवराज इन्द्र वहीं खडे रहे। अग्नि और वायु देवता के समान लौटे नहीं। इतने में वहाँ उमा भगवती प्रगट हो गई और इन्द्र को दिव्य ब्रह्म ज्ञान दिया। उमादेवी ने कहा कि तुम जिन दिव्य यक्ष को देखरहे थे वे साक्षात् पर ब्रह्म परमात्मा तुम लोगों पर कृपा करने के लिए यक्ष स्वरूप में प्रगट हुए थे। उन्ही परमात्मा ने देवताओं के मिथ्याभिमान का नाश करने के लिए यह रूप धरा था और अब उन्हीं की प्रेरणा से मैं तुम लोगों को सच्चा ज्ञान देने के लिए यहाँ आई हूं। कभी स्वप्न में भी यह मत सोचो की ब्रह्म की सत्ता के बिना किसी की भी स्वतन्त्र सत्ता है। देवताओं पर कृपा करने के लिए करूणामय भगवान पुरूषोत्तम ने उमारूपिणी साक्षात् ब्रह्मविद्या को प्रकट किया। अग्नि और वायुदेवता ने दिव्य यक्ष के रूप में ब्रह्म का साक्षात् कार किया और उन से वार्तालाप किया परन्तु उन्हें ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाया। परन्तु देवराज इन्द्र ने परम ब्रह्म परमात्मा का तत्त्व ज्ञान प्राप्त किया।

आत्मज्योति में जो मन लगावे वह देवता और जो शारीरिक शक्ति मे मन लगावे वह असुर। देव प्रकृति वाला जिज्ञासु होता है। पर अहंकार ने तो देवताओं को भी नहीं छोड़ा। "सत्यं ज्ञानं तु दुर्लभं" सत्य वचन श्रेय है। विषयों का बगीचा तो जहां जाओगे वहीं मिलेगा।

परन्तु आत्मज्ञान मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। भोगी की दृष्टि सदा भोग पर ही रहती है। पर ज्ञानी की दृष्टि भोक्ता पर, आत्मा पर रहती है। बडा बनना तो सरल है परन्तु बडप्पनकी रक्षा करनी पडती है। गुणों से ही बडा होना चाहिए। धैर्य और स्थिरता इस के गुण हैं। जब यह गुण साधक में आते हैं तब उमा भगवती ब्रह्म विद्या के रूप में प्रकट होती है। इस लिए सब से पहले मन की स्थिरता का उपदेश करते हैं। संकल्प शक्ति से ही मन स्थिर हो सकता है। इस लिए सङ्कल्प को ब्रह्म समझ कर उपासना करने के लिए कहा है। मुमुक्षु सत्य को पकडे। भूतों के संकल्प से वर्षा होती है वर्षा से अन्न। अन्न के संकल्प से प्राण, प्राण के संकल्प से मन्त्र और मन्त्र के संकल्प से कर्म होता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. १९

८-५-८५

"ॐ चितं वाव सङ्कल्पाद भूयो यदावैचेतयतेऽथ सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामुनाम्नीरयति नाम्नि एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥"

(छान्दोग्यो ० ७।५।१)

भगवान सन्तकुमार नारद से कहते हैं कि संकल्प मन से प्रधान है। क्यों कि मन संशयरूप है। उसमे वस्तु नहीं मिलती इस लिए वहां न सुख है न दुःख। जव तक वस्तु का ज्ञान हमारी बुद्धि में नही आता तब तक उसका निश्चय नहीं होगा। इस संकलपको ब्रह्म ही जानो। जो संकलपको ब्रह्म जानकर इसकी उपासना करता है वह संकल्प की गति तक जानने मे समर्थ हो

जाता है। हम जब तक रहेगें सब ठीक है। सारे ब्रह्माण्ड की आत्मा वह चेतन ही है वही सब में ओत प्रोत है। श्रुति है "**यस्मिन् द्यौः पृथ्वी चान्तरिक्षमोतं मननः, सह प्राणैश्च सर्वैः। त्वमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः।।**" (मुंडकोपनिषद २।२।५) अविद्यासहित बुद्धि बडी सुन्दर है। इस में चेतन का अभास पड़ते ही जीवन भाव उत्पन्न हो जाता है। इस में अधिष्ठान चेतन ही है। "Existance is everywhere" उसकी सत्ता सब में विद्यमान है माया का विकार यह पांच भूत है। उनकी अन्तरात्मा परमात्मा है जो इन भूतों मे बैठकर संकल्प करता है। जो इस अन्तरआत्मा को देखता है उसकी दृष्टि में नाम रूप गौण हो जाते है। जो इस नाम रूप में ही रह जाता है वह शोक मोह के बाजार में ही घूमता रहता है। नाम रूप खोखला है। वास्तविक प्यार इस चेतन मे ही है। बिना चेतन के केवल शरीर किसका पिता है और किसका बेटा है। उस अनदेखे को अनजाने में ही सब प्यार कर रहे है। फल ज्ञान का है यदि यही प्यार आत्मा की सत्ता को जान कर किया जाए तो जन्म मरण से छुटकारा मिल जाए। हिन्दु परम्परा मे "**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा। कर्माध्याक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो** निर्गुणश्च।।" वह परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में विराजमान है। वह कही दूर सातवें आसमान पर नहीं रहता। इस लिए मुमुक्षु अपने भीतर ही तत्त्व की खोज करे। यह चेतन शरीर के सम्बन्ध से मनुष्य भाव में आ जाता है। मनुष्य शरीर में ही है परन्तु उस का भान चेतन मे होने से "मैं मनुष्य हु" "मैं स्त्री हूं" "मैं पुरुष हूं ऐसा समझने लगता है। बुद्धिमान आचार्य मन बुद्धि से अपने को न्यारा कर के शुद्ध ब्रह्म रूप समझने का उपदेश देते हैं। अपना हिसाब बाहर के सम्बन्ध से नहीं रखो। चेतन आत्मा अपना स्वरूप है। यह पांचों भूतो तो भूतो में समा जाएगें तब तुम कहाँ जाओगे इस देह परिच्छेद को हटाओ। यह तुम्हारा स्वरूप नहीं। यह तुम्हारा आकार नहीं अपने अन्दर शुभ वासाना उत्पन्न करो। जैसे ब्रह्म इस जगत का जीवन है ऐसे ही संकल्प ही जगतका जीवन है। मनुष्य यदि शुभ संकल्प को पकडेगा तो तत्काल सुख की प्राप्ति होगी। अपने परिवारका भाला तो हिंसका जनावर भी करता है। शेर भी अपने परिवार से प्यार करता है। संकल्प ही जीवन है

जो सभी जीवों की रक्षा करता है। मनुष्य ही अपने संकल्पको महान बनाकर व्यापक भाव में आ सकता है। अपनेको ब्रह्म भाव में ला सकता है। वह मनुष्य भाग्यशाली है जो व्यापक संकल्प में आता है। भेद बुद्धि से ऊपर उठकर जगत का भला कर सकता है। "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" उदार व्यक्ति के लिए सारा संसार ही कुटुम्ब है। यह मेरा यह तेरा संकुचित भाव है। जिस को यह बोध हो जाता है कि मैं ही सर्वात्मा हूँ तो वह किसको प्यार करेगा और किस से झगडा करेगा किसको वह अपना मित्र समझेगा और और किस को दुश्मन जनेगा। वह तो चित की निश्चल भूमि में पहुंच जाता है। जब तुम किसी को दुख नहीं दोगे तो तुम्हें कौन दूख दे सकता है। यदि कोई रोगादि प्रारब्धश आ भी जाएगा तो इस शरीर तक ही उसकी पहुंच है। ज्ञानी संसार से हंसते हुए विदा होता है। यहाँ से अच्छे ज्ञान से जाओगे तो अच्छे स्थान पर पहुँगे। यह मैं और मेरा अहं और मम यह सब कुछ नही। मिथ्या कल्पना मात्र है। व्यापक संकल्प करो। ज्ञानी का कही आना जाना होता ही नहीं वह तो सदा ब्रह्मलोक मे ही रहता है। ब्रह्मानन्द का भोग करता है। अज्ञानी कर्म के अनुसार आता जाता रहता है। अयमात्मा यह आत्मा ही ज्ञानी अपना लोक है। लोक्यते भुज्यते इति लोकः जहां जिस के द्वारा भोग लिया जाता है वह लोक है। जैसे यह शरीर तुम्हारे पूर्व कर्मो का फल भोगने का लोक है। आश्रय है। यह संसार मायालोक है। जैसे विदेश से कोई लौटेगा तो अपने देश मे ही लौटेगा। ऐसे ही ज्ञानी इस लोक से आत्मलोक में ही लौटता है। तुम्हारे हृदय में बैठा हुवा वह अन्तरयामी ही निश्चय करता है कि तुम्हें कहां जाना है। शुभ संकल्पवाला कभी तामसी योनि में नही जाएगा संकल्प शुभ होगा तो कर्म निश्चय ही शुभ होगा। संकल्प से मन मन से वाणी, वाणो से मंत्र और मंत्र से कर्म इस प्रकार धारा चलती है। जो मन से संकल्प होग वही वाणी में आएगा जो वाणी में होगा वही कर्म में आएगा। कर्म मनुष्य को नहीं छोडा। दृष्टान्त आता है कि लाखों लाखों गाएं एकखुले मैदान में छोडदो सायंकाल को उन बछड़ छोडने पर देखोंगे कि बछडा लाखो गायों में से अपनी मां का स्तन पकड लेता है। जैसे बछडा लाखों लाखों गयो में से अपनी मां का स्तन पकड लेता है, ऐसे कर्मो भी जीव को किसी योनि में हो पकड लेता है।

इसलिए मनुष्य कर्म करते समय सदा सावधान रहें । " **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्, अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्तातमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥** (श्वेताश्वतरोपनिषद अ. ३।१९)" श्रुति स्पष्ट करती है कि वह अन्तरयामी विना हाथ के सव को पकडता है, बिना पांउ के सब जगह पहुंच जाता है, बिना कान के सब कुछ सुन लेता है विना वाणी के बोलता है । वह अन्तरयामी तुम्हीं हो । तुम्हीं सर्व शक्ति हो तुम्हीं सर्व व्यापक हो । अपने स्वरूप को पहचानों ।

शुभ संकल्पवाला सदा प्रतिष्ठित योनि में जाता है । मानव योनि ही प्रतिष्ठित योनि है । इसी मानव योनि से देवता, पितर ऋषि मुनि सभी कुछ आशा करते है । इस लिए यही प्रतिष्ठित योनि है । जैसे २ ज्ञान बढता है जगत के पदार्थ खिलौने जैसे लगने लगते हैं । अधिक शोक मोह नही रहता । जैसे बचपन की वस्तुओं में वृद्ध को अधिक शोक मोह नहीं होता । जब तक हृदय में ब्रह्म विद्या प्रगट नही होगी जन्मजन्मातर के कर्म कभी कट नहीं सकते । अत: अपनेको ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित करो

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० २०

९-५-८५

ॐ नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि'

(छान्दोग्योप० ७।५।१-२)

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को समझा रहे हैं कि ज्ञान संकल्प और क्रिया यह एक Scientific Theory है । बडा वैज्ञानिक तथ्य है । जिस वस्तु का

ज्ञान है उसी की इच्छा होती है और तदर्थ ही फिर क्रिया होती है। ज्ञान से ही सब कुछ हो रहा हैं। यही हमारा लक्ष्य है। ज्ञान भूमि मे पहुंचने के लिए साधन रूप मे मन संकल्प और फिर चित्त है। चित्त शब्द में दूसरा त यह बताता है कि "आरोपयतम् सूचयति" वास्तव कि शब्द चित् है। अविद्या सहित अन्तःकरण इस चित् चेतन में आरोपित है। यही दूसरा त है। जैसे उदाहरण के लिए लाल फूल की लालिमा का आरोप स्फटिक मणि में होता है। आरोप सहित बुद्धि चित्त हो गई। चेतन में भासने वाली बुद्धि चित्त रूप धारण कर के बैठ गई। जैसे अग्नि में डाला हुआ लोहा। तत्क्षण में लोहा अग्नि जैसा दीखता है। ऐसे ही यह देह आत्मा के साथ आत्मा जैसा दीखता है परन्तु वास्तव में लोहा लोहा ही है। अग्नि अग्नि ही है। ऐसे ही यह शरीर भी इस आत्मा से भिन्न ही है। यद्यपि तादात्म्य सम्बन्ध से एक से दीखते हैं। महामुनि शाक्यायन ने कहा है "चित्तं हि संसारः" यह चित्त ही संसार है जो विकार चित्त में आता है वैसा ही यह संसार दीखने लगता है। कभी रजो गुणी कभी तमो गुणी और कभी सत्त्व गुणी विकार चित्त में आते रहते हैं। चित्त में सदा परिवर्तन होता रहता है। माया भगवती हमारे सामने कुछ कीमती खिलौने भी फैंकती है। जैसे समता, शान्ति वैराग्य, धर्म, दम इत्यादि।

तीन व्यक्ति धन कमाने के लिए घर से निकले। थोडी ही दूर जाने पर एक तो उन से नाराज हो कर अलग हो गया। बाकी दो आगे बढे। रात को एक जंगल में पेड़ के नीचे रहे। प्रभात होते ही देखा कि वहाँ एक सोने की अशर्फियों से भरी हुई हंडी पडी है। दोनों वडे प्रसन्न हुए और निश्चय किया कि आधी २ बाट ले। पर मूखे होने के कारण दोनों ने सोचा पहले नहा धोकर कुछ खा पी लें फिर आराम से बांट लेंगे। जल्दी भी क्याहै। अभी तक दोनों शान्त थे। एक नहा धो कर वाजार खाने लाने गया तब तक दूसरा नहाने लगा। अब दोनों के मन में विकार उत्पन्न हो गया। जो खाना लाने गया था उस ने सोचा कि खाने में विष दे कर उसे मार डालूं तो सारा धन मेरा हो जाएगा। दूसरा नहा धो कर बन्दूक ले कर बैठ गया सोचा आते ही उसे गोली मार दूंगा फिर सारा धन ले कर आराम से जीवन बिताऊंगा। दोनों में लोभ और हिंसा

की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई। पहले ने खाना खा कर दूसरे के खाने में विष मिला दिया और खुशी२ चल पडा। जैसे ही वह सामने पहुचा दूसरा तो बन्दूक तान कर बैठा ही था। दूर से गोली मार कर उसे वहीं ढेर कर दिया। अब भूख तो लगी हुई थी ही। भूखा व्यक्ति कुछ सोच नहीं सकता। उस ने जल्दी से खाना खाया और बस वहीं सो गया। इस प्रकार अशर्फियों की हंडी तो वहीं रह गई और वे दोनों चल बसे। जो विकार एक के चित्त में आया वही दूसरे में भी आया। यही है अतिलोभ।

संसार के भोग लो पर दूसरे के लिए छोड कर। सात्त्विक भाव में सद्गुण आते है तभी मन में सुख और शान्ति का उदय होता है। कुछ विकार तो चित्त को ऐसे घेर लेते हैं कि तुम भले ही चले जाओ परन्तु वह विकार मनुष्य को अन्धा बना देते हैं। मुमुक्षु सदा सात्त्विक भाव को ही पकडे। श्रद्धा से कर्म में रुचि होती है और शरीर में उत्साह होता है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं "**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्पर:संयतेन्द्रिय:**" लेने वाला अल्पज्ञ है। अल्प शक्तिवाला है, परन्तु देने वाला सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है। परन्तु वह सब कुछ देता धीरे२ है। शनै: शनै: ग्रहण करो। त्याग भी करो। विद्या भी धीरे २ फलवती बनती है। अनन्त जन्मो के विकार कटने पर चित्त निर्मल होगा। निर्मल और प्रशान्त चित्त में तत्त्व कादर्शन होगा। ईश्वर सृष्टि तो सब के लिए सुखदायी है। तुह्मारे चिन्त के विकार ही दुखदायी हैं अपने चित्त मैं सवा शुद्ध भावना शुद्ध विचार भरो तभी लक्ष्य में पहुंचो गे। सामान्य रूप से आत्मा के करण्ट में होने पर भी उस का विशेष ज्ञान न होने से ब्रह्मबोध नहीं होगा। मुमुक्षु ब्रह्म भावको पकडे। "नाऽसि जीव:" तू देह रूप नहीं है" कर्मफल भी तू नहीं, तू तो ब्रह्म है हे सौम्य ब्रह्माऽसि त्वम्" तत्त्वमसि"।

"चित्तम् हि संसार" तु प्रयत्नेन शोधयत" अपने चित्ताका प्रयत्न के द्वारा शोधन करतो रहो। एक ही वस्तुको देखने वालों की भावना भिन्न २ हो सकती है। जैसे एक लडकी है उसे देखने वाले लोगोको भी भावना भिन्न २ होती है पिता उसे लड़की के रूप में देखता है, भाई बहिन के रूप में पति भोग्या समझता है, सौत होगी तो वह शत्रुभाव से देखेगी। कोई गुण्डा होगा तो उसे अन्य दृष्टि से देखेगा। शेर के लिए वह रसगुल्ले जैसे है। और कोई विरक्त महात्मा यदि

होगा तो उस के लिए वह ईश्वर की एक सुन्दर कृति मात्र है वह उपेक्षा भाव से देखेगा। वस्तु एक ही है परन्तु भाव सब का अलग २ हैं। यह सब के चित्त की वृत्तियां ही हैं। लड़की तो जैसा है वैसा ही है। इस प्रकार नाना प्रकार,की दृष्टि होने से सृष्टि भी वैसा ही बन जाती है। यद्यपि तत्त्व एकही है। प्राण वियोग काल में चित्त जिस आकार को धारणा करता है उसी में लीनहो जाता है। तुम्हारी आत्मा राग द्वेष से रहित है। उस मे न राग है न द्वेष यह तो तुम स्वयं ही हो। मुमुक्षु संसार में व्यवहार करता हुआ दृष्टि सदा ब्रह्मभाव मे रखे। यह मनुष्य शरीर बडा दुर्लभ है। यही मनुष्य शरीर जीव को जन्म मरण से त्राण देनेवाला है। यह जक्शन स्टेशन है। जहां जाना चाहो जा सकते हो। इस सुअवसर का लाभ उठाओ उपनिषद इस जीव को जगाते हैं "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" उठो जागो, महापुरूषों की शरण में जाओ और महान ज्ञान को प्राप्त करो।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं २१

१०-५-८५

"ॐ चित्तं प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोतशुश्रूषन्ते चित्तंह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तंप्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति।"

(छान्दो० ७।५।२)

भगवान सनत्कुमार इस रहस्य को स्पष्ट करते है कि यद्यपि यह ठीक है कि बुद्धिमान मनुष्य संकल्प के बिना कोई कर्म नहीं करता। परन्तु सहज संक-

ल्प तो संस्कार के अनुसार ही उठता है। जैसे जिस के संस्कार होते हैं उन्हीं के अनुरूप संकल्प उठता है। जैसे भूमि में जो वस्तु होगी वही बाहर निकलती है। प्रकृति स्वयं ही किसान का काम करती है। इस में कहीं अमृत के पौधे होंगे तो कहीं विष के। यद्यपि जीवन तो विष में भी है पर यह तुम्हारी बुद्धि पर निर्भर करता है कि तुम उस में से कितना जीवन तत्त्व ले सकते हो। यदि बुद्धि अच्छी नहीं होगी तो अमृत में से भी जीवन तत्त्व नहीं निकाल सकते। यह बुद्धि भी खेत है और श्रवण इस में बीज के समान है। जैसा बीज इस में डालोगे वैसा ही फल प्राप्त करोगे। जैसे हैण्डपम्प का पानी निकालने के लिए उस में एक लोटा पानी डालते हैं। ऐसे ही जैसी विद्या इस बुद्धि में भरी है वही कई गुणा हो कर निकलती है। जैसे गाडी में ब्रेक आवश्यक है ऐसे ही इस शरीर में संयम और त्याग आवश्यक है। गीता में भगवान स्पष्ट करते हैं **"इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते, एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञइति तद्विदः"** (गीता अ० १३।१) यह शरीर खेत है और इस को जानने वाला तत्त्व क्षेत्रज्ञ कहलाता है। इस शरीर में जैसे कर्म रूपी बीज बोओगे समय आने पर वैसा ही फल प्राप्त करोगे। क्यों कि शरीर यद्यपि यहीं छूट जाता है परन्तु क्षेत्रज्ञ रूपी चेतन आत्मा मन बुद्धि के द्वारा तुम्हारे संस्कार रूपी बीज समाल कर साथ लेजाता है। अतः इस मनुष्य शरीर का लाभ उठाओ। इस का सुन्दर उपयोग करो। राग द्वेष क्रोध लोभादि विकारों को हटाते रहो। यह सब विकार सामान्य रूप से तो बुद्धि में रहते है परन्तु यह ज्ञान के नियन्त्रण में रहना चाहिए। परमात्मा ने इन सब विकारों की सृष्टि बडे विवेक से की है। जिस परमात्मा ने गुणों की सृष्टि की है उसी ने विकारों की भी सृष्टि की है। अतः यह समझना मनुष्य की भूल है कि विकार बुरी चीज है। यदि सचमुच में ही यह बुरे होते तो भगवान इन की सृष्टि ही नहीं करता। समय २ पर यह विकार आवश्यक भी होते हैं। जैसे क्रोध को ही लीजिए। एक सिपाही जो सीमा पर देश की रक्षा के लिए तैनात है यदि उसे क्रोध नहीं आएगा तो वह शत्रु पर गोली कैसे चलाएगा। परन्तु इन सब का उपयोग ज्ञान से होना चाहिए। बुद्धि से ज्ञान से विकारों का भी उपयोग करो। भोजन के स्थान पर भोजन और चटनी अचार के स्थान पर चटनी अचार का प्रयोग करो।

शब्द और वाणी मन के अधीन है और यह मन संकल्प के अधीन है। संकल्प चित्त के अधीन है। चित्त की कल व्याख्या कर के आए हैं कि प्राप्त काल में वस्तु का ठीक ज्ञान होना। वस्तु के स्वरूप का ठीक बोध होने पर ज्ञात होता है कि यह प्रिय है कि अप्रिय है। फिर प्रिय वस्तु भी जब तक चित्त के अनुकूल होती है तभी तक सुख पहुंचाती है। पर चित्त प्रतिकूल होने पर वही वस्तु दुखदायी दीखने लगती है। वस्तु यद्यपि स्वरूप में एक ही है पर चित्त में प्यार होगा, यदि चित्त उस वस्तु में प्यार से जाएगा तो सुख और यदि क्रोध से जाएगा दुख निकाल करले आएगा। वाचस्पति मिश्र कहते हैं अपनी होशियारी पर भी अधिक भरोसा नहीं करना चाहिए अपनी होशियारी से अधिक भरोसा उस अन्तर यामी पर करो। तुम्हारे प्रयत्न के साथ परिवार, जाति, राष्ट्र सभी का भाग्य चलता है। इस लिए कभी यह मत सोचो कि मैं ने ऐसे किया तो यह काम हो गया। अयोध्यधौम मुनि राजा युधिष्ठर से इस विपत्ति के समय मिले जब पाण्डप वनवास मे थे। उह्नोने युधिष्ठिर को सूर्य भगवान की आराधना का एक मन्त्र बताया। इस से प्रसन्न हो कर सूर्य भगवान ने युधिष्ठर को एक सिद्ध पात्र दिया था जिस की कथा आप लोग जानते ही हो कि द्रौपदी कैसे नित्य प्रति उस हंडी में से सब का भोजन निकालती रही। ऐसे ही यहाँ उस प्रभु ने तुम्हें यह पृथ्वी रूपी हंडी दी है। जो संकल्प करोगे पृथ्वी तुम्हें वही देगी। यह पृथ्वी माता है। यह अपने सभी बच्चों को उन की योग्यता के अनुसार भोजन दे रही है। सारा अनाज प्रारम्भिक अवस्था में दूध के रूप में ही होता है। बाद में सूर्य की गर्मी से पक कर तरह २ के भोग तैयार हो रहे हैं। परमात्मा की Refinaries चल रही है। प्रकृति का यह भोजन तुम्हारा पशु कोटि का है। पर मनुष्य को मान प्यार शान्ति निर्भयता भी चाहिए। यह गुण सभी के हृदय में रहते हैं। यह परिवार में ही मिलते हैं। मान तुम्हें तुह्मारी जाति तुह्मारा समाज देगा। समाज को इतिहास चाहिए। ऐसे महान व्यक्ति बहुत कम होते हैं जो इतिहास बनाते हैं। निर्भयता शासन देता है।

तुह्मारी इन्द्रियां भी तुम्हें अधिकसमय तक आनन्द नहीं दे सकतीं। परन्तु सुषुप्ति अवस्था तुम्हें चार छः घण्टे लगातार सुख देती है। यह अविद्या मे चिदाभास का आनन्द है। जाग्रत में चित्त की वृत्तियां बदलती रहती हें, इस लिए आनन्द नहीं मिलता। निर्भयता से निद्रा अच्छी आती है। यह निद्रा,

सुषुप्ति तुम्हें कुछ समय के लिए सब प्रकार की चिन्ताओं से दुखों से छुटकारा देती है और निर्भयना तुम्हें शासन देता है इस लिए राष्ट्र तुह्मारा हिस्सेदार है। प्यार परिवार देता है। प्यार जीवन का रस है। प्यार के विना जीवन सूखे पेड की तरह है जो न किसीको छाया देता है और न फल फूल ही। मान समाज देता है जाति देती है। इस लिए यह सब तुह्मारे जीवन के भागीदार हैं। सद्विचार सत्कर्म सद्बुद्धि से चलने वाला कभी दुखी नहीं होता। लोक व्यवहार में कभी कुछ बुरा भी करना पड जाता है। परन्तु उस का लक्ष्य भलाई होना चाहिए। जैसा माता पिता को बच्चे पर कठोर होना पडता है, परन्तु वे जीवन में सदा उन का भला ही चाहते हैं।

जब लोक जीवन के लिए भी अच्छे विचार अच्छे कर्म और अच्छे ज्ञान की आवश्यकता है तो आगे बढने के लिए भी इन सब की बहुत आवश्यकता है। जीवन में अपना ज्ञान सदा सामने रख कर कार्य करो। तत्त्वविचार आवश्यक है। यह जीवन संकल्प रूप है। जैसा संकल्प होगा वैसा ही जीवन बनेगा। चित्त को व्यवस्थित रखने के लिए परिवार समाज और राष्ट्र को उचित हिस्सा देते चलो। बुद्धिमान मुमुक्षु बडी सावधानी से इस जीवन में ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त करे।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. २२

११-५-८५

"ॐ तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तं ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति।"

(छान्दो० ७।५।२)

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारदको समझाते हुए कहते हैं कि यह जीवन संकल्प रूप है। संकल्प से ऊपर चित्त है। चित्त के उपर संस्कार है। मुमुक्षु भूत भविष्य की चिन्ता छोड़ कर वर्तमान समयानुसार बुद्धि का प्रयोग करे। यह सारा संसार तो जिसका है वही इस में हेर फेर भी कर सकता है। मानव शक्ति इस में अदल बदल नहीं कर सकती। तत्त्व विचार आवश्यक है। बुद्धिमान मुमुक्षु आत्माका श्रवण करे आत्माका मनन करे और निदिध्यासन करे। **"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"** मन को तद्भाव में रंग दो। मन उधर ही जाता है जहां चेतन है। चेतन हमारा स्वरूप है। यह आत्मा ही परम सत्य है' इस में मन दो। इस से बाहर मत जाने दो। जीवका ब्रह्मभाव से साक्षात्कार करो। जीव भाव तो आरोपित है। इस शरीर को तो Night Gown समझो। जैसे रात्रि में कुछ दिखाई नहीं देता और यदि कुछ दीखता भी है तो अन्धकार के कारण उल्टा ही दीखता है। ऐसे ही यह शरीर भी है।

तुम्हारा यह चित्त तीनों कालों में घूमता है भूत के संस्कार वर्तमान के दृश्य इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है और भविष्य की कल्पना करता है। अतः चित्तको व्यवस्थित रखने के लिए परिवार जाति देश, समाज धर्म का हिस्सा सब को देते चलो। एक ही वस्तु किसीको सुख देती है किसीको दुख देती है। किसी में राग उत्पन्न करती है किसी में क्रोध किसी में ईर्ष्या। यह सब चित्त के भाव के अनुसार ही होता है। वस्तु स्वरूप में एक सी ही है। जैसा तुम्हारा मुंह होगा वैसा ही शीशे में दिखाई देगा। जो भाव ले कर बाहर जाओगे वैसा ही विकार ले कर वापिस आओगे। विकारो का बाजार तुम्हारे चित्त में लगा हुआ है। किसीको बुरा कहने से पहले अपने चित्त को देख लो। अपना चित्त सदा शुद्ध रखो। विकार रहित करो। सत्य के करंट से ही असत्य देख सकते हो। **"असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते"** चित्त एकायन है। आयन माने आश्रय। अर्थात चित्त ही सब सस्कारोंका आयन है आश्रय है। इस में जन्म जन्मान्तर के संस्कार भरे रहते हैं। न जाने कब कहाँ उभर कर सामने आ जाएं। सौभरि ऋषिकी कथा आती है। महान ऋषि थे। हजारों वर्ष तपस्या की थी। १२ वर्ष तक पेडों के सूखे पत्ते खा कर

तप किया। जल में खडे रह कर कई वर्ष तप करते रहे। परन्तु एक दिन ज्योंहीं आंख खोलकर देखा कि सामने एक मत्स्य अपने परिवारके साथ जल क्रीडा कर रहा है। बच्चे इधर उधर नाच रहे हैं। सौभरि ऋषि के मन में विचार उठा कि देखो तो यह मत्स्य कितना भाग्यशाली है। अपने परिवार में कितना प्रसन्न है। कितनी मस्ती से खेल रहा है। हमारा जीवन तो व्यर्थ ही सूख गया। बस जल में से निकल कर सीधे राजा के दरवार में पंहुचे और कहने लगे महाराजा हम विवाह करना चाहते हैं अपनी एक कन्या हमें दे दो। मान्धाता राजा की साठ कन्याएं थीं परन्तु ऋषि के सफेद बाल एवं जर्जर शरीर देख कर सोच में पड गया कि इस बुढ्ढे के साथ किस कन्या का विवाह करूं। यदि न करता हूं यह शाप दे देंगे। राजा बुद्धिमान था। बोला भगवान आप भीतर चले जाईए जो कन्या आप को पसन्द कर ले उसी के साथ आप का विवाह कर दूंगा। एक दूत को साथ दिया। ऋषि महलकी ओर जाते जाते सोचने लगे कि इस दशा में कौन मुझे पसन्द करेगी? बस संकल्प सिद्धि तो थी ही तुरन्त संकल्प किया और सुन्दर युवा हृष्ट पुष्ट शरीर वस्त्र भूषणों से सुसज्जित बना लिया। अन्तःपुर में पहुंचे तो देखेते ही सब कन्याएं मोहित हो गई और सब की सब विवाह के लिए तैयार। राजा को बुलाया। राजा भी देख कर आश्चर्य में पड गया और अपनी साठ कन्याओं को ऋषि को कन्यादान करके दे दिया। सौभरि ऋषि अब अपनी साठ पत्नियों सहित आश्रम की ओर चल पड़े। संकल्प से साठ सुन्दर महल दास दासियां और सुख सुबिधा के सारे सामान सामने तयार हो गये। अब तो तपस्या भुल गये और योगी से भोगी हो गये। वर्षो तक भोग किया हजारों हजारों बच्चे हो गये। तव ऋषि को एक दिन अपनी भूल का अहसास हुआ कि ओहो मैने यह क्या किया। अपना सारा जीवन व्यर्थ में नष्ट कर दिया। सव कुछ वहीं छोड़ कर जंगल में चल दिए।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि मुमुक्षु सदा सावधान रहे। इस मन पर कभी भरोसा नहीं करे। जब तक ब्रह्मविद्या का उदय हृदय में नहीं होगा जन्म जन्मान्तर के संस्कार कर्म कट नहीं सकते भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है।

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।" (गीता अ: ४।३७) चित्त एकायन है। सब संस्कारो का आयन है। मुमुक्षु चित्त को विक्षिप्त नहीं होने दे। वैराग्यको स्थिर करने के लिए "जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्" बार बार जन्म मृत्यु जरावस्था और व्याधिओं के दुःख का स्मरण करो। इस प्रकार अपने चित्त को निर्मल बनाओ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

12-4-85

प्रवचन सं. २३

"ॐ स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद् भूय इति चित्ताद् वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति"

(छान्दो० ७।५।३)

भगवान सनत्कुमार ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। सदा ज्ञान में प्रतिष्ठित रहते हैं। नारद भी ब्रह्मा के मानस पुत्र एवं अठारह विद्याओं में निष्णात हैं। परन्तु ब्रह्म ज्ञान के विना उन्हे अभी तक शोक निवृत्ति का अनुभव नहीं हुआ। वह भगवान सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या के लिए प्रार्थना करते हैं। महर्षि नारद भगवान सनत्कुमार से कहते हैं मैंने सुना है कि "शोकं तरति आत्मवित्" आत्मवेत्ता शोक से पार हो जाता है परन्तु मैं अभी तक शोक में ही डुबा हुआ हूं। आप कृपा करके उस तत्त्व का उपदेश कीजिए जिस से मैं इस शोक

समुद्र से पार हो जाऊँ। भगवान सनत्कुमार ने पहले नारद के ज्ञान के विषय में पूछा तत्पश्चात् निश्चय किया कि नारद अभी तक केवल मन्त्रवित् ही है। अर्थात् शब्दजाल में ही फसे हुए हैं। यह जब तक शब्द के अर्थ में प्रवेश नहीं करते तव तक शोक से छुटकारा नहीं पा सकते। इस लिए भगवान सनत्कुमार नारदको उस आत्मतत्त्व का उपदेश कर रहे हैं। अभीतक यह समझ कर आए हैं कि शब्द के उपर वाणी है क्यो कि शब्द वाणी के अधीन है। वाणी के ऊपर मन है। वाणी मन के अधीन है। मन के उपर संकल्प है। मन संकल्प के अधीन है सकल्प का आश्रय सस्कार हैं। जैसे सस्कार होते हैं वैसाही मन का संकल्प होता है। संस्कारो का आश्रय चित्त है। अतः मुमुक्षु अपने चित्त को सदा शान्त एवं पवित्र बनाए रखे।

चित्त को निर्मल बनाने के लिए इन्द्रिय संयम आवश्यक है। भगवान सनत्कुमार कहते है हे नारद जो मुमुक्षु है वह कभी अहंकार नहीं करता। भगवान कृष्ण गीता में दो प्रकार की सम्पदा का वर्णन करते हैं। दैवी और आसुरी "**दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता**(गीता अ. १६।५)दैवी सम्पदा मोक्ष दायिनी है और आसुरी बन्धन का हेतु है। अहंकार जब आसुरी वृत्ति में आता है तो यह नाशक हो जाता है यदि देव कोटि में अहंकार आ जाता है तो वह अक्षम्य है। अर्थात् देववृत्ति में अहंकार ठहर नहीं सकता। यास्क मुनि कहते है " विद्वान् स वै देवः" समाज की रक्षा विद्वान् करता है। वह समाज को सद् विचार सत् कर्म के द्वारा ऊंचा उठाता है। राज्य की रक्षा राजा करता है। एक बार इन्द्र को अहंकार हो गया कि मेरे जेसा कौन है ! मैं अपने शुभ कर्मो से इस समय इन्द्र पद पर पहुंच गया हूं। गुरु की दृष्टि बडी पैनी होती हैं। इन्द्र के गुरु बृहस्पति समझ गये। उन्हों ने इन्द्र को इस अहकार से मुक्ति दिलाने के लिए विचार किया। चलते २ रास्ते में बृहस्पति थोड़ा पीछे रुक गये इन्द्र ने कारण पूछा तो बोले यह चीटियां देख रहा हुं इन मे से एक भी चींटी ऐसी नही है जो इन्द्रपद पर आसीन न हो चुकी हो। इन्द्र की आंख खुल गई। उस का अंहकार चुर २ हो गया। कहते हैं एसा ही अहंकार एक बार शिवाजी को हुआ था। वह एक किला बनवा रहे थे। अपने गुरु राम दास के साथ वहां गये। हजारों मजदूरों को काम करते देख कर उन्हें लगा की मैं कितना भाग्य-

शाली हुं । इतने लोगों को भोजन दे रहा हुं । गुरु तत्काल समझ गये । बोले शिवा बेटे जरा यह पत्थर तोडना । शिवाजी ने पत्थर तोड़ा तो क्या देखता है बीच में एक कीडा मस्ती से पडा हुआ है । गुरु राम दास ने उस ओर इशारा कर के कहा देखो इस कीड़े को यहाँ कोन भाजन दे रहा है ? शिवाजी गुरु के चरणों पर गिर पडे ।

यह इन्द्रपद भी क्या है अशोका होटल की तरह है । जब तक की बुकिंग होगी तब तक रह सकते हो । जेब खाली हो जाने के बाद वहाँ रह नहीं सकते ऐस ही इन्द्रपद पर भी तभी तक रह सकता है **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गीता अ. ९।२१) मोक्ष की गति तो तत्त्व ज्ञान से ही सम्भव है । **"न सुखं देवराजस्य न सुख चक्रवर्तिनः । यत्सुख वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः"** यह राग ही दुख रूप है । यही जीव को बांधता है । एकान्त यानि जहां ब्रह्मभाव के अतिरिक्त कोई भाव हो न रहे वही एकान्त है । एकान्त भूमि सत् चित् आनन्द भूमि तुरीयावस्था है । जाग्रतावस्था इन्द्रियप्रधान, स्वप्नावस्था मन-प्रधान और सुषुप्ति हृदयप्रधान । "ब्रह्माहमस्मि" महावाक्य तुरीय पद की ओर संकेत करती है । प्रकृति तुम्हे प्रतिदिन तीन अवस्थाओं में घुमाती रहती है । इससे आगे नहीं ले जा सकती । जैसे किसी घर की धाय बच्चे को वहां तक घुमाने ले जा सकती है जहां तक उसे आज्ञा मिली हुई है । उस से आगे वह नहीं ले जा सकती । इसी प्रकार जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से आगे प्रकृति जीव को ले जाने में असमर्थ है । आगे ले जाने का काम ब्रह्मविद्या का है । श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने से मन के अनादि काल के दोष दूर हो जाते हैं । मन ही रूपान्तर से चित्त है । बृहदारण्यक श्रुति कहती है "कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्री धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ।" मुमुक्षु अपने मन को आत्माभिमुख बनावे । यह जगत भी एक स्वप्न है । मोह की निद्रा में मत सोओ । भर्तृहरि कहते हैं **"आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम् व्यापारे बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।**

दृष्टवा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्त भूतं जगत् ।।

(वैराग्य शतक ७)

यह सारा संसार मोहरूपी मदिरा में उन्मत्त की तरह हो रहा है। बुद्धिमान अपने मन को अभ्यास के द्वारा बार२ ब्रह्माकार वृत्ति में लगाये। यह शरीर मांगने से नहीं मिला बड़ी कीमत चुका कर आए हैं। यह चित्त बलवान हाथी की तरह है। वैराग्य रूपी अंकुश से इसे खींच कर ब्रह्माकारवृत्ति में प्रतिष्ठित करना है। इस मन को चंचल करने के लिए विशेष कुछ करना नहीं पड़ता चंचलता की ओर ले जाने के लिए किसी गुण की आवश्यकता नहीं, यह स्वभाव से ही चंचल है। हां इसे एकाग्रता की ओर ले जाने के लिए मार्गदर्शन आवश्यक है। योग के बिना मन एकाग्र नहीं हो सकता। सत्य को पकड़ मुमुक्षु धीरे २ मन को ऊपर उठाता है।

धैर्य भी मनुष्यका बडा मित्र है कठिनाई में यही काम आता है। विवेकशील धैर्य रखता है। संसार रूपी दुकान मे बैठे हो तो सभी प्रकार के ग्राहक तो आएगें ही। जब शरीर रूपी गोदाम को भर कर रखा है तो इसमे शोक मोह सभी आएंगें दुकान दार सफल वहीं होता है जो ग्राहक से बोले कुछ नहीं। ऐसे ही मुमुक्षु सहनशील होता है। बड़े भाग्य से यह सुअवसर मिला है इस का लाभ उठाओ। ''यस्य धैर्यं पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी। सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी, भ्राता मनःसंयमः'' यह मुमुक्षु का परिवार है। धैर्य पिता, क्षमा माता, शान्ति गृहिणी, सत्य जिस का मित्र हो, दया बहिन हो और मन का संयम भ्राता हो। अध्यात्म जीवन में इन गुणों को अपनाना चाहिए। ऐसा योगी ही ब्रह्मपद में प्रवेश पाता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं २४

१३-५-८५

''ॐ स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति''

(छान्दो० ७।५।३)

भगवान सनत्कुमार नारद से कहते है हे नारद भोग में चित्त विक्षिप्त होता है और योग में चित्त शान्त रहता है। शान्त एवं स्वस्थ मन में ही आत्म स्वरूपका भान होता है। इस चित्त की ब्रह्म रूप से उपासना करने वाला ब्रह्मपद में प्रवेश पा जाता है। तभी सच्चे सुख का अनुभव होता है। लोक जीवन में भी वास्तविक आनन्द तभी मिलता है जब किसी के चित्त में प्रवेश कर जाओगे। मुमुक्षु अपने चित्त में प्रवेश करता है। चित्त ब्रह्मको आवृत्त कर के बैठा है। जब तुम चित्त में प्रवेश कर जाओगे तो यह तुम्हें ब्रह्मदर्शन में सहायता करेगा। अविद्या सहित चित्त स जीव भाव का उदय हाता है। उपाधि हटा कर एक चेतन ही है। चेतन सबका अधिष्ठान है। सब में विराजमान है। चींटी में भी चेतन बैठा है। वहां भी वह अपनी योनि के अनुसार अपने जीवन की रक्षा करता है। चित्त के विकार उस परम ब्रह्म को देखने नहीं देते।

मनुष्य को अपने स्वरूप को जानना एक प्रकार से ब्रह्म का कर है। यदि इस जीवन में अपने स्वरूप को नहीं जाना तो इस का दण्ड है **"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्"** जब तक यह जीव सत्य में प्रतिष्ठित नहीं होगा तब तक इस की ऊर्ध्वगति नहीं होगी। नीचे ही नीचे गिरता जाएगा। इतना नीचे गिर जाएगा जहाँ इस की कोइ प्रतिष्ठा नहीं होगी। मान लो हजारों घडे रखे हैं पर किसीका मुह इधर है किसीका उधर। तो जिस का मुह प्रकाशकी ओर होगा, सूर्य की ओर होगा उस में सूर्यका प्रकाश होगा। और जिसका मुह मिट्टी धूलकी ओर होगा उस में मिट्टी धूल होगी। ऐसे ही जो जीव सुख की ओर, सत्य की ओर मुहकर के बैठा है वह सुखी होगा। जो दुःख की ओर मुह कर के बैठा है वह दुःखी है। इस लिए चित्त को सदा ब्रह्म समझ कर उपासना करो। ऐसा उपासक उन्हीं लोकों को प्राप्त होता है जहाँ चित्त की प्रतिष्ठा है। जहा चित्त काम करता है। यह चित्त यद्यपि मायापुत्र है। यही तुम्हें जीव बनाता है। यही तुम्हें ब्रह्म बना सकता है। अर्थात् तुम्हें ब्रह्म भाव में पहुचा सकता है। सर्वथा दुःख रहित तो मोक्षपद ही है। यह चित्त मोक्षपद तक पहुंचाने मे सहायक होता है। अन्य किसी भी लोक मे सर्वथा दुःख की निवृत्ति नहीं है। मानसिक दुःख तो स्वर्ग में भी है। मोक्षविद्या ब्रह्मविद्या है। मुमुक्षु श्रद्धाशील होकर इस में लगा रहे। मुमुक्षु प्रार्थना करता है।

"स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते"

(छन्दो० ७।५।३)

आत्यन्तिक सुख सब को अपेक्षित है। पर यह सुख शरीर में नहीं हो सकता। किसी विषय में भी नहीं है। यह सुख देश काल से बंधा हुआ नहीं है। सर्व देश सर्व काल एवं सर्व रूप आत्मा ही आत्यन्तिक सुख रूप है। "आनन्द ब्रह्म" परमात्मा सुख रूप ही है। परन्तु यही आनन्द जब हम किसी विषय के आकार में बांध देते हैं तब किसी आकार या किसी विषय में बंधा हुआ सुख सीमित हो जाता है। उस में दुःख मिश्रित हो जाता है। सुख परिच्छिन्न हो जाता है। अच्छा बताओ जो सुख तुम चाहते हो वह कौन से आकार में चाहते हो? तो कहना पड़ेगा कि वह सुख सर्व काल सर्व देश सर्व विषय में होना चाहिए। तो ऐसा सुख किसी विषय में नहीं हो सकता। सर्व रूप सर्व काल सब देश में होने वाला सुख तो ब्रह्म सुख ही है। किसी विषयका सुख नहीं हो सकता अमृत ज्ञान ही सर्वदा सुख रूप है। उस अमृत तत्त्व की ओर चित्त को घेर कर ले आओ। इस के बिना यह जन्म मरणका चक्कर छुटेगा नहीं। ब्रह्माकार वृत्ति में चित्त को स्थिर करने के लिए चार अवस्थाएं हैं। यह चार वृत्तियां हैं मधुभूमि, मधुमती, मधुप्रतीका और विशोका। ध्यान में जब ब्रम्हाकार वृत्ति में आनन्द आने लगे तो यह मधुभूमि है। जब संसार में भी मन एकाग्र किए बिना किसी प्रकार का सुख नहीं ले सकते तो आत्मा की ओर जाने के लिए कितनी एकाग्रता चाहिए। कभी २ ध्यान में भी मन चंचल हो जाता है। चित्तका सूक्ष्म राग विक्षेप करता है। मुमुक्षु धैर्य से लगा रहे और धीरे धीरे इस अवस्था को पार करे। ध्यान की अवस्था में जब ध्येयाकार वृत्ति बन जाती है तब मन शान्त हो जाता है तो आनन्द की अनुभूति होती है परन्तु यह आनन्द भी क्षणिक होने के कारण मिथ्या है। जब तक यह वृत्ति रहेगी आनन्द भी रहेगा। बुद्धिमान को बड़ी सावधानी से ब्रह्माकार वृत्ति को बनाए रखना है। मन जैसे जैसे स्थिर होता जाएगा आनन्द की मात्रा बढ़ती जाएगी। मन को संकल्प से बांधना है। मुमुक्षु के लिए ध्येय ब्रह्म है। बुद्धिमान इसी में मन लगाए। बार बार अभ्यास करने से वृत्ति अपने आप लक्ष्य में लीन हो जाएगी। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद चित्त से महान ध्यान है। तुम चित्त की ब्रह्मरूप से उपासना करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. २५

१४-५-८५

ॐ यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।"

(छान्दो० ७.५.३)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद त्रिकाल का बोध कराने वाला आत्मा ही है। यह आत्मा यद्यपि परिपूर्ण है परन्तु जीव भाव में आकर यह सर्वज्ञ से अल्पज्ञ हो जाता है। अन्तरात्मा से शक्तिशाली कौन हो सकता है। ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियां जिस के आश्रय में हैं वही जीवभाव म अविद्या के घेरे में बंध जाता है। अमर होते हुए भी मर्त्य हो आता है। जिन जिन से इस ने मित्रता की वह अल्पज्ञ एवं मर्त्य है। मन बुद्धि की मित्रता स अल्पज्ञता आ गई। शरीर की मित्रता से इस में मृत्यु आ गइ। योगादि के अभ्यास के द्वारा मन की गति को धीरे २ ऊर्ध्वगामी बनाओ तो कुछ शक्तियां तुम्हें प्राप्त हो सकती हैं। चित्त के द्वारा भूत भविष्य और वर्तमान का बोध तुम्हे प्राप्त हो रहा हैं। चित्त स ऊपर ध्यान है। मन क चंचल होन स चित्त में कुछ भी नहीं भासेगा। मन को बड़ा सुन्दर दर्पण समझो। जब यह माया के खेल में चंचल हो जाता है तब तुम्हे कुछ नही दे सकता। भगवान न इस मन को स्वभाव से ही चचल बनाया है। यह मदारी के बन्दर की तरह चचल है। पर इस मे भी तुम्हारा भला ही किया है। नहीं तो बेहोशी की तरह तुम्हारा मन भी बेकार हो जाता तुम्हे उस परमात्मा ने मशीन की तरह बनाया है। जीवन के सब काम इस मन के द्वारा ही होते है। यदि यह मन बेहोशी की स्थिति की तरह बेकार हो जाता। जैसे कोई drink कर के बेहोश हो जाता है तो कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे ही यह मन भी क्या करता। इस लिए चचलता भी अच्छी है। यह सोचो कि परमात्मा ने हर वस्तु को बनाने में कुशलता का ही

परिचय दिया है। कहते हैं कोई एक व्यक्ति एक दिन घर से चला कि भगवान की गल्तियां ढुढने जा रहा हूं। थोडी दूर जाने पर देखा कि एक खेत में एक बेल के साथ बडे २ फल (तरबूज या काशीफल) लगे हुए हैं और पास ही मेंढ पर एक बडा सा झरबेरी का पेड़ है जिस में छोटे २ बेर लगे थे। देखते ही बोला यह देखो कितनी बड़ी गल्ती की है छोटी सी बेल के साथ तो इतने बड़े २ फल लगा दिए और इतने बड़े पेड़ पर छोटे २ फल लगाए हैं। वहां खड़ा २ यह सोच ही रहा था कि हवा का एक झोंका आया और दो चार बेर उस की खोपड़ी पर आ कर टप से गिर पड़े। फट से बोला अरे यदि यह तरबूज होते तो मेरा क्या हाल होता? ईश्वर बड़ा समझदार है। वह सब काम बहुत सोच समझ कर ही करता है। तो कहने का तात्पर्य यह है कि उस परमात्मा ने चित्त को चंचल बनाने में भी बड़ी समझदारी दिखाई है।

मन की इस चंचलता का सदुपयोग कर के इसे एक धारा में रखना ध्यान है। एक निश्चित मार्ग पर चलकर गन्तव्य तक पहुंचा जा सकता है। जैसे सरकार ने तुम्हारे चलने के लिए कुछ सडकें बनाई हैं। मन की गति के लिए भी शास्त्र ने दो प्रकार की विद्याओं का वर्णन किया है। लोक जीवन में शान्ति से जीने के लिए अपरा विद्या आवश्यक है। न्याय और धर्म के मार्ग पर चलो जीओ और दूसरों को जीने दो वाला सिद्धान्त अपनाओ। जब तुम झूठ बोलते हो तो तुम्हारी आत्मा भी तुम्हारा समर्थन नहीं करती। क्यों कि सत्य तुम्हारे अन्दर से आ रहा है। चेतन आत्मा जब इस शरीर को छोड़ देगा तो यह शरीर इन्द्रियां मन बुद्धि का बाजार कितना सुन्दर लगेगा? यह सारी सुन्दरता तो उसी चेतन की है।

ध्यान के विषय में महर्षि पतञ्जलि कहते हैं "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (योगदर्शन बिभूति पाद ३।२७) ध्यान क्या है। चित्त की एक तानता दीपक की लौ की तरह है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं

"यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमास्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥"

(गीता अ० ६।१९)

लोक जीवन में भी चित्त की एकाग्रता ही सुख है। आध्यात्मिक जीवन में राग नहीं होता। राग सदा दृश्य पदार्थ में होता है। राग को काटने के लिए ध्यान आवश्यक है। इस चित्तको दीपक की उपमा दी गई है। ज्योति भीतर से आ रही है। जिस के बिना कुछ भी सम्भव नहीं। उस की ओर ध्यान दो। दृश्य में राग होने के कारण मन बार बार दृश्य की ओर हीं आकर्षित होता है। द्रष्टा की ओर जाता ही नहीं। प्रकृति से अनादि काल से यह चंचलता चली आ रही है। जीवनको दिव्य बनाने के लिए परम आश्रय की आवश्यकता है। भगवत्शरणागति ही परम आश्रय है। तुम्हारी आत्मा अमर है परन्तु उस के अमरत्व का ज्ञान न होने से उस अमर पदका लाभ तुम लेने में असमर्थ हो। जैसे हीरेका ज्ञान न होने से हीरा जेब में रखा रहने पर भी व्यक्ति अपने को धनी नहीं समझ सकता। गुरु मुख से मन्त्र शब्दको ग्रहण कर के चित्त को दे दो और बार २ उस के अभ्यास से चित्तको ब्रह्माकारवृत्ति में ले आओ तभी आनन्द की अनुभूति होगी। यह सुख ही परमात्मा है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० २६

१५–५–८५

"ॐ ध्यानं वा व चित्ताद्‌भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीवद्यौर्ध्यायतीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेथ ये प्रभवो ध्यानपादांश इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति,

(छन्दो० ७।६।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद इस ध्यान का बड़ा महत्त्व है।

हमारे अज्ञान का लाभ सब लेते हैं। जैसे हीरे का ज्ञान न होने पर जौहरी हमें बुद्धू बना देता है। मिट्टी का एक घड़ा लेते समय भी ध्यान की आवश्यकता होती है। तुम्हारे अज्ञान का लाभ लेने वाले बहुत हैं पर तुम्हें ज्ञान देने वाला दुर्लभ है। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं **"मनुष्यणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये, यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः** (गीता अ. ७।३) इस जगत में जो चीज जो तुम्हे मिल रही है केवल देखेने के लिए ही मिली है। बचपन मिला उड गया, ऐसे ही कुमारावस्था, युवावस्था सब देखने का ही था। पर जो यह सब देख रहा है वह सच्चा है। बुढापा ऐसा दोस्त है जो तुम्हें अन्तिम क्षण तक नहीं छोड़ेगा। तो सोचने की बात यह है कि इस जीवन में असली वस्तु सार वस्तु क्या है ! यह सार वस्तु तुम्हारी आत्मा ही है। पर तुम जिधर ध्यान दोगे वही वस्तु दीखेगी। तो इस आत्मा मे मन किस प्रकार देखा है। इस जगत मे रोज प्यार का ड्रामा करो क्यो कि इस संसार का व्यवहार ऐसा ही है। यह ड्रामा भी अपने मन की शान्ति के लिए ही है। दृष्टि आत्मा में रखो और जीवन का ड्रामा करते चलो।

ध्यान के बिना लौकिक व्यवहार भी नहीं चल सकता तो आध्यात्मिक जीवन मे तो इस ध्यान का और भी अधिक महत्व है। " **ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना, महाभयकृत द्वित्राणांत्राणा यदि जयते** (श्री श्री हर्ष खण्डन ख० खा० प्र. २५) अद्वैत वासना महामय से परित्राण है। महाभय माने मृत्यु का भय, जिस मृत्यु को आज तक किसी ने देखा नहीं परन्तु उस के भय से सब भयभीत है। जीवन मे सब से बडा भय मृत्यु का ही है। यह अद्वैत भावना इस भय से मुक्त कर देती है। जब तुम्हे यह ज्ञान हो जाएगा कि " आत्मैवेदं " ब्रह्मैदं " तो व्यवहार में कोमलता आ जाएगी।

चित्त ब्रह्माकार वृत्ति को पकड़ कर चले। ध्याता ध्यान और ध्येय यह त्रिपुटी हुं। मैं ध्याता है। ब्रह्म मेरा ध्येय है और ब्रह्माकारवृत्ति ध्यान है। ब्रह्माकार वृति मे मन जब शान्त हो जाएगा तो आनन्द की अनुभूति होगी। यह आनन्द ब्रह्म का ही है परन्तु वृत्ति रूप होने से

मायिक है। ध्यान की यह अवस्था मधुभूमि कहलाती है। " निश्चलं निश्चरच्चितं इस अवस्था मे यद्यपि मन निश्चल तो हो जाता है, आनन्द की अनुभूति भी होती है, परन्तु वृत्ति रूप होने के कारण जब तक वृत्ति है तब तक आनन्द रहेगा। मायिक होने के कारण मिथ्या है। "**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया मामेवये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति** ते भगवान कहते है मेरी माया वडी बलवती है, गुणमयी है, इस का वही पार कर सकता है जो मेरी शरण मे आ जाता है। जब भगवान से मित्रता करोगे तो माया भगवती तुम्हें आगे जाने देगी। बुद्धिमान को बडी सावधानी से ब्रह्माकारवृत्ति बनाए रखना चाहिए।

"ध्याये तेजोमयं ब्रह्म तेजो ध्यानं परात्परम्

भ्रुवोर्मध्ये मनोहृदयं च यत्तेजः प्रणवात्मकम् (पौराणिक)

मुमुक्षु उस तेजमय ब्रह्म का, परब्रह्म का अपने हृदय मे ध्यान करे मन जैसे २ स्थिर होगा आनन्द की मात्रा बढती जाएगी। धीरे २ इस तेज की ध्यान की कक्षा को पार करो। जैसे निद्रा में जब जाते हो तो पहले मन को कल्पनाहीन और शरीर को ढीला करना पड़ता है। यदि मन हल्का नहीं होता तो स्वप्न में पहुंच जाते हो। ध्यान में भी ऐसा ही होता है। जब मन शरीर को छोड़ने लगता है तो बडा भय लगता है। मन जब अज्ञात भूमि में प्रवेश करने लगता है तो भयभीत होता है। गुरु शिष्य को यहां से सावधानी से आगे बढाता है

जब केवल त्रिपुटी मात्र रह जाती है यह मधुमती भूमि है। सविकल्प समाधि है। यह सविकल्प समाधि महान पुण्यों को देने वाली है। बुद्धिमान कभी मन को चंचल नहीं होने दे। शान्त मन पुण्यों का फल है और चंचल मन ही पाप का फल है। किसी भी वस्तु का ध्यान जब मन में पहुंच जाता है तो उस का सौंदर्य कई गुणा बढ जाता है। क्योंकि मन इन्द्रियों से सूक्ष्म और ऊंचा है ध्याये तेजोमयं ब्रह्म यह तेज बाहर का तेज नहीं होता। बाहर का तेज जड होता है। यह ज्ञान लक्षणा ज्योति है चेतन ज्योति है। तुम्हारी आंख की ज्योति ही इतनी महान है तो स्वयं वह ज्योतियों की ज्योति जो आत्मा है वह कितना महान होगा? मुमुक्षु इसी मे मन को लगावे।

समाधि में अनन्त सुख होता हैं, पर उस सुख का स्वाद नहीं लेना।

"न स्वादयेत् सुखं तत्र नि.सङ्गः प्रज्ञया भवेत्
निश्चलं निश्चरच्चित्तमेकी कुर्यात् प्रयत्नतः ।

(माण्डूक्यकारिका ३।४५)

इस मन को संकल्प द्वारा पकड़ कर समाधि में लगाना चाहिए । हृदय से भ्रुवों के मध्य में और यहाँ से सहस्त्रार में धीरे ले जाओ । मन को संकल्प से बाँधना है ।

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषा व्योमन्यात्मा प्रतिष्ठित:

(मुण्डकोपनिषद् २।२।६)

जब वृति केवल ध्येय गोचर हो जाएगी तो चित्त बिल्कुल शान्त हो जाए गा । " सुप्रसन्ना " ज्ञान भूमि में पहुचने पर ब्रह्म विकार धीरे २ शान्त होते जाते हैं । व्यवहार काल में अब यह थोडी २ अकड़ रखता है पर जीवन की वास्तविकता को समझ जाता है । इस लिए पहले जैसा शोक मोह क्रोध नहीं रहता । प्यार पहले से अधिक हो जाता है क्यों कि पहले शरीर की दृष्टि से प्यार था अब आत्मदृष्टि से प्यार है । इसे आत्मरति कहते है । "प्राणो ह्येषा सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवति नातिवादी ।" केवल

"आत्मरति आत्मक्रीड ब्रह्मविदां वरिष्ठः"

बुद्धिमान मुमुक्षु मन को ब्रह्म में लगाने का प्रयत्न करे। ध्यान की स्थिति में दृढ़ता से लगा रहे। अपने हृदय में इस तेजका ध्यान करे। यह तेज बाहर का तेज नहीं, भौतिक तेज नहीं होगा। बाहरका तेज जड़ होगा। पर यह तेज ज्ञान लक्षणा ज्योति है, चेतन ज्योति है। तुम्हारी आंख की ज्योति ही इतनी महान है तो स्वयं वह ज्योतियों की जो ज्योति है आत्मा, वह कितनी महान होगी ? मुमुक्षु इस में मन लगाये। ध्यान चित्त से बडा है। भगवान सनत् कुमार कहेते हैं हे नारद इस पृथ्वी को देखो, कैसी निश्चल बैठी है मानों ध्यान कर रही है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० २७

१६-५-८५

"ॐ ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति"

(छान्दो० ७।६।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद ध्यान चित्त से महान है क्यों कि ध्यान से ही सब कुछ होता है। विचार चल रहा है कि ध्यान किस प्रकार होता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (योगदर्शन ३।२) ध्यान की वृत्ति एकतान हो जाए यही ध्यान है। मुमुक्षु के लिए ध्येय ब्रह्म है। सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही विश्व की आत्मा है। उस महान ब्रह्म का आत्म रूप से ध्यान करना है। ऐसा ध्यान करने से मोक्ष मार्ग घेरकर बैठी हुई माया, अविद्या, आवरण रास्ते से हट जाएगा। जिस के सम्बन्ध से यह महान ब्रह्म जीव बना हुआ है। जब तक ब्रह्माकार वृत्ति बनेगी नहीं तब तक यह अविद्या का आवरण हटेगा नहीं। लोक जीवन में जब तक हमारा शरीर बना हुआ है भले ही ब्रह्माकार वृत्ति भी बन जाए, ब्राह्मी स्थिति हो भी जाए तो भी 'मनुष्योऽहं' मात्रया शरीर अहंकार चलता ही रहेगा। मैं मनुष्य हुं ऐसा अहंकार बना ही रहेगा जब तक शरीर छूटेगा नहीं। इसी तरह यह अविद्या आवरण भी हटेगा नहीं। भले ही भक्त होगा, भगवान का ध्यान भी करेगा। उस की वाणी भी सुन्दर हो जाएगी तो भी तत्त्वसाक्षात्कार हुए बिना यह अविद्या आवरण हटेगा नहीं।

गुरुमुख द्वारा जो महावाक्य आएगा वही अविद्या की निवृति करेगा। और कोई इस आवरण को हटा नहीं सकता। इसी से महान ब्रह्म का साक्षात्-

कार होगा। तुम कहोगे कि गुरु ने उपदेश भी किया। महावाक्य का श्रवण भी किया, पर साक्षात्कार तो हुआ ही नहीं। तो इस के लिए ऐसा समझो कि लोक जीवन में भी कहा है "एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्" ग्यारहवे दिन पिता पुत्र का नामकरण संस्कार करे। ग्यारह दिन तक उस से बात नहीं करे। उसे अतिथि समझे। ग्यारहवें दिन पिता ने नामकरण संस्कार किया "विमलोऽसि' बेटे ने सुना तो सही पर अपने स्वरूप में इस को मिला नहीं सका। मां ने सुना लिया कि इस का नाम विमल रखा है तो वह बार २ उसे विमल विमल कह कर प्यार करती है। एक दिन वह अपने ध्यान में पडा २ अंगूठा चूस रहा था। मां ने विमल कहा तो उस ने एकदम उधर देखा। मां समझ गई कि अब यह पकडा गया। अब उस ने अपने विमल कर के आत्मसात् कर लिया। इसी प्रकार श्रवण मनन और निदिध्यासन का विचार है। विमल ने बार बार सुनने पर निश्चय किया। इसी प्रकार गुरु ने कहा **"ब्रह्मासि सौम्य"** हे सौम्य तू ब्रह्म है। मुमुक्षु भी एक किस्म का बच्चा ही है। ठीक है कि यह सफेद केश वाला बच्चा है। बच्चा माने जो अबोध हो, जो समझे नहीं। श्रवण तो किया, मनन से संस्कार भी बना। परन्तु आनन्द का अनुभव तो तभी होगा जब वृत्ति ध्येयाकार बनेगी। ब्राह्मी भूमि में पहुचने पर आनन्द का बोध होगा।

श्री मद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान कृष्ण उद्धव को समझाते हुए कहते हैं **"यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया, स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्स्वरूपताम्"** (भागवत ११।६।२२)। लोक जीवन में यह मन तीन भाव से जाता है। स्नेह से, द्वेष से और भय से। जो विरोधी है, प्रतिकूल है, वहां द्वेष से मन जाएगा। जहां प्रेम है, अपनत्व की भावना है, अनुकूलता है वहां स्नेह से मन जाएगा। जो भयपूर्ण हैं जैसे सर्प है, सिंह है, वहा भय से मन जाएगा। द्वेष से और भय से गया हुआ मन तुम्हें कमजोर करेगा। जहां प्यार से मन जाएगा वहां राग होगा। लोक जीवन में जहां राग होता है, आध्यात्मिक जीवन में यही राग श्रद्धा का रूप धारणकर लेता है। उस समय जब गुरु महावाक्य का उपदेश करेगा तो शिष्य इस को पकड कर आगे बढेगा। इसी का विचार चल रहा है। मधुभूमि में मुमुक्षु ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी में रहता है। इस में विकल्प बना रहता है। इस मधुभूमि में भी महान आनन्द आता है।

इस मधुभूमि से ऊपर की स्थिति मधुमती भूमि कहलाती है। मुमुक्षु जब धीरे २ मधुभूमि से ऊपर उठता है तो मन देहाहंकार भाव को छोडता है।

"ध्यातृध्याने परित्यज्य, क्रमाद् ध्येयैकगोचरम्
निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयते"

(पंचद० तत्त्ववि० ५५)

यहां मुमुक्षु ध्याताभाव का परित्याग करे। ध्यान करने का अहंकार भी निवृत्त हो जाता है। वृत्ति ध्येयाकार होती जाती है। जैसे दीपक विना वायु वाले स्थान पर रखने से निश्चल हो जाता है। उस की लौ कम्पित नहीं होती। इसी प्रकार मुमुक्षु का चित्त भी इस मधुमती भूमि में पहुंच कर शान्त हो जाता है। निश्चल हो जाता है **"मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम्, मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते"** (माण्डूक्यकारिका अद्वैत प्र ३।३१) मंत्र स्पष्ट करता है कि ध्येयाकार वृत्ति में मन जब शान्त हो जाता है तो यह मन अमनीभाव को प्राप्त हो जाता है। जैसे सुषुप्ति में तुम्हारी मथुरा तीन लोक से न्यारी होती है। परन्तु यहां तामसी वृत्ति होती है। अविद्या तुम्हें घेर कर बैठी है। ध्यान की स्थिति इस से विलक्षण होती है। मंत्र आगे कहता है,

"आत्मसत्यानुबोधेन न सङ्कल्पयते यदा।
अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम्॥"

(मांडूक्य कारिका अद्वैत प्रकरण ३२)

यहां यह मन अमनीभाव को प्राप्त हो जाता है। यहाँ कोई अन्य वृत्ति नहीं। ध्याता ध्यान नहीं केवल ध्येय रह जाता है। मुमुक्षु इस सत्य को देखता है अहा? मैं ही विशुद्ध ब्रह्मरूप हूं। यह मधुप्रतीका है **"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरूषः, किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत्॥"** (बृहदा० ४।४।१२) मंत्र कहता है ऐसी स्थिति में मन क्या इच्छा करेगा? सर्व कर्म क्षय हो जाता है। वासनाक्षय हो जाता है। जरा सोचो करोडों जन्म लिए और वहां तू काम क्रोध लोभ मोह से कर्म करता रहा है। धर्म के साथ अधर्म भी करता रहा है। जो सात्त्विक कर्म भी करता रहे वह भी ज्ञान रहित होने के कारण भोग ही देगा। इस अनादि संसार में करोडों तरह के कर्म किए हैं।

पर इस मधुप्रतीका भूमि में पहुंच कर सब कर्म क्षय हो जाते हैं "अनादाविह संसारे संचिताः कर्मकोटयः । अनेन विलयं यान्ति शुद्धो धर्मो विवर्धते" (पंचद० तत्त्ववि० ५९) यहाँ अनेक प्रकार के पुण्यापुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि कर्म तीन प्रकार के होते हैं शुक्ल कर्म, कृष्ण कर्म, शुक्लकृष्ण कर्म। परन्तु आत्मज्ञानी का कर्म अशुक्ल अकृष्ण होता है जो मोक्ष का हेतु है। उपकथा आती है, एक सेठ बहुत धर्मात्मा था। छोटी सी दुकान लगाकर बैठा है। पडोस में देखता है कि एक दूध बेचने वाले ने बहुत बडा सुन्दर बंगला बना लिया है। सेठ ने सोचा कि कलियुग में धर्म में बल नहीं रहा। पाप करने वाले मनुष्य सुखी दीखते हैं। वह अपने गुरु एक संत के पास जाता रहा। एक दिन रहा नहीं गया। कह दिया महाराज बात ऐसी है। गुरु ने कहा बेटा कल आना तुम्हे समझाएंगे। दूसरे दिन पहुंचा। तब तक गुरु जी ने कुटिया के सामने ही एक गड्ढा खुदवा दिया था। कहा बेटा इस में उतर जाओ। उतर गया श्रद्धालु तो था ही। अन्य चेलों से कहा कि इस में पानी डालो। घडे पे घडा पानी भरने लगा। पानी गले तक आ गया। जब मुह में पानी भरने लगा तो चिल्लाया कि मर जाएंगे। गुरु जी ने चेलों से कहा अब इसे बाहर खींचलो। बाहर आने पर संत ने समझाया कि कर्म का फल जब अपनी पूर्णता में पहुंचता है तभी डुबाएगा। जैसे लोक जीवन में देखो पुत्र जब छोटा है अंगूठा चूसा रहा है तो तुम्हारी रक्षा कैसे करेगा? जब पूर्णता को प्राप्त होगा तभी तुम्हारी रक्षा कर सकेगा। मुमुक्षु धैर्य्य से ब्रह्माकारवृत्ति में मन को स्थिर करे। जब इस मधुप्रतीका भूमि में पहुंचता है तब कहते हैं **"धर्ममेघमिमं प्राहुःसमाधिर्योगवित्तमाः, वर्षत्येष यतो धर्मामृतधाराः सहस्रशः।"** मंत्र जप और ध्यान से जो पुण्य उत्पन्न होता है वह महान फल देने वाला होता है। यह ब्रह्मविद्या ही अविद्या को डंडा मार कर बाहर निकाल देगी। ऐसा महान ब्रह्मवेत्ता यदि गृहस्थ होगा तो उस के पुण्य जो शेष रह जाएंगे वह उस के परिवार वाले लेगे। योगी सन्यासी का पुण्य उस के शिष्यों को मिल जाता है।

"अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलापिते।

समूलोन्मूलिते पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये ।।"

यह जो निर्विकल्प समाधि है इस मे अनन्त जन्मों के धर्मा धर्म विलीन हो जाते हैं। अविद्या आवरण भंग हो जाता है। आत्मा अपने सत्चित् आनन्द स्वरूप में भासने लगता है। यह अविद्या ही सब पापोंकी सब दुखों की जननी है। कहते हैं चोर को भी भगाओ चोर की मम्मी को भी भगाओ : अहमास्पद आत्मा को चुराने वाले यह कर्म चोर हैं जो इस आत्मा को कहीं से कहीं ले जा कर पटक देते हैं। भिन्न २ योनियों में ले जा कर पटकने वाले यह कर्म ही चोर हैं। इन की मम्मी अविद्या है।

"अन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा यो प्रतिपद्यते ।

किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ।।"

श्रुति कहती है जो आत्मा के असली स्वरूप को नही समझे। उस ने कौन सा पाप नही किया इस आत्मा का हरण कर के शरीर महान जंगल में फंसा दिया। अज्ञानी ही ऐसा चोर है। पर चोर का चोर काल इस को खा जाता है, चुरा लेता है। जन्म के मूल में भी कारण कर्म ही है। जब जीव भाव समाप्त हो जाता है। ब्रह्म भाव में मन स्थिर हो जाता है मंत्र कहता है "आत्मसत्यानुबोधेन" सत्य आत्मा का जब बोध होता है "तब "मनुष्योऽहं" ऐसा भाव समाप्त हो जाता है कि मैं मनुष्य हूं। ऐसा मुमुक्षु देहाहंकार से उपर उठ जाता है। आत्म बोध हो जाने पर " न संकल्पयते यदा" नाना प्रकार के संकल्प समाप्त हो जाते हैं। ऐसा मुमुक्षु व्युत्थान काल में भी मनुष्य भाव में नहीं रहता। इस भाव का कारण जो शरीर का अहंकार है वह समाप्त हो जाता है। अध्यास की निवृत्ति हो जाती है। यह ब्रह्म भाव में पहुंचा हुआ ज्ञानी बालवत् स्वभाववाला हो जाता है। निश्छल स्वभाव वाला हो जाता है जैसे बच्चे के मन में न राग होता है न द्वेष होता है वह निश्छल स्वभाववाला होता है। जिस के मन में राग द्वेष होता है वह मन में गांठ रख कर बोलता है। ज्ञानवान अति सरल अति ऋजु हो जाता है।

उस के मन में राग द्वेष नहीं रहता। बालवत् स्वभाव की निश्छलता और ब्रह्मभाव में पाण्डित्य प्राप्त कर के मौन भाव को प्राप्त हो जाता है। मन की वृत्ति जब सगुण साकार अथवा निर्गुण निराकार में लीन हो जाती है तो मौन भाव आ जाता है। यह मधुप्रतीका भूमि है। यहां पहुंच कर मुमुक्षु निर्विकल्प हो जाता है यहां उस के शोक मोह की निवृत्ति हो जाते हैं। ब्रह्म भाव में पहुंचने से पहले शोक मोह की निवृत्ति नहीं हो सकती जैसे जागृत और स्वप्न तक सब सुख दुःख का भान होता ही रहता है। जैसे घोड़े तीन प्रकार के होते हैं। एक लद्द टट्टु, दुसरे सवारी के घोड़ा' तीसरे तोपखाने के घोड़े। ऐसे ही मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं। जो संसार और शरीर बोझ को ही लाद कर चलता रहे वह लद्द टट्टु की तरह ही है। जीवन भर शरीर और शरीर के सम्बन्ध के अहंकार में घूमता रहता है जिस के आधार में जिस के सत्ता में यह जीवन चल रहा है उधर ध्यान ही नहीं दिया। दूसरे जो सवारी का काम करते हैं समय पर खाया अफिस गये, काम किया सो गये। बांकी छुट्टी। ज्ञानवान सत्सङ्गी जो हैं वह तोपखाने के घोडें हैं। संसार का व्यवहार करते चलते हैं और मन अपनी आत्मा में रखते हैं। माया के कितने ही गोले शोक मोह के चलते रहते हैं पर यह ज्ञानी विचलित नही होता। जैसे तोपखाने का छोडा तोपों के चलने पर घबडाता नहीं पर सवारी का घोडा या टट्टू एक दम घबडाकर भाग खडा होता है। इसी प्रकार ज्ञानी संसार के शोक मोह से विचलित नहीं होता।

इस से भी ऊंची भूमि विशोका भूमि है। यह जीवन मुक्ति है। "तत्र को मोहः कः शोकः" मुमुक्षु धीरे २ ध्यान मे दृढता प्राप्त करे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. २८

१७-५-८५

"ॐ ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानभुपास्स्वेति ।"

(छान्दो० ७।६।१)

विचार चल रहा है कि ध्यान कैसे करना है। चित्त की वृत्ति का ध्येयाकार होना ध्यान है। पहले सोचो ध्येय योग्य क्या वस्तु है? यह शरीर तो प्रतिक्षण बदल रहा है। मां ने बच्चे को बडे प्यार से देखा। बारह वर्ष बाद पुनः देखा तो कितना परिवर्तन हो गया। मां ने पहचाना ही नहीं। यहां तक भी हो सकता है कि वह बच्चा जब बारह वर्ष बाद घर आए और मां आंगन में झाड लगा रही हो। जैसे ही बेटा घर मे घुसा मां चोर २ कह कर चिलाने लगे। डरे भी जाए। पर बाद में पहचानती है तब भय नहीं रहता। हम लोग रोज एक दूसरे को देखते हैं इस लिए पहचानते हैं। रोज देखने की क्रिया यदि बन्द हो जाए तो बहुत समय बाद देखने पर एक दम नहीं पहचान पायेंगे! यह बाहर की प्रकृति का ध्यान अज्ञान ही है ध्यान नहीं। अन्दर जो सत् चित् आनन्द स्वरूप बैठा है वास्तव में वही ध्येय है। उस परम सत्य का ध्यान करे।

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्
ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते ।"

(गीता अ० १०।१०)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः, नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता। (गीता अ० १०।११)

भगवान कहते हैं मेरे ज्ञानी भक्त कैसे हैं? वह हमेशा मेरे से मिले हुए हैं। जैसे घर में माता पिता भाई बहिन सब मिले हुए हैं। पर यह मिलना राग से है। यदि राग नहीं होगा तो बगल में बैठा हुआ बेटा भी पिता से नहीं मिलेगा। यह सांसारिक सभी सम्बन्ध राग के हैं। भगवान से मिलने के लिए इस राग से काम नहीं चलेगा। राग भी ज्ञानयुक्त होना चाहिए। परमात्मा से मिलने के लिए तत्त्वज्ञान साधन है: तत्त्व में हम सब एक ही हैं। लोक जीवन में भी जैसे बेटा चाहे अमेरिका में बैठा हो पर राग होने से माता पिता से मिला ही रहता है परन्तु यदि राग नहीं है तो पास में रहता हुआ भी दूर है।

ज्ञानी भक्त इसी प्रकार सदा भगवान से युक्त रहता है, मिला रहता है। ऐसे ज्ञानी भक्त को, भगवान कहते हैं "ददामि बुद्धियोगं तं" मैं बुद्धि योग देता हूं। ज्ञान योग देता हूं। इस जगत में भी जब हम किसी कठिनाई में होते हैं तो माथा पकडकर सोचते हैं समाधान के लिए ध्यान करते हैं तो अन्तर्यामी की प्रेरणा मिलती है और उसके द्वारा अशक्य कार्य भी शक्य हो जाता है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस पृथ्वी को देखो कैसी निश्चल बैठी लगती है। निश्चल पृथ्वी ही तुम्हें कुछ देगी। सोचो तो यदि यह पृथ्वी हिलने लगे तो क्या हाल होगा। एक क्षण के लिए कभी भूकम्प होता है तो क्या हाल होता है। भय के मारे सब कांपने लगते हैं और कभी २ तो भयंकर नाश भी हो जाता है। यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टि से यह पृथ्वी भी गतिशील है पर उसकी स्वाभाविक गति से विशेष हल चल नहीं होती। हम लोग इस भूमण्डल पर इस प्रकार से हैं जैसे शिर में जूं हैं। शरीर की हलचल से जूं का कोई प्रभाव नहीं मालूम पढता ऐसे ही पृथ्वी की इस गति का हमारे पर कोई प्रभाव नहीं होता। ईश्वरीय विधान के अनुसार जो गति है उससे कुछ गडबड नहीं होती। जूं को जैसे यह शरीर अचल दिखाई देता है इसी प्रकार हम लोगों को यह पृथ्वी निश्चल दिखाई देती है। यह जल भी अपनी स्वाभाविक गति से बह रहा है। यह पानी समस्त जगत का जीवन है। "जीवनं भुवनं वारि" जो दुख को दूर

करे वह वारि। भोजन के बिना तुम महीना भर रह सकते हो पर पानी के बिना दो दिन भी नहीं जी सकते। मनुष्य सोचता है कि मैं ही सब करता हूं। पर यह बताओ कि यदि एक बार भी वर्षा की कमी हो जाए तो करोड़ों की हानि हो जाती है। और यदि वर्षा ठीक से हो जाए तो करोड़ों का ऐश्वर्य भगवान दे देता है। मंत्र कहता है "ध्यायती आपः ध्यायती पृथ्वीः" यह पृथ्वी भी ध्यान कर रही है यह जल भी ध्यान कर रहा है। यह पर्वत भी ध्यान कर रहे हैं यह विशाल पर्वत दीवार की तरह हमारी रक्षा करते हैं। यह सब उस परमात्मा की विशाल महिमा है। सोचो तो इतनी मिट्टी कहां से उठाकर ले आया है।

हे नारद यह देव यह मनुष्य अपने ज्ञान एवं गुणों से उस परमात्मा को महान समझ कर उस की महिमा का गान करते हैं। शान्ति धैर्य शम दम तितिक्षा मेधा यह सब देव गुण हैं। यह सब गुण आने पर ही मनुष्य आदर पाता है। पूज्य बनता है। "गुणः पूजास्थानं न च लिगं न च वयः।" समाज में आदर पाने के लिए गुण ही आवश्यक हैं। हमारी हिन्दू संस्कृति में इन्हीं गुणों की श्रेष्ठता है। मनुस्मृति में मनु महाराज कहते हैं। **"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥** (मनुस्मृति २।२०) एक समय था जब भिन्न २ देशों से लोग हमारे देश में शिक्षा लेने आते थे। अपनी २ रीति और परम्परा के अनुसार शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐसा इतिहासकारों का मत है कि अपने अज्ञात काल में ईसा भी भारत में रहे थे। इस लिए बाईबल में भी हिन्दू संस्कृति की छाप है। उपनिषद विद्या जीवन में महान शान्ति प्रदान करने वाली विद्या है। इस विद्या की सभी देशों के विद्वान भूरि २ प्रशंसा करते हैं। और कई विद्वानों ने इस विद्या का अन्य भाषाओं में अनुवाद किया है। दाराशिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद अर्बी फारसी भाषा में किया है। जो मनुष्य देव गुणोंवाले हुए उन में कारण ध्यान ही है। इस ध्यान का जीवन में बहुत महत्त्व है। चित्त की एकाग्रता ही ध्यान है। अपने स्वस्वरूप में चित्त की स्थिरता आवश्यक है। मन को शान्त करना ही परम धर्म है यही तप है और मन को चञ्चल बनाना ही पाप है। इस

व्यवहारिक जगत में मन में विक्षेप तो आएं गे और विक्षेप का कारण भी अपने प्रिय बन्धु ही हैं। बाहर से आने वाला तुम से क्या झगडा करेगा। जो हमेशा तुम्हारे साथ रह रहा है, तुम से प्यार कर रहा है झगडा भी वही करेगा। जीवन का असली भोजन तो प्यार है। पर भोजन भी चटनी अचार के साथ अधिक प्रिय हो जाता है। ऐसे ही यह कभी २ की नोंक झोंक चटनी समझो। चटनी खाने से भोजन पुन: स्वादिष्ट लगने लगता है। परन्तु ध्यान यह रहे कि "योग: कर्मसु कौशलम्" सांसारिक व्यवहार में रहते हुए भी मुमुक्षु मन को चंचल नहीं करे। मन की रक्षा करे। इस के लिए वाणी का मौन भी आवश्यक है।

योग शास्त्र में कहा है "**स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते**।। (श्री भगवान वादरायणकृत योग भाष्य स. पा. २८) स्वाध्याय प्रणवादिमंत्रणां जप: स्वाध्याय:। वेदादि शाखा का अध्ययन स्वाध्याय है। पितृ परम्परा प्राप्त वेद शाखा का अध्ययन कर के सम्पूर्ण वेदाध्ययन करने से ही पूरा पण्डित बनेगा अन्यथा काणा विद्वान ही रह जाएगा। जप करते २ थक जाए तो समाधि में चला जाए और जब समाधि से थक जाए तो पुन: जप करने लगे। जब जप और ध्यान एक हो जाता है तो परमात्मा का प्रकाश होगा। हां व्यवहारिक जगत में रहने वाले मुमुक्षु सदा तो ऐसा कर नहीं सकते परन्तु समय पर अवश्य जप ध्यान करता रहे। भगवद् दर्शन भी ध्यान से ही होगा। यहां आध्यत्मिक जीवन में श्रद्धा आवश्यक है। यहां राग नहीं है। श्रद्धा पूर्वक ज्ञान ही तत्त्व की ओर ले जाएगा। लोक जीवन में भी जो खट्टा मीठा स्वाद आरहा है वह भी ज्ञान से ही आता है। जीवन में से यदि ज्ञान निकल जाए तो बाकी क्या बचेगा? यह ज्ञान तुम्हारे जीवन का सम्राट् है। इसज्ञान का परम स्वरूप आत्मा है और गौण स्वरूप बुद्धि है। मोक्ष ज्ञान दिव्य ज्ञान है। "**श्रुति कहती है मनोमय: प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय, तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति**" (मुंडकोप० २।२।७) मन को पकडा तो जीव बनगया। इस शरीर का और इन इन्द्रियों का नेता प्राण है। यह प्राण ही जीव को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है। क्रिया शक्ति में प्राण ही प्रधान है। प्राण से ऊपर मन है और मन के ऊपर बुद्धि है जो बुद्धि के अधीन रहे वह सामान्य प्राणी हैं और जिस के

अधीन बुद्धि हो, जो अपनी बुद्धि का अनुशासन करे, वह धीर है। संसारी पुरूष भी दो प्रकार के देखने में आते है। एक जो अपनी पत्नी की Yes में Yes ही करता है और दूसरा हमेशा no ही करता है। तो दूसरे घरवाली उसकी बात ध्यान से नहीं सुनेगी क्यों कि वह जानती है कि इस ने तो न ही करनी है। ऐसे ही इस बुद्धि को अपनी घर वाली समझो। बुद्धिमान बुद्धि को अपने अधीन रखे तभी धीर बनेगा। मुमुक्षु नियम से जप ध्यान करता रहे। जो जप ध्यान नहीं करता उस की बुद्धि सदा भोगों में ही लगी रहती है। वह अल्प बुद्धि है।

एक सन्त के पास दो नव युवक आए और बोले महाराज हम को चेला बना लीजिए। गुरु जी ने दोनों को एक २ कागज की चिडिया दी और कहा कि ऐसे स्थान पर जा कर इन को नोच कर ले आओ जहां तुम्हे कोई देख न सके। दोनों गये। एक ने तो कुटिया के पीछे जा कर उस चिडियां को नोच डाला इधर उधर देखा कोई देखने वाला नहीं था। बस नोच कर आ गया। दूसरा बेचारा सारा दिन इधर उधर घूमता रहा और सायंकाल को वैसा ही चिडिया लौटा कर ले आया और बोला कि मैं जहां भी गया वहां परमात्मा मुझे देखता रहा। इस लिए मैं इसे नोच नहीं सका। तो सन्त किस को चेला बनाने के योग्य समझेंगे ? जो सब जगत उस परमात्मा की सत्ता को देख रहा है। ध्यान रखो वह अन्तर्यामी तुम्हें सब जगह देख रहा है। मुमुक्षु ऐसी व्यापक सत्ता में पहुच जाता है। उस व्यापक सत्ता में जब तुम्हारा मन स्थिर हो जाएगा तो तुम्हारा ध्यान परिपक्व हो जाएगा। ज्ञान ही वह व्यापक सत्ता है। यही वह तत्त्व है। जहां जा कर फिर लौटना नहीं होता। भगवान ने इसी को कहा है "तद्धाम परमं मम"

'अल्पा' माने अल्प बुद्धि, 'पिशुना' चुगल खोर 'कलही' माने कलहप्रिय। जो इन विकारों को पकडे रहता है वह मुमुक्षु नहीं बन सकता। जो इन चित्त के विकारों से ऊपर उठ जाता है वह ध्यान के द्वारा उस परम तत्त्व को पा जाता हैं। उस परमात्मा में पहुंच जाता हैं। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद "यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति" जो इस ध्यान की ब्रह्मरूप से उपासना करता हैं वह जहां तक ध्यान की गति है, वहां तक, उन २ लोकों में, स्वेच्छा से पहुंच जाता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. २९

१८-५-८५

"ॐ स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वावभूयोऽस्तीति भगवान्ब्रवीत्विति (छान्दो. ७।६।२) "विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयो" ॥

(छान्दो ७।७।१)

विचार चल रहा है कि इस बुद्धिमान मनुष्यको ध्यान किस प्रकार करना चाहिए। इस बातका पहले विचार कर के आए है कि जगत के जितने भी पदार्थ हैं यह सब रस से परिपूर्ण है। इस से ईन में राग होता है। इस लिए इन में आनन्द आता है। जैसे चुम्बक लोहेको खींच लेता है ऐसे ही यह राग मनुष्य को खींच लेता है। पहले सोचो इस जगत को परमात्म ने कितना सरल बनाया है। कितना सुन्दर बनाया है। वह परमात्मा ही इस रूप हो कर इस में व्याप्त रहा है। (श्रुति है **"रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो नस्यात्** (तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली २।७) रस रूपी राग के बिना भला इस जगत में कौन आनन्द में रहेगा कौन इस प्राण को पकड़ कर चलेगा ? यह रस ही है। इस रस रूप राग से ही बेटा बेटी पति पत्नी सब प्रिया हैं। जहां राग होता है वहां मन स्वभाव से ही आकृष्ट होता है। पर जिसको किसि ने देखा नहीं ऐसी आत्मा की ओर मन कैसे जाएगा ? तो सोचो कि इस आत्मा को किसीने देखा नहीं पर इस के बिना कुछ दीखता भी नहीं वह अन्तरात्मा है आंख सब को दीखती है पर किस की सत्ता से देखती है ? यदि वह देखने वाला

अन्दर न हो तो आंख किस को देखेगी ? ऐसी है वो तुम्हारी आत्मा। तो मुमुक्षु विवेकशील होता है और पूर्व जन्म का कोई बड़ा पुण्य संस्कार उदय होता है तो मन इस आत्मा की ओर जाता है ।

एक पुण्य तो भोग देने वाला होता है जो तुम्हें इस जगत के भोग दे सकता है। डांस डिनर कल्ब दे सकता है। पर महान पुण्य तुम्हें आत्मा की ओर ले जाएगा। सत्य के प्रति तुम्हारी श्रद्धा जाग्रत करेगा। सत्य के प्रति विश्वास का नाम ही श्रद्धा है। किसी महान ब्रह्म वेत्ता की कृपा से तुम्हें इस सत्य आत्मा की ओर जाने का मार्ग मिलेगा। इस स्थिति को लाने के लिए ध्यान जरूरी है। चित्त की तन्मयता ही ध्यान है। ध्येयाकार वृति हो जाने से मन में शंका नहीं होगी। भ्रम नहीं होगा। विपरीत ज्ञान नहीं होगा। विपरीत ज्ञान माने हो कुछ और दिखाई कुछ और दे। अनात्मा में आत्मा दर्शक ही विपरीत ज्ञान है। भगवान सनत्कुमार में प्रमाद नहीं है। वक्ता में प्रमाद नहीं है। वक्ता में प्रमाद नहीं होना चाहिए। उस में लोभादि विकार नहीं होना चाहिए। उस में आत्मभाव ही होना चाहिए। एक जगह से वही परमात्मा बोल रहा है वही दूसरी जगह से सुन रहा है। यहां वक्ता महान ऋषि सनत्कुमार हैं। उन में आलस्य प्रमादादि दोष नहीं है। इस लिए वह बार २ नारद ऋषि को समझा रहे हैं कि यह ज्ञान ही हमारे जीवनका सार है। यह ज्ञान जब हमारे चित्त को छोड देगा तो यह शरीर गिर जाएगा। जैसे सेठ जब तक घर के अन्दर बैठा है सब नोकर चाकर सतर्क रहते हैं, काम में लगे रहते है। पर यदि सेठ कहीं बाहर चला जाता है तो सब नौकर इधर उधर बैठ जाते हैं। ऐसे ही यहां भी है। जब तक यह तुम्हारी आत्मा, सेठ, अन्दर है तब तक सभी नौकर, यह इन्द्रियं गण क्रियाशील रहते है परन्तु यदि यह बेहोश हो जाए तो यह इन्द्रियां, यह मन कुछ नहीं करेंगे। बंगला सुनसान हो जाएगा। यह आत्मा स्वयं कुछ नहीं करता परन्तु उस की सत्ता में उस के दास सब काम ठीक से करते है। इतिहास साक्षी है कहा जाता है कि जब लखनऊ उपर अंग्रेजो का हमला हुआ था, महल पर हमला होते ही सब नौकर भाग गये पर एक नौकर नवाब को जुता पहनाने लगा क्यों कि नवाब भी भागना चाहता था। अभी एक ही जूता पहनाया था

कि अंग्रेज वहां पहुंच गये। नौकर भाग गया पर नवाब पकडा गया। वह भाग नहीं सका क्यों कि जूता स्वयं नहीं पहना सकता था और विना जूते के भाग नहीं सकता था। इस लिए पकड में आ गया। सोचों कितना सुकुमार था। यह आत्मा सुकुमारों का भी सुकुमार है यह स्वयं कुछ नहीं करता। "सुकुमारानाम् सुकुमारं" यह आत्मा है। इस आत्मा का ज्ञान नही विज्ञान है।

संसार के विषयों का ज्ञान है और इस आत्मा का ज्ञान विज्ञान है। ज्ञान से शोक मोह राग द्वेषादि विकार चित्त में आते हैं। यह विषय ज्ञान शोक मोह की Factory है। महान वेदादि शास्त्रो का प्रकाश करने वाला विज्ञान है। विज्ञान के विना अर्थ वोध हो नहीं सकता। शास्त्रो का ज्ञान विशुद्ध ज्ञान है। भ्रम रहित ज्ञान है। इस लिए विज्ञान कहा है। विज्ञान कर्म के स्वरूप को समझाता है। जीवों के नाना कर्मो का बोध विज्ञान के द्वारा ही होता है। मान लो कोई बीमार पडा है। डाक्टर ने अच्छी तरह से देखा रोग को पहचाना, और दवाई दी। हर लोग वह रोग नही देख सकते। डाक्टर की इस सम्बन्ध मे जो विद्या है वह तीसरी नेत्र ही समझो। हम लोग दो आंख से देख रहे हें पर डाक्टरी का विज्ञान विशेष ज्ञान है मानो तीसरा नेत्र है। जो इस जगत को इन दो ही आखो से देखेगा वह तो इस का बाह्य रूप सौदर्य ही देखेगा तब शोक मोहका गठ्ठर ही बांध कर ले आए गा। दो आंख से तो पशु भी देखता है। मनुष्य भी यदि दो आखों से ही देखेगा तो उसका यह ज्ञान पशु तुल्य ही होगा। यह तो पशुभूमि ही है। **"दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभि"** सूक्ष्माति सूक्ष्म बुद्धि ही तीसरा नेत्र है। यही इस आत्मा के ज्ञान को प्रकट करे गी। श्रुति कहती है **"विज्ञानं चेद् वेद तस्माच् चेन्न प्रमादयति"**

सब देवता इस विज्ञान की उपासना करते है। यह विज्ञान ही ज्येष्ठ है यही श्रेष्ठ है। इन सब देही देवताओं से पहले विज्ञान आया। अपने शरीर से ही समझो। बच्चा मां के शरीर से प्रगट तो हुआ पर बेहोश है तो क्या करो गे ? बिना ज्ञान के कौन वेटा कौन बेटी ? वेटा देटी तभी प्रिय हैं जब ज्ञान है यह ज्ञान ही तुम्हारा जीवन है। इस ज्ञान की रक्षा करना ही धर्म है। ज्ञान को ठीक न पकडने के कारण कई प्रकार के रोग भी तुम्हे आकर घेर लेते हैं।

गीता में भगवान कहते हैं "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" जो श्रद्धाशील होते हैं वही ज्ञान प्राप्त करते हैं। "विज्ञानं ब्रह्मचेदस्मान् न प्रमादयति" मुमुक्षु ज्ञान को ग्रहण करने में तत्पर रहे। इस में प्रमाद नहीं करना चाहिए। मंत्र आगे कहता है "शरीरे सर्वपाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुते" जितने भी हमारे कर्म हैं धर्माधर्मादि यही सुख दुख के हेतु हैं। यह शरीर दुखों का आयतन है। इस लिए मुमुक्षु इस शरीराहंकार को दूर करे down करे। पुण्य तो स्वर्ग में जाकर कहीं सुख देता है परन्तु पाप तो यहीं से दुख देना शुरू कर देता है। बहुधा मनुष्य अपनी हीनता को, अपनी कमी को छुपाने के लिए ईर्ष्या का शिकार बन जाते हैं। कहते हैं "परसम्पत्युत्कर्षोहि हीनसम्पदं पुरूषं दुःखा करोति।" आजका यह मनुष्य ज्ञान तो प्राप्त करना चाहता नहीं बस दूसरों की निन्दा करता रहता है और ईर्ष्या द्वेष में फंस जाता है। पहले तो यह ही धर्माधर्म का फल है। यदि शरीर अच्छा है, सुन्दर सुडौल है, नीरोग है तो समझो यह हमारे पुण्य कर्म का ही फल हैं। निमित्त जैसा होगा कर्म भी वैसा ही होगा। निमित्त ठीक होगा तो कर्म ठीक होगा। यह शरीर ही पाप पुण्य को नष्ट करने का भी साधन है और पाप पुण्य को बढाने का भी साधन यही है। बुद्धिमान अपने शरीर की रक्षा भी करे। यह शरीर तुम्हारा नौकर है। इसे अपना नौकर समझो। नौकर को जब तक खाना दाना अच्छा मिलता है वह अपने मालिक को शीघ्र छोड कर नहीं जाता। लोक परलोक का साधन यह शरीर है और मोक्ष का साधन भी यह शरीर ही है "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" जैसे घोडे की जितनी सेवा करोगे उतना ही आराम वह तुम्हें देगा। परन्तु यह ध्यान रखो कि केवल घोडे की सेवा ही करते रहो मालिस पालिस करते रहो पर उस पर कभी सवारी करो ही नहीं तो वह अडियल टट्टू हो जाता है। इस के खाने दाने का भी ध्यान रखो परन्तु लक्ष्य आत्मा का बोध करना है। यह कभी मत भूलो। सदा ध्यान रखो कि मन को आत्मा की ओर कैसे लगाना है। **"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।"** (मुंडकोपनिषद् खंड २।२।४)

मंत्र स्पष्ट करता है कि जीव का लक्ष्य क्या है? लक्ष्य ब्रह्म हैं। ओंकार धनुष है अहमास्पद आत्मा ही शर है और इस का लक्ष्य ब्रह्म हैं। मुमुक्षु प्रमाद

रहित होकर ब्रह्मानुसंधान करता रहे। जैसे चांदमारी में सिपाही कितनी गोलियां वेकार करता है। परन्तु मोर्चे पर सही चलायी गयी गोली सार्थक तभी होती है जब पहले वह चांदमारी में निशाना लगाना सीख लेता है। इसी प्रकार यहां भी है। मुमुक्षु ब्रह्माकार वृत्ति को जाग्रत करता रहे। उपकथा आती है कौरव पांडव गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखते हैं। सब राजकुमार हैं। राजा बनने वाले हैं। गुरु ने सब राज कुमारों को अच्छी प्रकार से एक साथ ही धनुर्विद्या की परीक्षा देनी होगी। घोषणा कर दी गई। मंच तैयार हो गया। सभी नागरिक देखने के लिए एकत्रित हो गये। सभी राज कुमार भी पूरी तरह से तैयार हो कर ठीक समय पर उपस्थित हो गये। गुरु ने लक्ष्य बता दिया। सामने पेड पर बैठी चिडिया की दक्षिण आंख वेधनी है। पर पहले गुरु के प्रश्नो का उत्तर देना आवश्यक था। सब से पहले युधिष्ठर आए। पूछा गया कि तुम्हें सामने क्या दिखाई दे रहा है। युधिष्ठर ने कहा सब कुछ दीख रहा है। पेड दीख रहा है, शाखा पर बैठी दुई चिडिया और चिडिया की दक्षिण आंख। गुरु ने कहा कि तुम लक्ष्यानुसंधान नहीं कर सकते। युधिष्ठर असफल हुए। दुर्योधन आया। उस से भी यही पूछा और उस का उत्तर भी वही था। सब कुछ दीख रहा है। अर्जुन की बारी आई उस से पूछा उस ने कहा मुझे केवल चिडिया की दाहिनी आँख ही दिखाई दे रही है। और कुछ भी मेरी दृष्टि में नही आ रहा। अर्जुन नम्र भी था और चतुर भी। उस के उत्तर से ही गुरु द्रोणाचार्य प्रसन्न हो गये। बोले निशाना साधो। अर्जुन ने वाण चलाया और सफल हो गया। कहने का तात्पर्य्य यह है कि जब दृष्टि केवल लक्ष्य की ओर ही हो तभी सफलता मिलती है। ध्येयाकार वृत्ति ही अपने ध्येय में लीन हो सकती है।

आभास अपने स्वरूप में जब लीन हो जाएगा। अविद्या सहित साभास बुद्धि साक्षी आत्मा में लीन हो जाएगी, तो शरीराध्यास नहीं रहेगा। शरीर अध्यास न रहने के कारण बाहरी शोक मोह संतप्त नहीं करेंगे। जैसे सूर्य के सामने बैटरी का प्रकाश कुछ काम नहीं करता। बैटरी का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है। ऐसे ही ब्रह्माकार वृत्ति अपने लक्ष्य में लीन हो जाती है। बुद्धिमान मुमुक्षु "ब्रह्माहमस्मि" दृढता से ब्रह्माकार वृत्ति को जाग्रत करता रहे। वृत्ति को ध्येयाकार करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए। जैसे सोने से पहले कमरे की सब वस्तुएं दिखती हैं। पर जब बुद्धि अविद्या में लीन होने लगती है तो सब दिखना बन्द हो जाता है। होश से निद्रा में जाओगे तो यह निद्रा भी तुम्हें जीवन देगी। नहीं तो वेहोशी की दशा में तुम्हें कुछ भी नहीं

मिलेगा। यहाँ महर्षि सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस विज्ञान को ब्रह्म समझो। इस में प्रमाद नहीं करो। इस विज्ञान की कृपा से ही ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद विद्या का ज्ञान होता है। इन सब विद्याओं की व्याख्या पहले कर आए हैं।

नारद ने चौंसठ प्रकार की विद्याओं की list पहले ही दी थी। नारद भी महर्षि है। इन सब विद्याओं को जानने पर भी शोक संतप्त है। रोकर बडी श्रद्धापूर्वक भगवान सनत्कुमार से प्रार्थना करते हैं कि मैंने सुना है "तरति शोक-म् आत्मवित्" आत्मवेता शोक से पार हो जाता है। मेरे अन्दर अभी तक शोक मोह बैठे हैं। भगवान मुझे ऐसा उपदेश कीजिए जिस से मैं शोक समुद्र से पार हो जाऊँ। भगवान सनत्कुमार ने कहा हे नारद यह ज्ञान हमारे जीवन का नेता है। नेता ठीक होगा तो जीवन ठीक चलेगा। तुम ने सब विद्याओं का ज्ञान तो प्राप्त किया है। परन्तु विज्ञान अभी तक नही प्राप्त किया। इस लिए पहले ज्ञान को शुद्ध करो। इस ज्ञान को विज्ञान में मिलाओ। फिर इस विज्ञान को ब्रह्म जान कर इस की उपासना करो। बेहोशी की स्थिति में देखो जब हम को ज्ञान नहीं रहता तो हमारे इतने बडे मुंह से एक दाना भी कोई नहीं दे सकता। यह तो जिस का मुंह है उस की कृपा होगी जब वह स्वयं ही मुंह खोलेगा तभी खुलेगा। यह ज्ञान ही इस मुंह को खोल सकता है। हां डाक्टर घर की दीवार तोड कर भले ही कुछ दाना पानी सप्लाई कर दे परन्तु मुंह से कुछ भी अन्दर नहीं जा सकता। तो सोचो तुम्हें कौन खिला पिला रहा है।

हिन्दु दर्शन का खेल ही निराला है। एक शब्द "प्रज्ञानं ब्रह्म" विश्व के इतिहास में कहीं नहीं मिलेगा। तृण वनस्पति, पशु पक्षी, कीट पतङ्ग, साधु असाधु, शत्रु मित्र, अन्न रस सब का ज्ञान इस विज्ञान से ही प्रगट हो रहा है। अन्न वह है जिस को सब भूत खाते हैं। "अद्यते अत्ति च भूतानि तदन्नम्" परन्तु अन्न को भी यदि ज्ञान पूर्वक नहीं खाओगे तो यह अन्न ही तुम्हें खा जाएगा। एक महात्मा को खीर बहुत पसन्द थी। एक दिन भण्डारे में खीर बनी। महात्मा ने खूब खाई इतनी खाई कि रात्रि भर बस भागना पडा। भोक्ता की शक्ति के अनुसार अन्न भी शक्ति देता है। भोक्ता बलवान होगा तो भोग भी बल देगा। अन्यथा वह बल को खा जाएगा। इस प्रकार ज्ञान की महिमा है। जीवन में इस विज्ञान की ब्रह्मरूप से उपासना करो। जो विज्ञान की ब्रह्मरूप मे उपासना करेगा। शास्त्र के अर्थ का ज्ञान ही विज्ञान है इस विज्ञान की ब्रह्मरूप से उपासना करने वाला उन लोकों में "कामचारो भवति" स्वेच्छाचारी हो जाता है जहां तक विज्ञान की पहुंच है।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ३०

१६।५।८५

"ॐ बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बल-वानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परि-चरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवति"

(छन्दो ७।८।१)

विचार चल रहा है कि मनुष्य प्राणी के जीवन में ध्यान होना चाहिए **"ध्यानेन सर्वमाप्नोति"** ध्यान से ही सर्व सिद्धि है। ध्यान से ऊपर ज्ञान है। ज्ञान दो प्रकारका होता है। स्वरूप ज्ञान और वृत्ति ज्ञान। स्वरूप ज्ञान तो ब्रह्म स्वरूप ही है। जीवन में सीधा समझो कि तुम ज्ञान से कब दूर हुए हो। जीवन में तुम्हे तीन अवस्थाओं का अनुभव प्रतिदिन होता है। जाग्रत में अहं का ज्ञान रहता है तभी मम का ज्ञान होता है। स्वप्न में भी अहं और मम का ज्ञान होता है। सुषुप्ति में अहं का ज्ञान तो रहता है परन्तु वहां मम का ज्ञान नहीं है ममता का कारण मन वहां तामसी निद्रा में लीन हो जाता है। वहां जब तक जीव सुषुप्ति में रहता है विलक्षण आनन्द में रहता है। जाग्रत में आने पर कहता है बडे मजे से सोये, कुछ नही जाना। पर यह कुछ नहीं जाना जो कह रहा है वह ज्ञान से कह रहा है या अज्ञान से, कुछ नहीं जानना भी ज्ञान से ही है। जैसे पोलिटिशियन (राजनीतिज्ञ) कभी ऐसा नहीं कहते कि तुम्हारी बात गलत है। कहते हैं अभी ठीक से समझ में नहीं आई फिर वात करेगें। विरोध तो राष्ट्रो में होता है, व्यक्तिगत मत भेद तो होता

नहीं। इसलिए वह ऐसा कह देते हैं। यह समझ में नहीं आना जो बोलना है यह भी समझ कर ही बोलना है।

वेदोंका सिद्धान्त "विज्ञानं ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" कोई कल्पित विचार नहीं। यह ब्रह्मका साक्षात् ज्ञान है। परन्तु इस के मार्ग में जो विरोधी खडे हैं यह शरीर मन और इन्द्रियों हैं। मन इन्द्रियों का नेता है। यह सब जीव को कहते हैं कि आनन्द वन में घूमो। यह संसार माया का आनन्दवन है। इस के कई विभाग हैं। कही रूप वन, कही रस वन, कहीं गन्ध वन, कहीं शब्द वन और कहीं स्पर्श वन। बस यह जीव इसी में भटकते भटकते जीवन का बडा सुन्दर हिस्सा पार कर देता है। यह तो भाग्य से कोई ब्रह्म वेत्ता की शरण प्राप्त हो जाए तो मुमुक्षु इस वन से पार हो जाता है। **"य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते"** (कठोपनिषद् अ. २।२।८) शरीर इन्द्रियां सो गई तो शोक मोह नहीं होगा। स्वप्न मे सूक्ष्म संस्कार सम्वन्धी राग होता है। इस से शोक मोह होता है। स्वप्नावस्था में कहीं बार नहीं जाता परन्तु क्षण मात्र में इंग्लैंड अमेरिका घुमने लगता है। स्वप्न की सारी सृष्टि स्वप्न दृष्टि अपने भीतर ही करता है। यदि यह मान लिया जाए कि मन वहां चला जाता है तो यह सम्भव नहीं क्यों कि स्वप्न का काल इतना लम्बा नहीं होता। तत्काल किसीने जगा दिया तो वहीं अपने विस्तर पर ही उठेगा जहां सोया था स्वप्न में वह स्वप्नद्रष्टा जिस देश मे गया वहां मित्र से भी मिला, बात चीत भी किया, पर मित्र को ऐसा अनुभव नहीं होता। स्वप्न का मित्र हमारी कल्पना का मित्र है, जगत का मित्र नहीं। उस की छाया तुम्हारी कल्पना में है वही मित्र उन उन देशों में मिलते है। स्वप्नद्रष्टा अपनी कल्पना अपने संस्कारो के अनुरूप ही उन में रमण करता है। वास्तव में तुम्हारी यह आत्मा ही अमृत है। अमृत में अ निकाल दो तो शेष क्या बचेगा ? मृत माने मुर्दा। देखो जिस की छाया में मुर्दे इतने प्यार लगते हैं, मुर्दे खीर खा रहे हैं वह कितना शक्तिशाली होगा इस आत्मा से मिलकर यह मुर्दा शरीर भी अमृत हो रहा है।

ब्रह्म के आश्रय में ही सब लोक जी रहे है। लोक का अर्थ शरीर है "लोक्यते भुज्यते इति लोकः" जिस मे रह कर जीव अपने कर्मो का फल भोगता है वही लोक है। जैसे २ ज्ञान का उत्कर्ष होता है वैसे २ बुद्धि ब्रह्म की ओर चलेगी। ब्राह्मी गति होगी। विवेक और वैराग्य के द्वारा बुद्धि का सात्विक रूप प्रगट होगा तब इस में वृत्ति रूप ज्ञान प्रगट होगा। यह सात्त्विक बुद्धि की ज्ञान रूप वृत्ति ही आत्मभाव को ग्रहण करेगी। भगवान कृष्ण गीता में स्पष्ट करते हैं **"सात्त्वात्संजायते ज्ञानम्"** (गीता अ. १४/६) सत्वगुण की वृद्धि से ही ज्ञान प्रगट होता है। **तत्र सात्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकम नामयम्, सुखसङ्गेनवध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।"** (गीता अ. १४/६) "तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते" जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तब शरीर इतना हल्का हो जाता है कि चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। मन शान्त प्रसन्न होता है। बुद्धि निर्मल हो जाती है। निर्मल माने मल रहित, विकार रहित। यह निर्मल बुद्धि ही ज्ञान को प्रगट करती है। इस लिए मुमुक्षु बुद्धि को सत्विक बनाए। एक बात और ध्यान में रखो जब वृत्ति सात्त्विक होती है तो इस में दया, स्नेह क्षमा, धृति मेधा आदि सुन्दर गुण आते हैं। यहां भी मुमुक्षु को बड़ा सावधान रहने की जरूरत है क्यों कि कभी २ यह गुण भी बन्धन का कारण बन जाते हैं। श्री मद् भागवत में भरत का उपाख्यान इस का बडा उदाहरण है।

ऋषभ देव के सौ पुत्र थे। सब से बडा भरत था। ऋषभ देव अपने बेटों को ज्ञान देते रहते है। कहते हैं यह शरीर भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए है। भोग के लिए नहीं मिला। गुरु माता पिता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने शिष्यों को अपनी सन्तान को समझाते रहें। कहते हैं **गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्यात् जननी न सा स्यात् दैवं स स्यात् पतिश्च न स स्यात् न मोचयेत् य समुपेतमृत्युम्।** (श्री मद भागवतपञ्चमस्कन्धे अ. ५/१८) वह गुरु किसी काम का नहीं जो अपने शिष्य को मृत्यु के भय से मुक्त नहीं करे। वह स्वजन प्रियबन्धु नहीं जो अपने प्रिय को मृत्यु के भय से मुक्त नहीं करें। यह माता पिता किस काम के जो अपने बच्चों को अच्छा चरित्र नहीं दे। जो भोग दे

कर चला जाए वह पिता नहीं । यह फिल्मी जगत का ज्ञान भोगों की अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है। भोगो का ज्ञान तो आजकल घर मे ही बहुत मिल जाता है। परन्तु धर्म के विषय में कहीं चर्चा ही नहीं होती। विद्यालयों में भी कोई संस्कार नहीं मिलते। गांधी नेहरु आदि महान नेताओं ने धर्म की शिक्षा भी विद्यालयों में ही प्राप्त की थी। नेहरु जी ने अपनी पुस्तक "Discovery of India" में मूल हिन्दु जाति के महान संस्कार दिए हैं। आज के बच्चों के लिए सब से वडी कमी यही है कि उन्हे अपने धर्म अपने जाति के प्रति कोई संस्कार नहीं मिल पाते । यहां तक कि उन्हे स्वयं अपने जीवन के वारे में इस आत्मा के विषय मे अपने Self के विषय में, कोई विचार नहीं।

ऋषभ देव कहते है कि बडे से बडा धनी भी होगा तो उस का धन उस की सम्पत्ति कव तक है जब तक आंख खुली है तभी तक का यह ऐश्वर्य है। ५० वर्ष की आयु तक मनुष्य प्रगति करना है, आगे बढता हुआ ऊपर उठता हुवा दीखता है परन्तु बाद मे क्या होता है वाद में तो तुम दो रोटी भी ठीक से नही खा सकते। ब्लड प्रेसर, हार्ट अटैक डायवटीज वड़े २ पहलवान आकर घेर लेते है। यह संसार वडा विचित्र है। ऐश्वर्य भी वही धर्म रूप है जिस से कुछ धर्म कार्य हो। आत्मा के लिए कुछ भला न हो तो वह भाग्य भी व्यर्थ है। परिवार का भला केवल भोग इकट्टा करने से नहीं होगा। जिस से आत्मा परमात्मा का बोध हो ऐसा विचार बोध को उत्तराधिकार मे देना चाहिए। मंत्र आगे कहता है वह पति पति नहीं। पति माने पालयति, पाति इति पति जो पालन पोषण करे, रक्षा करे वह पति। पति भी वही है जो पत्नी को मोक्ष मार्ग की ओर ले जावे। वैदिक विवाह प्रद्धति वैज्ञानिक पद्धति है। यह प्रकृति और पुरूष की शादी है। लड़की प्रकृति का रूप है। उसमे जगतको फैलाने की शक्ति है। पुरुष में पालन की शक्ति है। विवाह के समय सप्तपदी होती है। पहले तीन फेरे में लडकी आगे रहती है। इस का तात्पर्य यह होता है कि तीन परिक्रमा तक वह स्वतन्त्र होती है। चाहे वह भाग भी सकती है। चौथे फेरें में

पुरुष को आगे कर दिया जाता है माने अब पुरुष अधिष्ठान रूप में आगे आ गया। अब वह लड़की जीवन भर साथ रहने को बाध्य हो जाती है। अपने को उस विराट पुरुष विराट प्रकृति के भाव में ले आयो। इस प्रकार हिन्दु विवाह पद्धति में एक वैज्ञानिक संकेत है। भोग तो अपने आप मिल रहा है।

कहते हैं पति भी वही है जो पत्नी को मोक्ष की ओर ले जाए। ऐसे जीवन को बड़ी सावधानी से आगे बढाना चाहिए। ऋषम देव अपने पुत्र को उपदेश दे कर बानप्रस्थ आश्रम में चले गये। भरत बन जाता है। समय पाकर भरत भी गण्डकी नदी के किनारे तपस्या करने चले जाते हैं। एक दिन एक हिरणी भागती हुई आती है। उस के पिछे शेर पड़ा हुआ होता है। हिरणी भय के मारे नदी में कूद जाती है। नदी की बाढ में हिरणी तो बह जाती है परन्तु उसका बच्चा गर्भ से गिर कर पानी की लहरों पर तैरने लगता है। भरत उसे देखे रहे हें। मन मे दया आई और उस सुकुमार वच्चे को उठा लिया कुटिया में ले आते हैं। बड़े प्यार मे उस का पालन पोषण करने लगते हैं। धीरे २ वह बच्चा बड़ा होने लगता हैं। कुटिया के आगे पिछे खेलता है। भरत का मन उस में रम जाता हैं। ध्यान में बैठता है तो वह गोदी में बैठ जाता है। उस का कोमल २ स्पर्श भरत को वडा सुखदायी लगता है। यह स्पर्श सुख सब सुखो का राजा है। तो कथा तो आप लोग जानते ही हैं। एक हीरण के बच्चे के मोह में महान तपस्वी भरत को हिरण की योनि में जाना पड़ता है। गीता में भगवान कहते हैं **यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् तं तमेवैति कौन्तेय''** (गीता अ. ८।६) हे कौन्तेय यह मनुष्य जिस जिस भाव का स्मरण करता हुवा देहत्याग करता है उसी योनि को प्राप्त होता है। भरत हिरण के ध्यान में ही शरीर छोडता हैं अतः उन्हे हिरण योनि में जाना पडता है।

इस लिए कहा है कि सत्त्व गुण दया का कारण बनता है और दया फिर बन्धन का कारण बन जाती है। भरत की कथा इस का ज्वलन्त उदाहरण है। जगत में मृत्यु देवता एक ऐसा अतिथि है जो कभी भी और कहीं भी पहुंच जाता। इस लिए मुमुक्षु जीवन में हमेशा सावधान रहे। जो चल रहा है वह

तुम्हारा है। वर्तमान में अपना ध्यान ठीक रखो अपना ज्ञान ठीक रखो। गीता में ही आगे कहा है "**तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। मय्यर्पितमनोबुद्धिममिवैष्यस्यसंशयम् ।।**" (गीता अ. ८।७) भगवान सावधान करते हुए कहते हैं कि इस लिए सदा सर्वदा मेरा ध्यान करो। मन और बुद्धि मुझ में रख कर संसार का व्यवहार करो। "युध्य च" युद्ध करो माने संसार का व्यवहार करो। परन्तु मन सदा अपनी आत्मा में रखो। तुम्हारी आत्मा ही विश्वात्मा है।

हिन्दु संस्कृति में मूर्तिपूजा भी महान लक्ष्य की ओर ले जाने वाली है। यह सारा ब्राह्मण्ड ही भगवान का स्वरूप है परन्तु अल्प बुद्धि मुमुक्षु इस व्यापक भाव को शीघ्र पकड नहीं पाता इस लिए प्रतीक रूप में मूर्ति पूजा का विधान है। मूर्ति पूजा का उद्देश्य भी भगवद्भावना को बढाना है। परन्तु आज कल तो मूर्ति पूजा भी भोग का साधन बन गई है। असली भाव, असली तत्त्व से दूर हो गई है। दृष्टि अर्थ में ही रह गई। हजारों में कोई एक ही तत्त्व जिज्ञासु होता है। मुमुक्षु सत्य को स्वीकार करे। भरत ने हिरण के ध्यान में शरीर छोडा तो अगले जन्म में उसे हिरण बनना पडा। परन्तु ज्ञान ने यहां भी उसे नहीं छोडा। स्मृति हुई कि ओहो तू तो भटक गया। कहां से कहां आ गया। मोक्ष मार्ग तो छूट गया। बस उस ने हरा घास खाना छोड दिया जिस से शरीर शीघ्र छूट गया। फिर तीसरे जन्म में मनुष्य शरीर मिला। उच्च ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ। परन्तु ज्ञान, स्मृति वहां भी बनी रही। इस लिए सोचा कि अब मन को बाहर देना ही नहीं। जन्म लेते समय न रोया न बोला। इस संसार का नियम क्या है? रोते २ आओ और रोते २ जाओ। बीच में थोडा हंसो थोडा रोओ। खिचडी जीवन है। उसी कटोरी में सुख रखा है उसी में दुख रखा है। मिला कर खाते जाओ। बस यही जीवन है। १२ वर्ष में पिता ने उपनयन संस्कार भी करवा दिया। गुरु के पास पढने भेजा। छः महीने तक गुरू ने गायत्री मंत्र रटवाया परन्तु वह बोला ही नहीं। किसी के काम को ना नहीं करता क्यों कि ना तो वह करेगा जिसमे राग होगा या द्वेष होगा। इस मे तो राग द्वेष है ही नहीं। मातापिता की मृत्यु हो गई। भाइयों ने खेत में जाकर छोड दिया। बस वहीं पडा रहता।

मोटी बाजेर की रोटियां भाभियां दे देती थीं। पर तानें भी बहुत कसती थीं। पर यह तो मस्त था। भ्रष्ट योगी का जीवन था। जड भरत कहलाया।

इस प्रकार ऐसा समझो कि सत्त्व गुण भी यदि ज्ञान के नियन्त्रण में नहीं होगा तो वह भी बन्धन का कारण बन जाएगा। इस लिए जीवन में ज्ञान की ही महत्ता है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद जो इस विज्ञान की ब्रह्म रूप से उपासना करता है वह ऐसी योनि में जाता है जहां ज्ञान की महत्ता होती है। ज्ञान का अन्नक्षेत्र यह मानव शरीर ही है। इस लिए हे नारद तुम विज्ञान ब्रह्म की उपासना करो। यहां वक्ता और श्रोता दोनों में प्रमाद नहीं है। आलस्य नहीं है। श्रोता शंका रहित है प्रमाद रहित है इस लिए आगे २ प्रश्न करता जाता है। और भगवान सनत्कुमार उस का उत्तर देते जाते हैं। अब नारद पूछते हैं भगवान इस विज्ञान से उपर क्या है। भगवान सनत्कुमार बोले नारद आज तो समय हो गया है। कल तुम्हें समझाएंगे। अब सीधे हो के बैठो जोर से ओंकार बोलो, और ध्यान करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

२०।५।८५

प्रवचन सं. ३१

"ॐ बलंबाव..., बलेन वै पृथ्वी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति"।

(छान्दोग्यो. ७।८।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद शास्त्ररूपी विशाल जंगल में विद्वान शेर की तरह निशङ्क हो कर घूमता है। इस विज्ञान से ऊपर बल है। एक ओर

सैकडों विद्वान खडे करो और एक ओर एक लठ्ठमार को खडा कर दो तो सब विद्वान भाग खडे होंगे "एको बलवान् शतं कम्पयेत् ।" विद्वान अपने शरीर की ओर कम ध्यान देता है इस लिए वह शरीर से कमजोर ही रहता है । इस जगत में जीने के लिए लोकबल आवश्यक है धनबल, जनबल और अधिकारबल यह तीन लोकबल हैं । ज्ञानबल अध्यात्मबल है । शरीरबल भी चाहिए । इस शरीर की सारी क्रियाएं खाना पीना बोलना सब शरीरबल के अधीन हैं । इस लिए शरीरबल की भी रक्षा करनी चाहिए । क्यों कि यही सब क्रियाओं का साधन हैं । नये २ बेटा बेटी मानों खिलते हुए फूल जैसे हैं और बुढ्ढा बुढ्ढी झडते हुए गुलाब की तरह हैं । घर के एक कोने में खिसक जाते हैं । बडे शहरों में तो यह समस्या और भी अधिक होती है । दो Bedroom का घर हो और दोनों बेटों की शादी हो जाए तो बुढ्ढा बुढ्ढी बरांडे में ही गुटरगूं गुटरगूं करते रहेंगे । जैसे हाथ ढीले होते ही चूडी अपने आप खिसक जाती है ।

इस जगत का नियम है जिस के पास बल होगा वह आगे हो जाएगा । जिस के पास बल नहीं होगा वह पीछे हट जाएगा । इस लिए यह शरीरबल भी कम महत्त्व का नहीं । फिर भी मुमुक्षु अपने ज्ञानबल की अधिक रक्षा करता है । गीता में भगवान कहते हैं "**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्यकर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।**" युक्ति माने नियम तरीका । ठीक समय पर सोओ ठीक समय पर जागो, ठीक समय पर खाओ । सब व्यवहार युक्ति युक्त करो तो शरीर भी ठीक रहेगा और ज्ञान की भी रक्षा होगी । काम कोई भी छोटा नहीं होता बल्कि मनुष्य ही छोटा है । जो कर्म तुम्हें ऊपर उठाता है वह भला छोटा कैसे हो सकता है । इस लिए कर्म करने में संकोच मत करो । इस से शरीरबल बना रहेगा । शरीरबल भी जीवन के लिए आवश्यक है । यह मनुष्य का बच्चा अकेला नहीं रह सकता इस लिए इस को जनबल भी चाहिए । आज कल तो शासन का बल यह जनबल ही है । जिधर अधिक जन बल होगा प्रजातंत्र में तो वही सरकार बनेगी । आज कल सारे विश्व में प्रजातन्त्र की लहर चलरही है । इस में जनबल का महत्त्व और भी अधिक है । गवर्नमेंट वोटों से चलरही है । जहां राजतंत्र भी है वहां भी राजा केवल छाया मात्र है शासन की सत्ता तो वोटों में ही है । इस लिए जनबल का महत्त्व भी कम नहीं ।

हिन्दू जाति धीरे २ कम होती जारही है। यहूदी पारसी यह सब पहले हिन्दू ही थे। पर धार्मिक विचार के अभाव में सब अलग हो गई। हम भोगासक्त होते गये और जाति छिन्न भिन्न होती गई। जाति में संकीर्णता भी आती गई। विचारों की संकीर्णता भी हिन्दू जाति के लिए घातक रही। विद्वान कहते थे "**अंग वंग कलंगेषु सौराष्ट्रे मगधेषु च। यात्राम् विना गत्वा पुनः प्रायश्चित्तमर्हति**।। सोचो तो यह विद्वान कूप मंडूक हो गये। जिस देश के विद्वान अपने देश और जाति का विस्तार नहीं जानते वह जाति कम नहीं होगी तो क्या होगा। हिन्दू जाति का विस्तार कहां तक था? गान्धारी गान्धार देश की थी। यह काबुल कन्धार सब भारत के थे। जन बल की रक्षा भी आवश्यक है। जन बल से ही तुम्हारे हाथ में कुछ रहेगा। जैसे २ जाति कम होती गई देश सिकुडता गया। सत्ता दूसरों के हाथ में चली गई। बुद्धिमान जाति वह जो सौ दो सौ वर्ष आगे के जीवन की सोचे। सोचो भला जब तुम्हारी संख्या ही कम होती जाएगी तो कौन तुम्हें जीने देगा। हिन्दू जाति में यद्यपि बुद्धि की कमी अभी भी नहीं है परन्तु भोगासक्ति के कारण उस की यह प्रतिभा, भविष्य दर्शन की प्रतिभा, दब गई है। देश की रक्षा के लिए अपने जन बल की रक्षा करो। सत्ता जन बल की है। जहां सत्ता जाएगी लक्ष्मी भी वहीं जाएगी। सत्ता को विष्णु समझो। जहाँ विष्णु रहेंगे भगवती लक्ष्मी भी वहीं रहेंगी। इसी प्रकार अधिकार बल की रक्षा भी आवश्यक है।

इन तीनों बलों को बनाए रखने के लिए, इन की रक्षा के लिए ज्ञान बल, विद्याबल आवश्यक है। हिन्दु जाति विद्या में पीछे नहीं है। क्यों कि यह भूमि पहले से ही सुन्दर है यहां जो भी लगाओगे अच्छा फल देगी। भारत भूमि प्राचीन काल से ऋषियों की भूमि है। ज्ञान भूमि रही है। परन्तु भोग में आकर विद्या की विस्मृति हो गई है। भोग बल असुरबल है। "**बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्, धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ**" (गीता अ. ७।११) काम और राग से रहित जो बल है वह भगवान कहते हैं मैं हूं। अर्थात् भगवान उस बल का सहयोग करते हैं जो काम और राग रहित हो। काम और रागयुक्त बल ही असुरबल है। जो न तो प्राप्त है और न प्राप्त होने वाला है।

न वो पहले प्राप्त था । ऐसी बस्तु की इच्छा करना अन्धी कामेच्छा है । यह इच्छा आसुरी इच्छा है । यह देव इच्छा नहीं है । देवबल चाहे पहले हारता हुआ दीखता है परन्तु अन्तिम विजय देवबल की ही होती है । यद्यपि वस्तु नष्ट हो रही है पर मनुष्य क्या चाहता है ? कि यह सदा बनी रहे । यही राग है । इस शरीर में वल नाम की एक शक्ति है, सब चाहते हैं कि यह ऐसे ही सदा बनी रहे । जैसे शरीर में जवानी आती है तो कोई भी भगवान से यह प्रार्थना नहीं करता कि हे भगवान इसे ले लो । भोगासक्त तो क्या भक्त भी ऐसी इच्छा नहीं करता कि उस की जवानी चली जाए । परन्तु यह रहने वाली है क्या ? जब बचपन गया, कुमारावस्था गई तो यह युवावस्था कैसे रहेगी ? भगवान भी इस नियम को नहीं काट सकता क्यों कि यह उसकी भगवती का शाश्वत नियम है । किन्तु असुर इस में राग बांध कर बैठ जाता है । देव प्रकृति का पुरुष इस में निस्पृह हो जाता है । कौरव पांडव इस का उदाहरण है ।

महाभारत का युद्ध होने वाला था । अर्जुन और दुर्योधन दोनों भगवान कृष्ण के पास सहायता मांगने द्वारिका गये । दुर्योधन पहले पहुंच गया परन्तु अहंकारी होने के कारण कृष्ण के सिरहोन की ओर जा कर खडा हो गया । कृष्ण भी कम कौतुकी नहीं थे वे पहले ही समझ गये कि यह दोनो सहायता के लिए आए हैं तो आँख बन्द कर के सोने का बहाना बना लिया । तो दुर्योधन जाकर शिर की ओर खडा हो गया । अर्जुन बाद में पहुंचा और कृष्ण के पावं की ओर जाकर खडा हो गया । भक्त देहादिहंकार से आक्रान्त नहीं होता । आसुरी प्रकृति का जीवन ही देहाहंकार है । कृष्ण ने आँख खोली तो सामने अर्जुन दिखाई दिया । अभिवादन किया और आने का कारण पूछा । दुर्योधन झट बोल पडा कृष्ण पहले मैं आया हूं । कृष्ण ने कहा पर मैं ने तो पहले अर्जुन को देखा है । खैर कहो कैसे आना हुआ । दोनों ने बताया कि महाभारत का युद्ध होने वाला है । हम आप की सहायता प्राप्त करने के लिए आए हैं । समदर्शी को अपनी समदर्शिता की रक्षा करने में बडी कठिनाई पडती है । कृष्ण ने कुछ विचार कर कहा कि देखो एक ओर तो मेरी सारी सेना होगी और दूसरी ओर मैं अकेला रहूंगा । और मैं इस युद्ध में हथियार भी नहीं उठाऊंगा । अब तुम्हें जो चाहिए मांग लो तो सोचो आसुरी प्रकृति का ध्यान किधर जाएगा । दुर्योधन

ने सोचा कि अकेले कृष्ण से क्या होने वाला है इस लिए झट से बोला कि मुझे तो चतुरङ्गिणी सेना चाहिए । अर्जुन मन ही मन बडा प्रसन्न हुआ और बोला भगवन मुझे तो आप ही चाहिए । अर्जुन भक्त था । उस में विवेक था । इस प्रकार भगवान ने दोनों को संतुष्ट कर के भेजा । दुर्योधन बडी प्रसन्नता से सेना लेकर वापिस आ गया । परन्तु दैवी दृष्टि में जो बल है वह भगवद्बल है । वास्तविक बल तो भगवान ही हैं । अन्त में विजय देवबल की ही हुई ।

गृहस्थाश्रम में रहने वाले धर्मानुकूल आचरण करें । तुम नहीं छोडो गे तो भी विषय तुम्हें अवश्य छोड देंगे । अपने हाथ से दोगे तो उस वस्तुका पुण्य भी होगा और तुम्हें आनन्द भी होगा । पर यदि वस्तु स्वयं समाप्त हो जाएगी तो शोक ही होगा । भर्तृहरि कहते हैं "अवश्यं यातारश्चिरमुषित्वाऽपि विषयाः, वियोगे को भेदस्त्यज्यति न जनो यत्स्वयममून्, व्रजंतःस्वातन्त्र्यादतुल परिताःपाय मनसः, स्वयंत्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ।" (भर्तृहरि वैराग्य शतक । २६) देव प्रकृति परोपकार में खर्च करता है और असुर प्रकृति वाले का बल स्वयं ही नष्ट हो जाता है । मोह और प्यार तो शेर भी करता है । पशु भी अपने परिवार से मोह करता है । गिरनार में एक बार शेर देखने का अवसर मिला । सोमनाथ दर्शन कर के लौटे थे । साथ में कुछ भक्त थे । शेर देखने ले गये । देखा दो तीन बडे २ बब्बर शेर बडा परिवार आठ दश बच्चे थे । तीन चार महारानियां थी । उन के सामने शिकार रखा गया । शेर ने एक पंजा मारा वस वह पाडा बोलते हैं भैंस का बच्चा गिर गया । पर शेर थोडा सा उस का गर्म गर्म पानी पी कर पीछे हट गया । सब बच्चे आ गये और बडे प्यार से खाने लगे । महारानियां चुप चाप बैठी रहीं । जब शेर और बच्चे खा पीकर पीछे हट गये तो वह आगे आई । और वह भी बडे प्रेम से खाने लगी । हम ने सोचा देखो कितनी व्यवस्था है इन में भी । तो परिवार का मोह तो पशु में भी है । "या देवी सर्वभूतेषु मोहरूपेण संस्थिता" पशु भी अपने परिवार का पालन पोषण बडे प्यार से करता है । यह मनुष्य भी यदि इसी में सीमित रहा तो यह पशुवृत्ति तक ही रहा । यह मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जिस में मनुष्य अपने को पशुवृत्ति मे ऊपर उठा सकता है । मनुष्य को ही यह सौभाग्य

प्राप्त है। इस लिए मनुष्य बुद्धि बल से विवेकको जाग्रत करे। बुद्धिमान अपनी विद्यावल की ज्ञानवल की रक्षा करे। विद्वान का बल विद्याबल ही है। यह ज्ञान वल तुम्हें असत् से मुक्ति दिलाएगा। जैसे लक्ष्मी के आने पर दरिद्रता अपने आप पीछे हट जाती है। इसी प्रकार सत् की प्रतिष्ठा से असत् प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

यह शरीर आत्मा की सत्ता से ही सत् जैसा दीखता है। जैसे महाराजा के नौकर भी राजा के तरह ही रहते हैं पर महाराजा तो नहीं बन सकते। इसी प्रकार यह-शरीर भी आत्मा की छाया में आत्मा जैसा ही दीखता है पर आत्मा के विना एक दिन में ही सड़ने लगता है। ब्रह्मविद्या इस बात की ओर संकेत करती है कि यह शरीर तू नहीं है। यह तेरा नहीं है। तू तो सदा निर्लेप सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा ही है। भदालसा देखो मामूली स्त्री नहीं थी महारानी थी। उस के पुत्र होते हैं और वह बच्चपन में ही उन्हे उपदेश करती है **"शुद्धोसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोसि संसारमाया परिर्वाजतोऽसि संसारस्वप्नं त्यजमोहनिद्रां मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥**
हे पुत्र तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, माया से परे है। तू क्यों रोता है। यह संसार मोह निद्रा है। एक स्वप्न है। इस में मोह नही करना। इस मोह की निद्रा को त्यागो। इस संसार को स्वप्न की आंख से ही देखो। इस को सच्चा नहीं समझो इस को तुम जाग्रत की आंख से मत देखो। हम लोग बच्चे को बुद्धिहीन समझते हैं। पर बच्चे की बुद्धि निर्मल होती है, शुद्ध होती है। कहा है "child is the father of man" वह हर बात को बड़ी शीघ्रता से ग्रहण करता है इस लिए बच्चों के सामने सदा अच्छे आदर्श राखो। उन्हे अच्छे संस्कार दो। हम सब अज्ञान निद्रा में पड़े हैं। अज्ञान का काम है कुछ समझने न देना। ज्ञान का सूर्य धीरे २ प्रकाशित होगा तो अज्ञान अन्धकार की निवृत्ति होगी। तब तुम अपने सत् चित् आनन्द स्वरूप के दर्शन कर के मुक्त हो जाओगे। "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जो मुक्त करे। मोह से बांधने वाली विद्या विद्या नहीं है। ब्रह्मविद्या ही मोक्ष की ओर ले जाने वाली विद्या है। भगवान से मन मिलाकर रहोगे तो यह बल देव बल बनेगा और भगवान से विमुख हो कर रहोगे तो यही बल असुरबल हो जाएगा और तुम्हें नीच योनियों में ले जाएगा। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस बल की प्रतिष्ठा करो। रक्षा करो

हरिः ओ. तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ३२

२१-५-८५

"ॐ स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथा-कामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भू-य इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।"

(छान्दो० ७।८।२)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस शरीर में बल नाम की एक शक्ति है। 'बलं सामर्थ्यम्' शक्ति विशेष का नाम वल है। यह जो सामर्थ्य विशेष है इस की रक्षा करनी चाहिए। इस के बारे में कल विचार कर के आए हैं। जनवल, धनवल, अधिकारबल और ज्ञानवल यह चार बल हैं। इन के अतिरिक्त शरीर में रहने वाला बल विशेष जो है जिस के वारे में श्रुति कहती है "एको बलवान् शतं कम्पयेत्" ऐसे बलवान को आजकल की भाषा में गली का दादा भी कहते हैं। वह Ring leader होता है। मान लो सैंकडों विद्वान खडे हों और एक उन्मत्त हाथी आ जाए तो विद्वान क्या करेंगे ? भागना ही पडेगा। शरीर की रक्षा भी तो करनी है। इस शरीरबल की रक्षा करना भी धर्म है। बुद्धिमान इस शरीरबल को भी सात्विक बनावे। तामस राजस नहीं होने दे। सात्विक बल अनाचार नहीं करेगा। प्रजा दुष्कर्मो से ही दुःखी होती है। परिवार को भी सुखी होने के लिए सुकर्म की आवश्यता होती है। राष्ट्र भी सुकर्मो से ही सुखी होता है। यह सुकर्म ही तुम्हें आगे वढाने में भी सहायक होते हैं।

इस शरीर में जो सुन्दरता दिखाई दे रही है वह किसकी है। सुन्दरता तो चेतन की ही है। वह सर्व साक्षी चेतन ही शक्तिशाली है। सारी की सारी

शक्तियां इस चेतन के ग्राश्रय में ही जी रही हैं। पर इस ग्रोर दृष्टि शीघ्र जाती नहीं इस लिए इतर वस्तुग्रों में ही सौन्दर्य प्रतीत होने लगता है। शास्त्र में दो प्रकार की विद्याग्रों का वर्णन है। "द्वे विद्ये वेदितव्ये पराचैवाऽपराच" ग्रपरा विद्या, लौकिक विद्या, शरीर सम्बन्धी विद्या है। इस शरीर को परिवार में, समाज में, राष्ट्र में रहना है। इस संसार में कैसे रहना है, यह ग्रपरा विद्या सिखाती है। यह ग्रपरा विद्या चार प्रकार की है। इस की व्याख्या पहले भी कर के ग्राए हैं। ग्रान्वीक्षिकी विद्या तर्कविद्या को कहते हैं। गौतम ऋषि इस के प्रणेता है। इन को ग्रक्षपाद भी कहते हैं। यह मनुष्य प्राणी शंकाशील प्राणी है इस के लिए तर्क भी ग्रावश्यक है। इन्होंने परमाणु विज्ञान का सूक्ष्म परीक्षण किया है। कहते हैं गौतम ऋषि के पाद में भी दृष्टि थी। ग्रर्थात् इन की दृष्टि ग्रति सूक्ष्म थी यह पांव से भी वस्तु का परीक्षण कर लेते थे इस लिए इन का नाम ग्रक्षपाद पडा।

ऋग्‌यजु, साम लक्षणा त्रयी विद्या है। इस मनुष्य प्राणी को धर्माधर्म का ज्ञान होना भी ग्रावश्यक है। इस त्रयी विद्या में इसी का विवेचन है। कणाद ऋषि वैशेषिक दर्शन के द्रष्टा है। कहते हैं कि किसान जब खेती काट कर ले जाता था तो खेत में जो ग्रन्न के कण गिर जाते थे उन्हे इकठ्ठा कर के यह ग्रपना जीवन निर्वाह करते थे इस लिए इन का नाम कणाद पडा। ऋषियों ने इस विद्य पर वहुत वल दिया है। संसार में ग्राज तक ग्रच्छे गुणों से कोई दुखी नहीं हुग्रा। दुर्गुणों से ही सब दुखी होते हैं। लोक जीवन में मान लो एक व्यापारी है। वह ग्रपनी जेब का पैसा वाजार में लगाता है। उस से धन कमाकर ग्रपना ग्रौर ग्रपने परिवार का पालन पोषण करता है। वह राष्ट्र का भी भला करता है ग्रौर परिवार का भी। ऐसे व्यक्ति से राष्ट्र की या समाज की कोई हानि नहीं होती। पर एक चोर है। वह दूसरों का धन चुरा कर लाता है ग्रौर उस से ग्रपने परिवार का पालन पोषण करता है। धन दोनों ही लारहे हैं। परिवार का पोषण भी दोनों कर रहे है परन्तु चोर का स्वयं का भी भला नहीं हो रहा तो वह परिवार ग्रथवा समाज का क्या भला कर सकता है ग्रथवा राष्ट्र को क्या दे सकता है ? धर्माधर्म का ग्रनुशासन समाज के लिए ग्रावश्यक है यह त्रयी विद्या है।

वार्ता विद्या अर्थ अनर्थ का ज्ञान देती है। शब्द का ठीक २ बोध न होने से कभी २ अनर्थ हो जाता है। व्याकरण शास्त्र एक अद्भुत शास्त्र है। इस से शब्द का ठीक २ ज्ञान हो जाता है। दण्डनीति, धर्मानुकूल ठीक चलने पर कोई आपत्ति नहीं। पर जो धर्म और नीति के विरूद्ध चलता है उस के लिए दण्ड विधान है। यह संसार प्रकृति का एक सुन्दर बगीचा है। इसे नष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं है। इस को तुम सुन्दर तो बना सकते हो पर इसे नष्ट करने वाले को दण्ड दिया जाता है। यह सब अपरा विद्या है।

इस प्रकार रहते २ धीरे २ प्रश्न आया कि यह शरीर तो प्रकृति के नियम से धीरे २ नाश की ओर जा रहा है। अपने भूतों की ओर जा रहा है। पर यह चेतन आत्मा जिस ने इस शरीर को धारणा किया हुआ है। इस शरीर के पश्चात्, जब यह शरीर छोड देगा तो किधर जाएगा। इस का क्या होगा? **"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"** इस ज्ञान के लिए इस आत्मतत्त्वोपदेश के लिए शिष्य जिज्ञासु हो कर गुरु की शरण में जाए। गुरु भी ऐसा होना चाहिए जो ज्ञान देने में समर्थ हो। इस लिए कहा "श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्" विद्वान भी हो और ब्रह्मनिष्ठ भी। तुम्हारे अन्दर ज्ञान को जाग्रत वही कर सकेगा जो श्रुति एवं शास्त्रका ज्ञाता होगा और अनुभव एवं युक्ति के द्वारा भी समझाने में समर्थ होगा। इस लिए कहा 'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" गीता में भगवान कहते हैं **"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया, उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।"** (गीता अ० ४।३४) ऐसे तत्त्ववेत्ता की शरण में जाओ श्रद्धा से प्रणाम करो। प्रश्न करो और सेवा भी करों। सेवा के द्वारा ज्ञानवान को वश में करना पडता है तभी वह अपने हृदय से तुम्हें विद्या देगा। कुछ विशेष पाने के लिए कुछ विशेष करना भी पडता है। शिष्य जब गुरु का प्रिय विश्वास पात्र बन जाता है तो "उत्थाता भवति। उतिष्ठन् परिचरिता भवति" तो उस का विवेक जाग उठता है। गुरु की श्रद्धा से सेवा करने वाला शरीर बल से भी उठ जाता है। देहाहंकार से भी उठ जाता है और तत्त्व में उस की निष्ठा बन जाती है।

केवल देहाहंकार को पकडने वाले को अन्त में कुछ भी हाथ नहीं आता। जैसे किसी परिवार में सौ वर्ष तक जिने वाले का भी प्राण वियोग होते ही सब

समाप्त हो जाता है। फिर उस परिवार में उस घर में उस का कुछ भी अपना नहीं रहता। जैसे एक पेड जिस भूमि में सैंकडों वर्ष खडा रहने पर भी कटने के पश्चात् साफ हो जाता है। यह संसार समुद्र है। जो मृत्यु की लहर में बह गया वह दब गया। जो लहर के ऊपर होगा वह दीखेगा जो लहर के नीचे गया वह नहीं दीखेगा। जन्म की एक लहर और मृत्यु की एक लहर। इसी लिए भगवान गीता में भी कहते हैं "मृत्युसंसारसागरात्" भगवद् चिन्तन ब्रह्म चिन्तन का तात्पर्य यही है कि यह तुम्हें मोक्ष में ले जाएगा।

इस जीवन में ग्रहण के साथ त्याग भी आवश्यक है। परिवार में बुढा बुढिया बच्चों से प्यार तो अवश्य करें परन्तु आत्मदृष्टि से ही प्यार करो। विवेक करो कि आत्मा के विना क्या प्रिय है। सावधान मुमुक्षु इस प्रकार संसार से इस शरीर से अपनी वृत्ति को ऊपर उठाता है। ब्रह्मवेत्ता की शरण में जाता है। जैसे दो विजली के तार आपस में मिलते हैं तो करेंट उत्पन्न होती है Power Pase होती है। ऐसे ही जब शिष्य अपना मन गुरु के मन के साथ मिलता है तो गुरु की विद्या शिष्य के मन में प्रवेश कर जाती है। प्रगट हो जाती है। उप कथा है एक बार नारद इस भूमण्डल पर विचरण कर रहे थे। चलते चलते उन्हे एक भक्त मिला। पूछा भगवान कहां जा रहे है। वोले विष्णु भगवान के पास वैंकुण्ठ में। कहो कोई संदेह है? भक्त ने कहा भगवान और तो क्या संदेह देना है वस इतना देख लेना कि मेरा नाम भगवान के भक्तों की list मे है कि नहीं। नारद ने कहा ठीक है। कुछ दिनो बाद नारद लौट कर आए और बोले कि भाई तुम्हारा नाम तो उस list में मिला नहीं। परन्तु तुम निराश मत हो। भगवान के पास एक विशेष भक्तों की नामावली भी होती है अब की वार मैं जब जांऊगा तो उस मे देखुंगा। भक्त राजी हो गया। कुछ समय बाद नारद ने वैंकुण्ठ जा कर भगवान से पूछ ही लिया कि भगवान एक बड़ा भक्त है फलां २ जगह पर और वह हमेशा कहता है कि भगवान के भक्तो मे मेरा नाम दीखता है कि नहीं। वो भगवान ने वह list निकाल कर दी। नारद ने देखा तो पहले नंम्बर पर उसी भक्त का नाम का। नारद के पुछने पर भगवान ने कहा नारद यह मेरे विशेष भक्त हैं। कुछ भक्तो ऐसे हो तो हैं

कि जो भगवान को सदा याद करते हैं। परन्तु कुछ ऐसी कोटि के भी होते हैं जो अपना को सदा भगवान मे रमे रहते है उन्हें भगवान से अलग अपना अस्तित्व दीखता ही नहीं। जो सदा भगवान से युक्त रहते हैं ऐसे भक्तों को भगवान याद करते रहते है "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रतिपूर्वकम्" जो जो ऊंचे तत्त्व में पहुंच जाते हैं उनका भजन भगवान करते हैं गीता में कहा भी है "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यम्**" अब जब नारद ने आकर उस भक्त को बताया तो सोचो उस भक्त को कितनी प्रसन्ता हुई होगी।

ऐसे ही जो शिष्य भी गुरु के अति समीप आ जाता है उस को गुरु भी प्यार करने लगते हैं। और इस प्रकार वह अपनी विद्या शिष्य पर प्रगट कर देते हैं। तब उस शिष्य के हृदय में तत्व ज्ञान प्रगट हो जाते है। वह तत्वका दृष्टि बन जाता है। तब कहते है " मन्ता भवति, बोद्धा भवति" वह विशेष रूप से तत्त्व का ज्ञाता हो जाता है। मुमुक्षु शरीर की सुन्दरता से मुंह मोड कर आत्मा की सुन्दरता को देखे। देखो इस शरीर की Packing कितनी ही सुंदर क्यों न हो पर यदि जरा सी भी कहीं से ढीली पड़ जाए तो मक्खियां भिनभिनाने लगती हैं। इस में जो चेतन तत्त्व है वही सब से सुन्दर है। याज्ञवल्क्य ऋषि कहते है हे मैत्रेयी जब तू इस आत्म तत्त्व का श्रवण करेगी तब तू इस के रहस्य को जान कर मुक्त हो जाएगी। ज्ञान की स्थिरता जैसे २ बढेगी वैसे तू निर्भय निश्चिन्त होती जायगी। सच्चे सत्संगी का लक्षण यही है कि वह व्यर्थ की चिन्ता नहीं करता। उस के शोक मोहादि विकार कम होने लगते हैं। यदि विद्वान मे काम क्रोध शोक मोहादि विकार कम नहीं होंगे तो वह अपनी विद्या का सुन्दर उपयोग नही कर सकेगा। समाज को, राष्ट्र को, जाति को सुन्दर गुण नहीं दे सकेगा। यही तो विद्वान का धर्म है। यही कर्तव्य है। हमारा बंगला कितना ही सुन्दर हो पर यदि उस में रहने वाले सुन्दर विचारों के नही हो तो बंगले की सुन्दरता कितने दिन टिकेगी।

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद बल से ही पृथ्वी स्थिर है। यह आकाश, यह पर्वत, यह देव, यहं मनुष्य देवतुल्य मनुष्य सब बल से ही खड़े हैं। इस सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला जो बल है, वह भगवान का सगुण

साकार रूप है । जैसे तुम्हारे शरीर को धारण करने वाला चेतन निराकार होते हुए भी सगुण साकार बना हुआ है । इस संसार मे सब अपने अपने सुख के पिछे दौड रहे हैं । इस लिए तुम भी सुख रूप इस आत्मा की ओर दौड़ लगाओ । इस बल की सिद्ध करो । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समाया हुआ जो बल है वही भगवान है । बल से ही सम्पूर्ण विश्व स्थित है । जो इस बल की ब्रह्मरूप से उपासना करता है वह सब जगह भगवान को ही देखता है । यह सब चेतन की सत्ता मे ही टिके हुए है ।। हे नारद बल की ब्रह्मरूप से उपासना करने वाला उन २ लोकों में स्वेच्छा से जा सकता हैं जहां २ बल की प्रतिष्ठा है । इस लिए तुम भी बल की ब्रह्मरूप से उपासना करो ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ३३

२२।५।८५

"अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश रात्रिर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नभुपास्स्वेति ।।"

(छान्दो० ७।९ १)

विचार चल रहा है कि लोक दृष्टि में इन लौकिक बलों का बडा महत्त्व है । कल बल की महिमा का गान कर के आए हैं । भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद तत्त्व दृष्टि से यह बल आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं । यह अलग अलग सभी बल आत्मा के आश्रय में ही टिके हुए हैं । यह बल तभी तक हैं जब तक आत्मा है इस लिए मुमुक्षु अपनी दृष्टि तत्त्व पर ही रखे । नारद ने पुनः प्रश्न किया कि भगवान इस बल का कारण क्या है । यहाँ इस बात का

रहस्य प्रगट कर रहे हैं कि कारण ही तत्त्व है। कारण के बिना कार्य नहीं होता। भगवान सनत्कुमार कहते हैं लोक दृष्टि में बल का साक्षात कारण अन्न ही है । इसी छान्दोग्य उपनिषद के छठे अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्य अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाते हुए कहते हैं ''अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमय: प्राणस्तेजोमयी वागिति'' हे सोम्य यह मन अन्न मय हैं यह प्राण जलमय है। यह वाणी तेजोमयी है। तेज का अर्थ यहां घृतादि से है। वेद कहते है ''आयु र्वै घृतं'' यह जो तेल घी आदि हम खाते हैं इस से शरीर की आयु बढती है। इस से शरीर की oiling होती है । जैसे मशीन की oiling करने से उस की शक्ति बढ जाती है। ऐसे ही यह शरीर भी एक heavy machine ही समझो परन्तु ऐसी मशीन आज तक किसी factory में बनी नहीं। यह शरीर भी कम महत्त्व का नहीं है। ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''। इस लिए इस की रक्षा के लिए उचित मात्रा में घृतादि का सेवन भी आवश्यक है। नहीं तो यह सारा नाडी मंडल शुष्क हो जाएगा।

महर्षि कहते हैं कि यह मन अन्न रूप ही है । ''षोडशकल: सोम्य पुरुष:'' यह मनोमय पुरूष सोलह कला वाला है। जो अन्न हम खाते हैं इस से मन में सोलह प्रकार की शक्तियां आती हैं। अन्न यदि सात्त्विक पवित्र होगा तो यह शक्तियां भी सात्त्विक होंगी। जो लोग पवित्र आचार विचार के होते हैं, जिन में आत्मा परमात्मा का विवेक है, वह मांसादि राजस भोजन से अपने को अलग रखते हैं। सूक्ष्म शरीर में प्रधान मन ही है। यह मन जिधर जाएगा उधर हीं जीव जाता है। मृत्यु के समय मन वही संकल्प करता है जो जीवन भर उस के संस्कार होते हैं। इस मन को मुमुक्षु देव गुणों से सम्पन्न करता है। दया क्षमा स्नेह धृति सहनशीलता यह देव गुण है यही मन के सौंदर्य्य के साधन है। विवेकशील जीवन में कभी अपने अधिकारका दुरूपयोग नहीं करता । सुन्दर विचार वाले के मन में सहज ही शान्ति बनी रहती है। दृष्टि आत्मा की ओर होगी तो इन्द्रियों के भोगों में स्वत: ही वैराग्य होगा। गीता में भगवान कृष्ण मुमुक्षु के लक्षण बताते है **''अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम्, आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रह:।।''** (गीता अ. १३।७) कहते हैं मुमुक्षु का पहला लक्षण है अमानी होना माने अभिमान रहित होना। अभिमान किस बात

का है ? पहले तो हमें ऐसी कोई विषय वस्तु मिली ही नहीं। जो सब को मिला है वही हमें भी मिला है कथा तो सुनते ही रहते हो। एक सेठ था। वह अपने को बहुत बुद्धिमान समझता रहा। उस का एक नौकर था जो विचारा भोला भाला था। जब भी वह आता सेठ उसे मूर्ख कह कर पुकारता था। एक दिन सेठ ने उसको एक अपनी अंगूठी उतार कर पहनादी और प्रसन्न हो कर कहा कि मैं तुम्हे हमेशा मूर्ख कहता हूं परन्तु तुम कुछ बुरा नहीं मानते। अब यह अंगूठी रख लो और जब अपने से मूर्ख कोई तुम्हें मिल जाए हो उसको पहना देना। नौकर ने चुपचाप अंगूठी रखली। कुछ दिनों के बाद सेठ बहुत बीमार हो गया। नौकर उस से मिलने गया और पूछा सेठ जी कैसे हैं ? सेठ ने भरी आंखो से देखा और कहा बस अब जा रहे हैं। नौकर बोला कहाँ ? सेठ ने कहा लम्बी यात्रा है पता नहीं कहां जाएंगे। नौकर ने पूछा क्या सेठानी जी भी साथ जा रही हैं ? सेठ ने कहा तभी तो कहता हूं तू मूर्ख है। और वह ऐसी यात्रा है जो अकेले ही करनी पडती है। वहां साथ कोई नहीं जाता। नौकर फिर बोला कैसे जाएंगे ? गाडी से या रेल से ? सेठ ने कहा अरे मूर्ख वहाँ कोई सवारी नहीं जाती। अच्छा ! नौकर ने पुन: पुछा तो साथ में कुछ सामान कुछ खाना पीना रख लिया आप ने ? कुछ तैयारी कर ली आपने ? सेठ ने निराश से कहा कि क्या तैयारी करनी है वहां तो कुछ ले जा भी नहीं सकते। नौकर ने झट से वह अंगूठी निकाली और सेठ की उंगली में पहनाते हुए बोला सेठ जी फिर हो आप ही अधिक मूर्ख लगते हैं। इतनी लम्बी यात्रा जहां कोई साथ भी नहीं, लौटने का भी पता नहीं और आप ने उसके लिए कुछ तैयारी नहीं की। इस लोक में तो लोग छोटी २ यात्रा पर जाते हैं फिर भी खूब तैयारी से जाते हैं। कुछ तैयारी तो करनी चाहिए थी आपको। क्यों कि इस यात्रा का पता तो हर व्यक्ति को रहता ही है। पर जो उसके लिए कुछ नहीं करता वही सब से बडा मूर्ख होता है। सेठ की आंखे छलछला आई और बडे प्यार से नौकर की ओर देखने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य इस संसार के सुख भोग में, ऐश्वर्य्य में ऐसा डूब जाता है कि अपने को ही सब कुछ समझने लगता है। मुमुक्षु को यदि कुछ बिशेष ऐश्वर्य्य मिलता भी है तो वह उसे प्रभु का विशेष अनुग्रह ही समझता है और अभिमान नहीं करता। इस लिए भगवान

ने कहा "अमानित्यमदम्भित्वम्" 'मान' का दूसरा अर्थ माप है। मुमुक्षु अपने को शरीर के माप से नहीं मापता। जो अपने को देहाभिमान में ही बांधा हुआ समझता है वह पशु तुल्य ही है।

वेदोंका सिद्धान्त है कि ज्ञान के विना मोक्ष नहीं होता। ॐकार ज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ ज्ञान माना जाता है। मुमुक्ष इस ॐकार का अर्थ गुरु मुखसे श्रवण करे और इसे धारण करे यही तारक मंत्र है। लोक जीवन में राग और आध्यात्मिक जीवन में श्रद्धा आवश्यक है। ब्रह्मविद्या से जीवन में सुन्दर गुणो का समावेश होता है। जीवन में यदि गुणों को ग्रहण नहीं किया तो जीवन व्यर्थ है। सत्सङ्गी को तो सदगुण अवश्यही ग्रहण करना चाहिए नहीं तो वहुएं भी कहें गी कि बुढिया सत्सङ्ग में तो रोज जाती है पर सीखा कुछ भी नहीं। यह जीवन जब अंहकार को छोडेगा तब अभागी होगा। सोचो तो क्या हम शरीर जितने है जितना लम्बा शरीर उतने लम्वे हम क्या शरीर जितना मोटा उतने मोटे हम ? या शरीर से अधिक या कम ? यह शरीर तो अन्नका विकार है। अच्छा बताओ जब जन्म हुआ तब इस शरीरका वजन कितना रहा ? पांच छ ! पौंड। अच्छा यह पांच छः पौंडका वजन भी क्या तुम्हारा रहा ? यह भी मां के पेट में मांने जो भोजन खाया उस में से कुछ उस ने अपने शरीरका प्लास्टर ठीक किया और कुछ तुम को सप्लाई करती रही। तो यह वजन भी अन्न का ही रहा। उसके बाद आजतक जो कुछ खाया पीया प्लास्टर पर प्लास्टर चढता गया। तो शरीरका मान माप अपना नहीं है। यह आत्मा ही महान है। यह शरीर इस के आश्रय में जी रहा है श्रुति कहती है "**अणोरणीयान् महतो महीयान्**" यह अन्तरात्मा 'सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं' है। आत्मा महान से महान है और सूक्ष्म से सूक्ष्म भी है पहले मुमुक्षु अपने को जीव समझता था। संसारी समझता था। परन्तु अव अपने को सत्चित् आनन्द स्वरूप अजर अमर आत्मरूप ब्रह्मरूप समझता है। सोंचो यह वृद्धावस्था तुम्हारी है या कहीं से मांग कर लाए हो ? शरीर की यह अवस्थाएं तो आने जाने वाली हैं। यह सब तो भूतों के विकार हैं। जो शरीर में दिखाई देते हैं। पर तुम्हारे में कोई विकार नहीं तुम तो सत्चित् आनन्द स्वरूप आत्मा हो। यह निश्चय करना है।

मंत्र कहता है यह मन सोलह कला पूर्ण पुरूष है। "षोडशकल: सोम्य पुरूष:" यह मनोमय पुरूष सोलह कला वाला है। सोचो यह सोलह कलाएं मन में आई कहां से ? यह अन्न से आई। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने पुत्र को समझाया पर श्वेतकेतु समझा नहीं। पिता ने कहा अच्छा तुम पन्द्रह दिन तक अन्न मत खाओ केवल जल पीते रहो। क्यों कि जल पीते रहने से प्राण विच्छेद नहीं होगे। बेटा श्रद्धालु है। तपस्वी ऋषि पुत्र है। पिता की आज्ञा का पालन करता है। १५ दिन के पश्चात् जब पिता के सामने आया तो पिताने ऋग्वेद, सामवेदादि के मंत्र बोलने को कहा। पर श्वेतकेतु का सिर घूमने लगा। चक्कर आने लगा। कुछ याद ही नहीं आया। तब पिता ने बडे प्यार से कहा कोई बात नही। जाओ, जाकर भोजन करो तब भोजन कर के आया तो पिता ने जो जो पूछा सब सुना दिया। सब मंत्र सुना दिया। तब महर्षिने पुन: समझाया **"यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत्"** जैसे अग्नि के कण में इन्धन न देने से यद्यपि जलाने की शक्ति कम रह जाती है। पर यदि उस में जलने वाला कोई पदार्थ धीरे धीरे डालो तो वह पुन: प्रज्वलित हो जाती है, ऐसे ही अन्न के विना मन की शक्रियां क्षीण हो जाती हैं। पुन: अन्न देने से वह जाग उठती हैं। इस लिए अधिक उपवास भी उचित नहीं। शरीर की शक्ति क्षय होने से मन की शक्तियां भी क्षीण हो जाती हैं।

गीता में भी भगवान कहते है **"कर्षयन्त: शरीरस्थं भूतग्राममचेतस:, मां चैवान्त:शरीरस्थं तान्विद्धचासुरनिश्चयान्"** (गीता अ० १७।६) मूढ पुरूष "अचेतस:" जिन्हे आत्मा परमात्माका विवेक नहीं है वह शरीरके पांचों भूतोंको सुखा देते है और "मां चैवान्त: शरीरस्थं" मुझे भी दुखी करते है निश्चय ही वह असुर हैं। आसुरी प्रकृति है युक्ति युक्त आहार विहार करना चाहिए। यदि तुम स्वयं ही नहीं खाओगे तो अतिथि क्या खाएगा। जीवन को all round समझो। भोजन करने से जीवन तत्त्व यद्यपि नष्ट नहीं होते परन्तु क्षीण अवश्य हो जाएंगे। इस प्रकार महर्षि ने अपने प्रिय पुत्र श्वेतकेतु को समझाया "अन्नमयं सोम्य मन:" यह मन अन्नमय है। कहा भी जाता है "जैसा खाए अन्न

वैसा बने मन" हिन्दु जाति में इस बातका बहुत विचार किया जाता है। सात्त्विक भोजन करने से मन में सात्त्विक शक्तियों का उदय होता है। यह सात्त्विक मन ही तुम्हे तत्त्व की ओर ले जाने में समर्थ होता है। इस मन के द्वारा ही जीवन तीन धाराओं में बट जाता है। सात्त्विक राजस और तामस। राजस मन तुम्हे लोभ मोह विकारों से बांध देता है और तामस वृत्ति में गया हुआ मन तो कुछ समझने ही नहीं देगा। मूढता में अज्ञान में ढकेल देगा। "**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:**" यह मन ही मनुष्य को बन्धन में डालता है और यही मोक्ष में भी ले जाता है।

मुमुक्षु अपने मन को व्यर्थ में इधर उधर भटकाता नहीं। यदि जीवन भर के अपने खाने का हिसाब लगाओ तो गोदाम भर जाएंगे। टीन के टीन घी, तेल, चावल और मनों अनाज खाया। पर क्या हुआ? ऐसे ही जीवन के बाकी के सभी भोगों को भी समझो। और मन को बाहर के भोगों से खींच कर आत्मा की ओर ले चले। महर्षि कहते हैं अन्न न खाने से "अद्रष्टा, अश्रोता अकर्त्ता अमन्ता अविज्ञाता भवति" जीव न ठीक से देख सकेगा। न सुन सकेगा। न कुछ कर सकेगा और न समझ सकेगा। यह इन्द्रियां तो हमारे नौकर हैं। नौकरों को जब तक खाना दाना ठीक से मिलता रहता है तभी तक काम करेंगे नहीं तो सब अपनी २ अटैची उठा कर चल देंगे। यह ज्ञान बल भी अन्न के ही अधीन है। यद्यपि सूक्ष्म संस्कार बना रहेगा पर फिर भी स्पष्ट ज्ञान नहीं हगा। इस लिए भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह अन्न ही बल से महान है। यही सम्पूर्ण जगत का जीवन है इस लिए तुम अन्न की ब्रह्मरूप से उपासना करो। इस से तुम द्रष्टा श्रोता, मन्ता, विज्ञाता बन जाओगे। शोक मोह से पार हो जाओगे। यह सब ब्रह्म ही है। ऐसी भावना करो।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ३४

२३-५-८५

"ॐ स यो ऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतो ऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूयइत्यन्नाद्वाव भूयो-ऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।"

(छान्दो० ७।६।२)

विचार चलता है कि वल से महान अन्न है। यह अन्न ही जगत का जीवन है। "दूसरी श्रुति है अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।।" तैतिरीय श्रुति है महर्षि भृगु अपने पिता वरूण के पास तत्त्व उपदेश की प्रार्थना करते हैं। महर्षि वरूण ने कहा कि यह अन्न ही ब्रह्म है। यही सारे विश्व का जीवन है। इसी से सब प्राणी उत्पन्न हो रहे हैं। इसी में जी रहे हैं और अन्त में इसी में लीन हो रहे हैं। इस तथ्य को समझने के लिए इस शरीर से अधिक कोई दृष्टान्त नहीं। जैसे यह शरीर इस आत्मा के आश्रय में ही जी रहा है। आत्मा से अलग होते ही शरीर को लपेट लपाट कर किनारे कर देते हैं। इस आत्मा के आश्रय मे है तभी तक प्रतिदिन अपना रूप बदलता जा रहा है परन्तु सिर भी इस आत्मा की छाया में जी रहा है। इस की छाया में इस का रूप बदलना ही प्यारा लगता है। सोचो तो यदि जैसा जन्मा यदि ऐसा ही रहे तो कौन मां इसे प्यार करेगी? परन्तु अन्दर से वह जैसे का तैसा ही है। ब्रह्म सदा एक रस रहता है। तभी तो जिसने जन्म लिया शरीर बदलने रहने पर भी बचपन की स्मृति, अनुभव, वृद्धावस्था तक बना रहता है। मान लो एक बुढिया

नब्बे वर्ष की ही गई हो और उस का बेटा भी सत्तर के लगभग है। तो वह बुढिया मां चश्मे से ध्यान से बेटे को देखती है और कहती है मेरा बेटा बूढा हो गया। शरीर का अहंकार पकड कर चेतन बैठा है इसी से ऐसी स्मृति बनी रहती है।

महर्षि वरूण अपने पुत्र भृगु को समझाते हुए कहते हैं कि इस दुनियां को तुम इन्द्रियों से कितना ही नापते जाओ पर इस का अन्त नहीं है। जितना इस को इन्द्रियों से पकडो यह पकड में आता नहीं इस लिए निश्चय करो कि इन इन्द्रियों के पिछे सत्य क्या है ? जो मूल तत्त्व है उसे पकडना चाहिए भृगु ऋषि इसी सत्य को जानने के लिए अपने पिता महान ब्रह्मवेत्ता वरूण से प्रार्थना करते है। ऋषि ने कहा **"अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति, अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्...तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व"** (तैत्तिरीयोपनिषद भृगुवल्ली ३।२।१) महर्षि ने अपने बेटे को विचार का मार्ग बता दिया। यह मुमुक्षु कौन सी भूमि में बैठ कर विचार करे इस लिए कहा अन्न शब्द का अर्थ केवल अन्न ही नहीं। यह शरीर, स्थूल शरीर अन्नमय कोश है। अन्न से ही यह शरीर बढता है इस लिए इसे अन्नमय कोष कहा। इस अन्नमय कोश का मुमुक्षु विवेचन करे और विवेक से अपने को इस शरीर से न्यारा समझे। "प्राणं भोक्तारं" इस प्राण को भोक्ता समझो। जब तक यह प्राण शरीर में बैठा है तभी तक यह प्राणी अन्न खाएगा। तभी तक बढेगा। श्रुति कहती हैः-

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षु रतिमुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति" (केनोपनिषद १।२) जब तक वह अन्दर बैठा है तभी तक रिसीभर से सुनेगा। इस लिए यह श्रोत्र का श्रोत्र है। मन का मन है। नेत्र भी तभी तक देखेगा जब तक वह अन्दर बैठा है वाणी भी तभी तक बोलेगी। इस लिए यह नेत्र का भी नेत्र है वाणी की वाणी है और प्राण का भी प्राण है क्यों कि यह प्राण भी इसी के आश्रय में चलरहा है। धीर पुरुष ही इसे जान सकता है और वही अमृत पद को पा सकता है। इन इन्द्रियों में जो भोगासक्ति है उसे कम करो। भोगासक्ति जैसे २ कम होगी मुमुक्षु अन्तर्मुख होता जाएगा। महर्षि वरुण ने अपने बेटे भृगु को जगह बतादी की यहां तुम ब्रह्म की खेज करो। अपने सत् चित्त् आनन्द स्वरूप को इस अन्नमय

कोश से अगल समझ कर मुमुक्षु आगे बढ जाता है। यह शरीर इस विश्वात्मा का है और यह सारा ब्रह्माण्ड विराट का शरीर है। विराट का शरीर बहुत विशाल है इस लिए तुम उस में ब्रह्म की खोज नहीं कर सकते। क्यों कि श्रुति कहती है **"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः। न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।।"** (केनोपनिषद १।३) न वहां चक्षु की गति है न वाणी की मन से भी तुम इस विराट में ब्रह्म की खोज नहीं कर सकते। इस लिए अपने ही शरीर में ब्रह्म को खोजो। ब्रह्म किसी आकार में नहीं बांधा जा सकता। जैसे आकाश को किस आकार में बांधोगे। हां दीवारें बना कर तुम उस का आनन्द ले सकते हो। ऐसे ही इस महान ब्रह्म को यह माया बांध नहीं सकती। महर्षि वरूण कहते हैं बेटा "तपसः ब्रह्म जिज्ञासस्व" तप करो। "तपः इन्द्रिय-संयमः" इन्द्रियों का संयम ही तप है। उचित मात्रा में जीवन का भोग लो। मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही महान तप है। यह नियम है कि जिस से जो जीवन लेता है उसी में वह एकाग्र हो सकता है। मुमुक्षु इन्द्रियों से काशी कर-वट ले। प्राचीन काल में काशी करवट की प्रथा थी। ऐसा विश्वस किया जाता था कि काशी में मरने वालों का मोक्ष हो जाता है। काशी में भगवान शंकर प्राण वियोग के समय कान में तारक मंत्र का उपदेश करते हैं। मरने वाला समझता है कि इस से मेरा मोक्ष हो जाएगा। बहुत लोग वहां जा कर इसी इच्छा से पडे रहते थे। शीघ्रता वाले के लिए काशी करवट का विधान था। एक पुराना वट का वृक्ष था। उस के नीचे जा कर मरने वाला लेट जाता था। पास में एक पुराना गहरा कूआ था। पण्डा संकल्प करवाता था और मरने वाला करवट लेकर कूएं में गिर कर प्राण त्याग देता था। एक भाग्य का मारा मोची भी वहां पहुंच गया। उसने सुन रखा था कि काशी करवट लेने से मोक्ष हो जाता है। मोची वहां जा कर लेट गया। पण्डे ने पूछा कि तुम्हारी अगले जन्म में क्या बनने की इच्छा है? उसी का संकल्प करो। मोची सोचने लगा क्या बनूं। यदि ब्राह्मण बनता हूं तो सवेरे चार बजे उठना पडेगा। स्नान पूजा शास्त्र पठन पाठन बडी मुसीबत होगी। ब्राह्मण बनना तो बहुत कठिन पडेगा। फिर क्या क्षत्रिय बनूं? नहीं क्षत्रिय बन कर लडाई के मैदान में जाना पडेगा। तीर तलवार चलाना पडेगा। फिर कहीं लडाई में मारा गया तो क्या होगा?

इस लिए क्षत्रिय बनना भी ठीक नहीं। तो वैश्य बनूं? वैश्य बनने में वैसे तो कोई कठिनाई नहीं पर वही खाते में हिसाब ठीक नहीं बैठेगा तो रात २ भर जगकर हिसाब जोडना पडेगा। बडा कठिन है। सब सोच कर अन्त में निश्चय किया कि मोची बनना ही ठीक है। सब से अच्छा धन्धा तो मोची का ही है। न चिन्ता न फिकर। शान्ति से दिन भर काम किया और जो कमाया रात को परिवार में बांटकर खा लिया। सुख की नींद सो गये। बोला महाराज मैं मोची ही बनना चाहता हूं। तब पण्डित ने कहा मूर्ख फिर करवट ले कर मरने की क्या जरूरत है। मोची तो तू है ही। कहने का तात्पर्य्य यह है कि मन यदि ऊपर उठने को तैयार ही नहीं तो यही जीवन ठीक है।

वेदों का सिद्धान्त है कि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। ओंकार ही सर्व-श्रेष्ठ ज्ञान माना जाता है। मुमुक्षु कुछ बुद्धि से समझे और कुछ श्रद्धा से। "वेदो हि धर्मस्य मूलम्" वेद ही धर्म का मूल हैं। मुमुक्षु ब्रह्म करवट लेता है। अभी तक जो संसार की ओर मुंह कर के बैठा था अब आत्मा की ओर मुंह करे। माया से करवट लेकर ब्रह्म भाव में आना है। जैसे लडकी शादी के बाद करवट ले लेती है। अब उस को बुलाओ भी तो वहाना बनाकर आने को मना कर देती है। अब उस का मन वहां रम गया है। इस लिए मां के घर से करवट ले लेती है। अपने इस शरीर को एक राष्ट्र समझो। चेतन आत्मा को इस का महाराजा। जिस की सत्ता में यह आंख देखती है। कान श्रवण करता है। वह चेतन इस शरीर में महाराजा है "यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते"। सोचो पहले जन्म लेने वाला आता है। इस चेतन से ही इस शरीर का जन्म हुआ। यह सब भूत कहां से जन्म ले रहे हैं? लोग समझते हैं कि माता पिता से बच्चा उत्पन्न होता है। पर माता पिता क्या factory हैं? यदि ऐसा होता तो सब के बच्चे उत्पन्न होते। पर हम देखते हैं कि कितने ही पति पत्नी सन्तान के लिए वरसते रहते हैं। यह तो कोई जीवा त्मा पिता के शरीर में आता है। पिता को बडा दुकान दार समझो जीवात्मा जब उस के पास जाता है तो कहता है कि मुझे बंगला बनाना है रहने के लिए। उस का सामान चाहिए। उस ने कहा ठीक है। बैठ जाओ। फिर दूसरे दुकान दार के पास भेज दिया। मांका शरीर बंगला बनाने की factory समझो। उसने उस जीवात्मा को अपने ही

शरीर में रख कर उस चेतन के ऊपर ही बंगला तैयार कर दिया। "सिद्धानां-मपि सिद्धः" यह चेतन ही सिद्धों का सिद्ध है। चेतन मां के पेट में बैठ कर अपने ऊपर ही बंगला तैयार कर लेता है। इस में १२ हजार नाडियां प्रधान हैं। कितना प्लान बना कर बंगला बनाया है। सब यंत्र यथास्थान fit किए हैं। तो सोचो कितना बडा इंजीनियर है।

हिन्दू संस्कृति में अपने को पापात्मा नहीं माना जाता। यह तो विदेशियों की देन है जो पण्डा पुजारी भी यजमान से कहलवाने लगे पापोहम् वेद में कर्म काण्ड में यजमान से "पुण्योऽहं" कहलवाया जाता है। जब तक कर्म काण्ड में हो तब तक पुण्यात्मा हो। ज्ञान भूमि में पहुंच कर तुम ब्रह्म हो। इस लिए अपने को कभी पापात्मा नहीं कहो। जब तक इस शरीर में यह आत्मा बैठा है तब तक यह पापात्मा कैसे हो सकता है ? यह जगत ब्रह्म से उत्पन्न हुआ ब्रह्म में जी रहा है, ब्रह्म में ही लीन होता है। जन्म भी सत् चित् आनन्द में हुआ जी भी उसी में रहा है और उसी में विलीन हो रहा है। ऐसा सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा है यही ब्रह्म है तुम इस की जिज्ञासा करो। वह ब्रह्म ही तुम्हारी आत्मा है। तुम सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा ही हो ऐसा निश्चय करो। मुमुक्षु इन्द्रिय संयम के द्वारा आत्मा प्रज्ञा को जाग्रत करता रहे। मन को विचार से ठीक करते रहो। मन ठीक होने से इन्द्रियां ठीक कार्य करती हैं। मंत्र कहता है यह सब ब्रह्म ही है। और कुछ भी नहीं है।

अन्न प्रधान लोक यह मनुष्य लोक ही है। जो इस अन्न की ब्रह्म रूप से उपासना करता है वह अन्न प्रधान लोकों को स्वेच्छा से प्राप्त करता है। जो इस जगत को अप्रत्यक्ष जीवन दे रहा है उसे आज तक किसी ने जाना नहीं। जगत को प्रत्यक्ष रूप से जीवन देने के लिए ब्रह्म ही अन्न रूप से प्रगट हुआ। इस लिए नियम है कि जब अन्न सामने आए तो उस को ब्रह्म रुप ही समझो। थाली में जब भोजन आए तो प्रसन्न होकर उसे खाओ। "अन्नं ब्रह्म अन्नं न निन्दयात् अन्न की कभी निन्दा मत करो। यह प्रसन्नता से खाया हुआ अन्न तुम्हें सात्त्विक भाव देगा। यदि प्रसन्न नहीं होओगे तो तुम्हें राजस तामस भाव प्राप्त होगा। निन्दा करोगे तो भोजन का तामस भाव तुम्हें मिलेगा इस लिए मुमुक्षु सावधान रहे। कभी अन्न की निन्दा नहीं करे। प्रेम भाव से भोजन करे। कभी कुछ कमी भी रह जाती है पर क्रोध नहीं करें।

इस लिए मंत्र कहता है जो अन्न की ब्रह्म रूप से उपासना करता है वह अन्न वाले लोको में जाएगा। जहां अन्न की प्रतिष्ठा है उन लोकों में कामचारी होता है स्वेच्छाचारी होता है। अर्थात जो अन्न का भोजन करने वाले जीव हैं उस योनि में जाएगा। उसे प्रभूत अन्न प्राप्त होगा। उस के जीवन में अन्न की कमी नहीं आएगी। चाहे वह कितना भी अन्न बांटता रहे। नारद को अभी भी संतोष नहीं हुआ इस लिए वह पुनः प्रश्न करता है कि इस अन्न से महान क्या है? वह मुझे समझाईएं। भगवान सनत्कुमार कहते हैं अच्छा कल तुम्हें समझाएंगे। अब सीधे हो के बैठो और मन को आत्मा में ले आओ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ३५

२४-५-८५

"ॐ आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीन्यन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्तायेयं पृथिवी यदन्तरिक्षम्"

(छन्दो ७।१०।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद अन्न से महान जल है। यह जल ही विश्व का जीवन है। अन्न को जीवन देने के लिए परमात्मा ने वर्षा की सृष्टि की। यह जल अन्न से भी महान है। वर्षा न होने से प्राणियों के प्राण कांपने लगते हैं। वर्षा न होने से यह प्राण सोचने लगता है कि अन्न कम होगा तो हम कैसे जीएंगे? वर्षा अच्छी हो जाती है तो प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं। मनुष्य का मन ही बन्धन और मोक्ष में हेतु है। इसी छन्दोग्य उपनिषद का मंत्र **"यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवो-**

पश्यत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो'' जैसे शकुनि नाम का एक पक्षी है आकाश में उड़ते उड़ते थक जाता है तो विश्राम लेने के लिए लौट कर बन्धन की ओर ही आता है। तात्पर्य यह है कि इस पक्षी को बहुधा लोग पकड़ कर पालते हैं। उसकी टांग में लम्बी डोरी बांध कर रखते हैं तो वह उस डोरी के आश्रय तब ही उड़ता है और लौट कर अपने स्वामी की उंगली पर आ बैठता है। इसी प्रकार तुम्हारा यह मन भी वासना की डोरी से बन्धा हुआ इधर उधर भटकता रहता है। ऋषि कहते है कि तेरा जो मन है, जिस के बारे में कह आए हैं, सोलह कला वाला पुरुष, इसके बन्धन के कारण अविद्या कामना कर्म और फल हैं। इन्हीं के चक्र में यह जीव घूम रहा है। यह संसार चक्र है।

परन्तु सोचो तो यह मन भी चेतन आत्मा के बिना कुछ नही करेगा। चेतन के करंट के बिना इन इन्द्रियों का कोई ऐश्वर्य नहीं। जीवित प्राणी की आंख और मुर्दे की आंख में कितना अन्तर होता है। यह सुन्दरता किसकी है? आद्य गुरु शंकराचार्य कहते हैं **''भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये''** जिसकी सुन्दरता थी वह चला गया। सुन्दरता समाप्त होगी। भय होने लगा। मन में लक्षित जो चेतनका आभास है वह जीव है। अविद्या से कामना कामना से कर्म और कर्म से फल यही जन्म का कारण है। ''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्। इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपयाऽ पारे पाहि मुरारे। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।।'' जब तू ससार की ओर चलता है तो तेरे हजार मुंह हो जाते हैं। मन की नाना प्रकारकी कामनाएं ही हजार मुंह हैं। वासना के साथ विवेक होगा तो जीवन में संयम आएगा नहीं तो अन्धी वासना तुम को नाना योनियों में घुमाता रहेगी। इस लिए कहते हैं मूढ़मते गोबिन्द का भजन कर।

तुम्हारी यहा यह बुद्धि 'गो' (गऊ) है। पांच ज्ञानेन्द्रियां इस की पांच बछिया हैं। बुद्धि बार २ इन्हें दूध पिलाती है। पांच कर्मेन्द्रियां भी रख लो। अन्दर जो चेतन आत्मा है वह इन की रक्षा करने वाला 'विन्द' है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि जिस आकार में तू मुझे देखता है इस मे तू मुझे हमेशा पकड नहीं सकता इस लिए मेरे असली स्वरूप को पहचान। **''अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।''**

(गीता अ० १०।२०) इस चित्त में चेतन रूप जो आत्मा है, वह मैं हूं। मैं आत्मा रूप से सब के हृदय में विराज मान हूं। 'कृष्ण' कृष माने प्रतीति मात्र, माया मात्र। ण माने नास्ति। यह नाम रूप सब मिथ्या है। अस्ति भाव में आई हुई माया। कार्य नाम रुप। यह नाम रूप क्या है ? सब माया का कार्य है। यह माया कार्य रूप में और कारण रूप में मिथ्या ही है। इस सारे ब्रह्माण्ड का नाम और रूप मिथ्या है तो इस का कारण माया भी मिथ्या है। इस का व्याख्यान करने वाला कृष्ण। अर्थात तू नाम रूप नहीं है। यह णकार माया मात्र प्रतीत होने वाले प्रपंच का निषेध करता है। **"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये, यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।"** (गीता अ० ७।३) हजारों में से कोई एक इस सत्य की खोज करता है और उन खोज करने वाले हजारों में से कोई एक इस तत्त्व को प्राप्त होता है। मुमुक्षु नाम रूप को मिथ्या मानता है और इस में जो चेतन है इस नाम रूप का अधिष्ठान है उस को अस्ति भाति और प्रिय रूप से सत्य मानता है। मुमुक्षु सदा ऐसी भावना करे कि "मैं चेतन आत्मा हूं।" यही ब्राह्मी भावना है। यही तुम्हें मोक्ष की ओर ले जाएगी।

यह माया परमात्मा की सत्ता में ही कार्य करती है। परन्तु सामान्य जीव केवल माया के कार्य को ही देखते हैं सत्ता रूप से परमात्मा को नहीं जानते। यह पांच फुट की पत्नी जब अपने पति का हित ही सोचती है तो ब्रह्माण्ड के अधीश्वर भगवान की जो पत्नी माया भगवती है वह भी अपने पति के स्वरूप को सब को नहीं देखने देती। परन्तु स्वयं उस की सत्ता में ही रहती है। भगवान कहते हैं "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।" जो मेरी शरण में आ जाते उनको मेरी माया तंग नहीं करती। कष्ट नहीं देती। नहीं तो यह कामनाएं मनुष्य को जीत लेती हैं। जीव इन के सामने हार जाता है। कामनाओं को जीतने का केवल एक ही मार्ग है। सत्य रूप चेतन आत्मा को पकड़ो तभी कामनाओं का त्याग कर सकोगे। श्रुति कहति है **"कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र, पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।"** मुडंकोपनिषद ३।२।२) तद् तद् जो विषय हैं उन की कामना पूरी हो गई तो धीरवीर मुमुक्षु है वह आप्तकाम हो जाता है। तब कामनाएं धीरे २ शान्त हो जाती हैं। नहीं तो कामना कर्म को प्रेरित करेगी। कर्म फल

को प्रेरित करेगा। अविद्या कामना को प्रेरित करती है। इस प्रकार यह जीवात्मा अविद्या, कामना कर्म और फल से पुनः २ जन्म मरण के चक्कर में घूमता रहता है। जहां जहां भी जाता है वहां ऋंगी भृंगी के रूप में काम क्रोध लोभ मोह शोकादि इस जीव की पिटाई करते रहते है। जो धीर वीर मुमुक्षु होता है वह अपनी वासना कों रोकता है। शोक मोह आते हैं तो दरवाजा नही खोलता। "**एकं ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतःक्वचित्, आस्तेनधीरवीरस्य भङ्गः सङ्गरकेलिषु**। (श्री श्री हर्ष-खंडनखंडखाद्य परिच्छेद प्रथम।१५) इस संसार रूपी संग्राम में एक ही ब्रह्म रूपी अस्त्र से अपनी सुरक्षा करता है। इस प्रकार तत्त्व विचार के द्वारा रुकी हुई कामनाएं तुम्हें परेशान नहीं करेंगी। जैसे विवेक शील पत्नी अपने पति से दो चार बार बोलेगी। यदि पति उत्तर नहीं देता तो चुप हो जाती है। अपनी बुद्धि से ही काम करने लगती है। इसी प्रकार यह बुद्धि भी जब देखती है कि यह जीव मेरी नहीं सुनता तो वह इसे छोड देती है। यह जीव तब मोक्ष की ओर बढ जाता है। अपने कान बन्द रखो। अपने मन को भी शान्त रखो। शान्त मन से तुम तत्त्व विचार करने में समर्थ बनोगे। 'कृतात्मा' का तात्पर्य जिस ने आत्मा के रूप में भासने वाले मन को, बुद्धि को, इन्द्रियों को वश में कर लिया है उस ने आत्मा को जीत लिया है। जितात्मा ही कृतात्मा है। वही मोक्ष मार्गगामी है। इसी जीवन में मुमुक्षु अपने मन को मुक्त कर लेगा तो या तो इस का पुनर्जन्म होगा ही नहीं और यदि होगा भी तो पुण्य लोक में ही होगा।

जैसे मस्त हाथी भारी बोझ लाद कर चला जा रहा है। महावत भी कठोर है। चलते चलते ही कोई लता मिल जाती है तो उसे अपनी सूंड से लपेट कर अपनी भूख शान्त कर लेता है। इसी प्रकार जीव के भाग्य से या ईश्वरानुग्रह से यह ज्ञानामृतलता मिल जाती है तो यह जीव इसे पाकर शान्त हो जाता है और आगे बढ जाता है। इस ज्ञान को पकड कर जब मुमुक्षु आगे बढता है तो इस की अविद्या, कामना, कर्म, फल जन्मादि शिथिल हो जाते हैं। जगदगुरू शंकराचार्य विवेक चूडामणि (श्लोक ३) में कहते हैं "**दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रह हेतुकम्, मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरूषसंश्रयः**।" यह तीन चीजे संसार में बहुत दुर्लभ हैं। पहले तो मनुष्य जन्म मिलना फिर मोक्ष की इच्छा जाग्रत होना और

उस पर भी किसी महापुरूष का आश्रय मिलना। जैसे मां का आश्रय पाकर बच्चा धीरे २ बलवान होता है इसी प्रकार सदगुण का आश्रय प्राप्त कर के मुमुक्षु आगे बढ जाता है।

लोग कहते हैं भगवान बडा भोला नाथ है। देखो तो उस ने इस जीव के साथ यह पेट रूपी ऐसी हंडी लगा दी है। जिस में नीचे छेद कर दिया और कहा जा बेटा इसे भर कर ले आ। अब बेटा लगा है इस को भरने में कई जन्म बिता दिए। पर सोचा यह कभी भरने वाली है ? बस भरते जाओ और भरते जाओ। यह कभी भरने वाली है नहीं। बेटा इसी चक्कर में घूमते घूमते परेशान हो गया। मनुष्य बनना मुमुक्षु होना और महापुरूष की शरण प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। इस जगत में जीव को वासना ही सुन्दर दीखती है। जहां वासना होती है वही सुन्दर दीखने लगता है। पर सोचो सब से सुन्दर कौन है ? सब से सुन्दर यह तुम्हारी आत्मा ही है। जहां तक भेद दृष्टि होगी वहां तक राग द्वेष नहीं रहते। जीव जब अभेद दृष्टि में पहुंच जाता है तो उस का राग द्वेष शोक मोह ऊंच नीच की भावना सब समाप्त हो जाती है।

मंत्र कहता है यह अन्न ही ब्रह्म है। अन्न की रक्षा हेतु उस परमात्मा ने जल की सृष्टि की। जल अन्न से भी उत्तम है। महान है। अन्न के बिना प्राणी कुछ समय तक प्राणों की रक्षा कर सकता हैं पर जल के बिना जीवन नहीं। जैसा श्वेतकेतु के दृष्टान्त से स्पष्ट हैं। एक बार चक्रायण ऋषि अकाल के समय भूख से व्याकुल हो कर कहीं जा रहे थे। एक नीच जाति का व्यक्ति हस्तिपिक रास्ते में मिल गया। उस के पास उडद की दाल थी जिसे वह खा रहा था। चक्रायण ऋषि ने सहन नहीं हुआ। उस से खाने को मांगी। तो उस ने कहा महाराज मैं नीच जाति का हूं और यह दाल भी मेरी जूठी है। चक्रायण ऋषि के प्राण भूख के कारण छटपटा रहे थे। वह बोले प्राणों की रक्षा के लिए उच्छिष्ट की चिन्ता नही होती तुम दे दो क्यों कि मेरे प्राण संकट में हैं। हस्तिपिक ने थोडा दे दिया ऋषि ने खा लिया। जब उस ने जल पीने को दिया तो मना कर दिया क्यों कि जल तो अन्यत्र भी हो सकता है। वह विश्वात्मा ही इस विश्व को जीवन देने के लिए अन्न रूप में प्रगट हुआ। और अन्न की रक्षा के लिए जल की सृष्टि की। परन्तु वह स्वयं सब की अन्तरात्मा

रूप में सब में समाया हुआ है। ओत प्रोत है। मुमुक्षु जब सब जगह अपने स्वरूप भूत चेतन को देखता है तो शोक मोह से पार हो जाता है । "प्राणस्य प्राणः" जो प्राण का भी प्राण है उस का आश्रय जब जीव लेगा तो माया के बाजार से पार हो जाएगा । जिस २ बाजार में यह मन जाएगा शोक मोह ही ले कर आएगा । अपने स्वरूप की स्मृति करो । यही जीवन का सार है ।

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को समझाते हुए कहते हैं हे नारद इस पृथ्वी की शोभा जल से ही है । यह जल ही सब पेड पौधो वनस्पतियों में रस रूप से समाया हुआ है । एक वर्षा भी यदि अच्छी प्रकार से हो जाती है तो प्राणियों का जीवन आनन्द से भर जाता है । यह अन्न जल का साकार रूप है । यह पृथ्वी जल का ही मूर्त रूप है । यह पर्वत भी जल का ही साकार रूप है । यह जल ही इन सब में समाया हुआ है । इस लिए तुम इन सब रूपों में जल की ब्रह्म रूप से उपासना करो ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

२५।५।८५

प्रवचन सं. ३६

"ॐ आप एवेमा मूर्तयियं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति"

(छान्दो. ७ १०।१)

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को समझाते हुए कह रहे हैं कि इस जल की ब्रह्म रूप से उपासना करनी चाहिए । यह ब्रह्म ही इस रूप में प्रगट हुआ है। जिस परमात्मा से यह बिश्व प्रगट हुआ है उस की प्रशंसा करते हुए महर्षि अन्न का ब्रह्म भाव प्रगट कर रहे हैं । कहते हैं तैत्तिरीय श्रुति है "एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुप-

सङ्क्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य इमांलोकान्कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्साम गायन्नास्ते हा ३ बु हा ३ बु हा ३ बु ।।" (वल्ली ३।१०।५) ऋषि ब्रह्म आत्म भाव का साक्षात् करता है । ब्रह्म की खोज करते करते पांच कोशों से परे जो तत्त्व है उस में प्रवेश कर जाता है। ब्रह्माकार वृत्ति से अज्ञान आवरण भङ्ग करना पडेगा । सब से प्रथम आवरण तो यह स्थूल शरीर है । इस संसार में जो भी मिलता है इस शरीर को ही मिल कर चला जाता है । पति पत्नी जीवन भर साथ रहते हुए भी एक दूसरे के वास्तविक रूप को नहीं समझते । केवल शरीर में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं । अन्नमय कोश यह स्थूल शरीर है । अन्न से ही उत्पन्न होता है । अन्न से ही बढता है । मुमुक्षु इस अन्नमव कोश का विवेचन कर के इसे अनात्मा समझ कर आत्म भाव में आगे बढ कर प्राणमय कोश में पहुंच जाता है । आत्मा सर्वथा स्वतंत्र और सर्वथा निराश्रय है ऐसा विवेक कर कें मुमुक्षु जान लेता है कि यह प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं । यह प्राण तो वायु का विकार है और आत्मा के आश्रय में ही क्रियाशील है क्यों कि यह निराश्रय नहीं रह सकता । यह प्राणमय कोश जीव को रोकता है यह भी आवरण है मुमुक्षु इस का अतिक्रमण कर के आगे बढता है । इस से आगे तेजोमय विद्युत पुरूप मिला यह मन बडा तेजस्वी है । बडे २ शूरवीर भी इस मन से डर जाते हैं । देखते नहीं हो अर्जुन कितना वीर होते हुए भी महाभारत के युद्ध में कृष्ण के सामने रो रहा है । "चञ्चलं ही मनः कृष्ण प्रमाथि वलवद्दृढम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम ।" (गीता. ६।३४)

यह मन इतना बलवान है कि कोई हाथ न होते हुए भी जीव को पकड लेता है । अर्जुन कहता है हे कृष्ण इस मन को नियन्त्रण में लाना तो वायु से भी दुष्कर है । पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन मनोमय कोश है यही जीव भाव का कारण है । जीव को आगे जाने नहीं देता । पर ऋषि इस का भी अतिक्रमण कर के आगे बढ जाता है । वह ब्रह्मविद्या के प्रकाश में देखता है कि यह मन है क्या ? इस प्रकार ब्रह्मभाव का चिन्तन करते २ इस को अनात्मा समझ लेता है और इसे मिथ्या जान कर आगे बढता है । आगे विज्ञानमय कोश है तेजोमयी बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियां यह विज्ञानमय कोश है । यह बुद्धि भी कम चतुर

नहीं। यह भी जन्म जन्मान्तर के संस्कारो की पिटारी खोल कर बैठ जाती है। जीव को आगे बढने से रोकती है। परन्तु ऋषि इस बिज्ञानमय कोश का भी अतिक्रमण कर के आगे बढ जाता है। तब आनन्दमय कोश में पहुंच जाता है। प्रिय मोद प्रमोद बुद्धि की वृत्तियां और अविद्या यह आनन्दमय कोश है। यह अविद्या जीव को अपने स्वरूप से तो दुख नहीं देती पर उसे कुछ समझने नहीं देती। जीवन में दुख कब होता है। कुछ न समझ पाना ही सब से बडा दुख है। अविद्या ने द्वार बन्द कर रखा है। नहीं समझना भी कुछ अच्छा है पर बिल्कुल ही कुछ न समझ पाना अच्छा नहीं। यह सुषुप्ति अवस्था है। यह आनन्द का प्राचुर्य्य है पर है यह भी माया का ही विकार। जीव अविद्या के घेरे में ही रहता है। महर्षि अनुभव करते हैं कि जो इस आनन्दमय कोश को भी देख रहा है। जो इस का साक्षी है वह कौन है? इस प्रकार चिन्तन करते २ ऋषि को साक्षात्कार होता है और आश्चर्य में ऋषि गा उठता है **"अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्! अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।** (तैत्तिरीयोपनिषद् खंड ३।२०।६) आश्चर्य, मैं ही अन्न हूं मैं ही अन्न हूं मैं ही भोक्ता हूं। ऋषि महान आश्चर्य में प्रसन्न होकर "हा३वु हा३वु हा३वु" गाने लगता है। हा३वु संगीतमय स्वर है। दोनों रूपों में मैं ही माया के द्वारा प्रगट हुआ हूं। मैं ही अन्न हूं मैं ही अन्नाद हूं। थाली में जो भोजन है पूरी परौंठा जलेबी सब मैं ही हूं। मैं ही खा रहा हूं। अन्दर जा कर रस रूप हो कर "मैं" अन्नाद ही बन जाता हूं। जीवन को देने वाला भी यही है। और जीवन भी यही है।

भोग्य भोक्ता और भोग "त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्म एतद्" सब ब्रह्म ही है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिस की सत्ता में जी रहा है। सब रूपों में वह ब्रह्म ही प्रगट हुआ है। **अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य पूर्वं च**। सत् दीखने वाले संसार में मैं ही प्रथम जन्मा हूं। चेतन के बिना यह सब कुछ भी नहीं। अन्न ब्रह्म संकल्प करता है कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए हूं। जो दूसरों को न देकर स्वयं ही मुझे खाता है या खाना चाहता है उसे मैं ही खा जाता हूं। "यो माददाति स इदेव मा ३ वा:"। इस संसार में सब एक जैसे तो होते नहीं। कोई अमीर होते हैं कोई गरीब होते हैं। महान ऋषियों के विचार बड़े क्रान्तिकारी थे बड़े २ राजा महाराजा से यज्ञादि करवा कर धन और अन्नादि बंटवा

देते थे। जब प्रजा को खाने को नहीं मिलेगा। तो वह झगड़ा तो करेगी। अन्न ब्रह्म कहता है जो भूखों को न देकर स्वयं ही खाएगा अथवा जो मुझे छिपा कर रखेगा। जो मेरे स्वरूप को आवृत कर के रखेगा। उसे मैं खा जाऊँगा। लोक जीवन में जीवन कैसे set करना है। सब को सुख लेने का अधिकार है सब को जीने का अधिकार है। तुम दूसरे की रक्षा कर के उस को सुख देकर जी सकते हो। पर दूसरे का सुख छीन कर जीने का अधिकार किसी को नहीं है। सब को सुख दो। बांटकर खाओ जीओ जीने दो। तभी शान्ति से रह सकोगे।

इस प्रकार अन्न ब्रह्म की रक्षा के लिए विधाता ने जल की सृष्टि की। वर्षा न होने से प्राणियों का जीवन संकट में पड़ जाता है। जिस परमात्मा का यह संसार है वही सब प्राणियों का जीवन है। वही सब को खाना दाना देता है। सुन्दर वर्षा हो जाने से सब के प्राण प्रसन्न हो जाते हैं। एक वैज्ञानिक तथ्य है इस जगत में दो प्रकार के पदार्थों को मानते हैं। एक साकार है और एक उस का निराकार रूप होता है। बहुत लोग सोचते हैं कि निराकार साकार कैसे हो जाता है। विचार करो कि तुम्हारा क्या स्वरूप है? इस शरीर के अहंकार को छोड कर केवल अहंभाव में तुम्हारा कौन सा आकार है? साकार रूप में तो यह स्थूल रूप है और निराकार रूप में तुम्हारा अहंभाव है। इसी प्रकार पानी वादलों में घूम रहा है उस का क्या स्वरूप क्या आकार है? वह पानी का निराकार रूप है। वाष्प रूप, पानी और वर्फ की शिला यह तीन पानी के रूप हैं। बर्फ की शिला में देखो। कैसा आकार है? पर सोचो क्या वास्तव में इस में कोई आकार है! थोड़ी देर रख कर देखो पानी का पानी ही बन जाएगा। वर्फ की वढी शिला को वीच में खोद कर गढ्डा कर दो और फिर देखो बाहर वर्फ और अन्दर पानी। अपने मे आप ही दैठा है। यह पानी का निराकार और साकार रूप है। ऐसे ही निराकार साकार वन जाता है। यह पानी ही पेड पत्र पुष्प और फलके रूपमे पहुच जाता है। फल तैयार हो कर फ्रिज में पहुंच गया। फिर हमारे भोजन के साथ अन्दर गया। शरीर धीरे २ वड़ा होता गया।

फिर धीरे धीरे सूखने लगा। पानी सूख गया तो वृद्ध हो गया। अपने को बुढ्ढा बोलने लगा। प्रकृति ही परमात्मा उस चेतन आत्मा की सेवा कर रही है। शरीर के आकार में भी पानी ही जमा है। जितना अधिक जमता जाएगा उतना ही शरीर मोटा दीखेगा। यह निराकार ही साकार हो रहा है और साकार ही निराकार हो रहा है। जब प्रकृति ही इतना सब करने में समर्थ है तो सोचो इसका अधिष्ठाता चेतन, जिस की सत्ता में यह सब चल रहा है, वह कितना सामर्थ्यवान कितना महान होगा। श्रुति है "**मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाजंकथञ्चन। तत्त्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यताममृतं व्रजेत्।**" (मांडूक्यकारिका प्र ३।१९)

माया ने एक ही तत्त्व से लडकी बनाया, बहिन बनाया पत्नी बनाया फिर मां बना दिया। नाना सम्बन्ध होते हुए भी तत्त्व एक ही है। यह नानात्व केवल कल्पना मात्र है। जो अमृत है व मर्त्य कैसे हो सकता है? कोई भी पदार्थ अपने स्वरूप का त्याग नहीं कर सकता। अग्नि को ठंडा करने का कितना भी प्रयत्न करो। क्या वह ठंडी हो जाएगी? अग्नि कभी शीतल नहीं हो सकती। जल का स्वभाव शीतल है वह शीतल ही रहेगा। 'कितना भी गर्म करो पुनः शीतल ही हो जाएगा। जब यह पांच भूत अपनी प्रकृति को नहीं छोड सकते तो यह चेतन भला अपने स्वभाव को कैसे छोड सकता है? यह चेतन भी अपनी प्रकृति को छोडता नहीं। यह सत् चित् आनन्द स्वरूप है। यह अमृत है। मर्त्य नही हो सकता भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं "नासतो विद्यते भावो" सत् कभी असत् नहीं हो सकता और असत् कभी सत् नहीं हो सकता। असत् का कभी जन्म सम्भव नहीं और सत् का कभी नाश नहीं हो सकता। यह सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा अमृत है। इस की मृत्यु कभी नहीं हो सकती। यह अज है इस का जन्म भी नहीं। साकार भाव की केवल प्रतीति मात्र है। यह प्रतीति मायिक है। जैसे खा पीकर सोये तो लगे स्वप्न देखने। वहां शेर भी देखा। भय भी हुआ। मित्र भी मिल गया। सुख भी हुआ। जगने पर सुख भी नहीं दुख भी नहीं। इसी प्रकार जब तक मुमुक्षु ज्ञान रूपी प्रकाश में नहीं आएगा तब तक सुख दुख प्रतीत होते रहेंगे। परन्तु विवेक जाग्रत हो जाने पर इन की निवृत्ति हो जाती है। सत् की मीमांसा करो। इस सत् को पकडो। नहीं तो

यह जीवन हवा की तरह निकल जाएगा। यही जीवन का नाटक है। मुमुक्षु सावधान रहे।

अपने में अपने ही खेल रहे हैं। माया बीच में माध्यम बन गई है। इस से अपने असली स्वरूप को भूल गये। देवताओं के शरीर भी जलमय होते हैं। देवता "अपमयं देवशरीरम्" जल रूप होते हैं। जब देवता को अपनी मृत्यु दीख जाती है तो वही पानी हो कर पिघल जाता है। इस प्रकार यह जल अपने स्वरूप में यद्यपि निराकार है पर जगत में सब आकार पानी के ही आकार हैं। यह पेड फल फूल आदि सब जल ही है। तुम्हारे शरीर भी जल का ही साकार रूप है। यह वृद्धावस्था क्या है? वर्षा कम होने लगी और पानी उडने अधिक लगा। असली जीवन तो चेतन ही है। जब तक वह है सब प्रिय है। मुमुक्षु सावधान हो कर सत्य की खोज करे। कार्य से कारण की खोज करते २ मुमुक्षु तत्त्व तक पहुंच जाता है। दृष्टि उस सत्य पर रखो और जगत में व्यवहार करो हे नारद इस जगत में यह सब आकार प्रकार पानी के ही हैं जो इस तत्त्व को जान जाएगा, उस की सब कामनाए सिद्ध हो जाएंगी। जो जलतत्त्व की ब्रह्म रूप से उपासना करेगा वह ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो जाएगा। जिन २ लोकों में जल की प्रतिष्ठा है वह वहां २ तक जाने में कामचारी, इच्छाचारी हो जाएगा। इस लिए तुम अब ब्रह्म की जिज्ञासा करो।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

२६-५-८५

प्रवचन सं० ३७

"ॐ स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामांस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगवो ऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयो ऽस्तीतितन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥"

(छान्दो० ७ १०।२)

महर्षि नारद ने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन इस अप से भी कोई महान है कृपया समझाईए । भगवान सनत्कुमार बोले हां अप से महान तेज है। इस वर्णन का अभिप्राय यह है कि इस जगत में कार्य कारण भाव दीखता है। जैसे माता पिता बच्चे के जन्म में कारण होते हैं । कार्य कारण भाव यह स्पष्ट करता है कि कारण के बिना कार्य सम्भव नहीं यदि कारण नही होगा तो कार्य नहीं होगा और यदि कार्य दीखता है तो उस का कोई कारण अवश्य होगा । अप नहीं होगा तो अन्न नहीं होगा । संसार का जीवन जल है । अमर कोश में कहा "जीवनं भुवनं वारि" "भवन्ति भूतानि यस्मिन् भुवनं । वारयति दुखानि वारि ।" जो जीवन में दुख से दूर रखे । यह पानी ही अन्न रूप में दीखता है। "नियतपूर्ववृति कारणं" नियम है कारण को कार्य से पहले रहना पडेगा। यद्यपि उस में कारण पना कार्य के सम्बन्ध से ही आएगा अर्थात् कारण भी वह तभी कहलाएगा जब कार्य रूप में दिखाई देगा । अन्न तो समय पर ही होगा पर पानी पहले ही मेघों के रूप में खडा है । "कारणं कार्यं व्याप्नोति" कारण कार्य को अपनी सत्ता में रखता है । जैसे ब्रह्म सब का जीवन ही जीवन है किसी की मृत्यु नहीं ऐसे ही यह पानी भी सब का जीवन ही है । हां अपनी मूर्खता से भले ही कोई जल में डूब कर आत्महत्या कर ले । जिस का यह जगत है वह स्वयं ही नाना रूप धारण कर के दिखाई देता है । सर्वत्र वह ब्रह्म ही ब्रह्म है । जैसे हलवाई दीवाली पर चीनी की कितने प्रकार की चीजे बना लेते हैं । चीनी की देवी, चीनी का भूत, चीनी का गणेश, चीनी का घोडा गधा हाथी आदि अनेक आकार प्रकार बना देता है । परन्तु इन सब में तत्त्व तो एक चीनी ही है । बाकी सब बाहर के भिन्न २ आकार प्रकार हैं । अब खरीदने वाले अपनी २ वासना के अनुरूप खरीद लेते हैं । असली तत्त्वज्ञान दृष्टि से दीखता है । मूढ प्राणी तत्त्व को नहीं देखता । गीता में कहा है "**उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।**" (गीता. १५।१०)

भगवान कृष्ण स्वयं अपनी वाणी से अर्जुन को समझाते हैं कि इस महान ब्रह्म को खोजने में कठिनाई क्या है ? जब सब में वही समाया हुआ है । अपने शरीर में ही देखो सब वही व्याप्त हो रहा है । नाम रूप में भेद दृष्टि है किन्तु तत्त्व दृष्टि से वह एक ही है । ऐसे ही स्वर्ण के दृष्टान्त से समझो । कंगन

हारादि स्वर्ण से बाहर कुछ नहीं। स्वर्ण ही सब आकारों में दिखाई दे रहा है। जैसे पानी ही अनेक रूप धारण कर के सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है। कारण ही कार्य में व्याप्त हो रहा है। घडा लेने वाला बाजार से पैसे दे कर ठोंक बजा कर लाया। अब यदि घडा अहंकार से अपनी मम्मी (मिट्टी) से लड पडे की देखो मैं कितना काम कर रहा हूं। तुम तो बेकार ही पडी थी। मम्मी ने कहा अच्छा मैं चली जाती हूं फिर तुम काम कर के दिखाओ। अब सोचो कि मिट्टी के निकल जाने पर घडा क्या रह जाएगा ? वास्तव में भेद केवल बुद्धि में है वस्तु में कोई भेद नहीं। जैसे कंकण अंगूठी आदि का आकर जैसे घडे का आकार सच्चा नहीं, ऐसे ही भेद भी सच्चा नहीं। नारद ने पूछा था हे भगवान जल से बडा कौन है ? तेज बडा है। पानी का कारण तेज है।

तेज की श्रुति व्याख्या करती है। कारण की जिज्ञासा नारद ने की। जिस के बिना जल का होना सम्भव नहीं वह क्या है ? महर्षि बोले यह तेज ही जल का कारण है। यह तेज सारे ब्रह्माण्ड मे समाया हुआ है। यह महान सूर्य, श्रुति कहती है "**सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै र्बाह्यिदोषैः।**" (कठोपनिषद अ. २।२।११) तेजोमय है। परमातमा ने एक ऐसा महान तेजोमय बल्ब बनाया है। यह सूर्य मिलन से मलिन और पवित्र से पवित्र पदार्थो को प्रकाश दे रहा है। पर उन की मलिनता या पवित्रता से सूर्य प्रभावित नहीं होता। यह महान सूर्य किसी के गुण से गुणी नहीं और किसी के दोष से दूषित नहीं होता। मंत्र आगे कहता है "**एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।**" ऐसे ही सर्व भूतो की अन्तरात्मा भी एक ही है वह किसी बाह्य दुःख से लिपायमान नहीं होता। किसी की पवित्रता से पवित्र नहीं होता। किसी की मलिनता से मलिन नहीं होता। यह महान आत्मा जो सूर्यो का भी सूर्य है वह किसी के सुख दुख से लिपायमान नहीं होता। क्यों कि सब उस की पकड में हैं पर वह किसी की पकड में नहीं। इस सत्य चेतन के अन्दर कोई गुण नहीं कोई दोष नहीं। जैसे आकाश को कोई पकडना चाहे तो पकड नहीं सकता। ऐसे ही यह महान सूर्य तेज ब्रह्म किसी की पकड में नहीं। यह सब दोषों की पकड से परे है। मुमुक्षु को अहंकार की निवृत्ति करना है।

ब्रह्मविद्या का कार्य तुम्हें ब्रह्म बनाना नहीं केवल अहंकार की निवृत्ति करना है। जो उपाधि पकड कर तुम जीवभाव में बंधे हो उसे हटाना मात्र है। जितना उपाधि की पकड में रहोगे उतना ही तुम्हारा स्वरूप छोटा दीखेगा। उपाधि जैसे २ हटती जाएगी, तुम्हारा सत्‌चित्‌आनन्द स्वरूप व्यापक दीखने लगेगा। आनन्तानन्त रूप दीखने वाला कार्य कारण से बाहर कुछ भी नहीं। यह कपडा तन्तु ही हैं। तन्तु निकाल लेने पर कपडा कुछ भी नहीं। देखने मात्र की सृष्टि है। वेदान्त में सृष्टि दृष्टि विचार है। यह सृष्टि केवल दृष्टि मात्र है। दृष्टि हटते ही सृष्टि गायब हो जाती है। भगवान सनत्कुमार नारद को इस रहस्य को स्पष्ट करते हैं। एक वैज्ञानिक तथ्य समझाते हैं। यह तेज काम क्या करता है। यह तेज वायु को रोक लेता है। अन्तरिक्ष में वायु पानी के कणों को उठाकर रखता है। सूर्य का तेज पानी को अपने मे भरलेता है। जब यह सूर्य वायु को रोक लेता है तो गर्मी बढ जाती है। इधर सूर्य समुद्रका पानी अपनी किरणों में भर लेता है। और वायु को छोड देता है। तब जो जल अभी तक सूक्ष्म परमाणु रूप में था अब घनीभूत हो कर बादलों के आकार में आजाता है। परमात्मा ने सोचा कि यदि यह ऐसे ही रहा तो बर्फ बन जाएगा। सारे ब्राह्मण्ड का जीवन मुश्किल हो जाएगा तो उस ने विद्युत के चमकते ही गर्ज तर्ज के साथ बादल वर्षा रूप में जल बरसाने लगे। श्रुति है **"य सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि, दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।"** (मुंडकोपनिषद २।२।७)

श्रुति कहती है "स सर्वज्ञ" वह सर्वज्ञ है। जगत के सामान्य रूप को भी जानता है विशेष रूप को भी जानता है। कहां कब क्या हो रहा है, होना चाहिए, उसको कब ज्ञान है। उस की महिमा अनन्त है। उस के कार्य अनन्त हैं। वह सर्ववित् है। ऐसा वो महान ब्रह्म वही तुम्हारी अन्तरात्मा है। "व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः"। महान आकश में व्याप्त है। 'एष दिव्ये ब्रह्मपुरे' इस शरीर को श्रुति ब्रह्मपूर कह रही है। इस तुम्हारे शरीर के हृदयाकाश में चिदाकाश में वह महान परमात्मा तुम्हारी अन्तरात्मा बन कर बिराजमान है। मुमुक्षु उस ब्रह्म का, उस विश्वात्मा का ध्यान अपने हृदयरूपी चिदाकाश

में करे। श्रुति यह स्पष्ट रूप से निर्देश करती है। जो जितना बड़ा होगा, महान होगा, उस का खेल भी उतना ही महान होगा। यह सब जगत परमात्मा का खेल है। इस सारे ब्रह्माण्ड को water supply करने के लिए परमात्मा ने movable टंकी बनाया है। इस वायु में पानी भर कर वह पूरे ब्रह्माण्ड को Supply करता है। पहले समुद्र से अपनी किरणों के द्वारा वह जल भरता है। वायु को रोक कर तेज अपने अन्दर पानी भरता है। तब वायु को छोड़ देता है। जल सूर्य की राश्मियों में भर है। वायु इन किरणों का मन्थन कर के बादल के रूप में धनीभूत हो जाता है। तब बिजसी चमकने लगती है। लोग कहते है अब वर्षा होगी। जल का कारण तेज है। यह तेज ब्रह्म ही है। इस ब्रह्माण्ड में सब से महान तेजोमय पिण्ड सूर्य है। चन्द्रमा और तारे भी तेजोमय हैं। परन्तु सूर्य का भी सूर्य तुम्हारी आत्मा है। "ज्योतिषामपि तज्योतिः" गीता में भगवान कहते हैं "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेखिलम् यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥" मैं ही सब ज्योतियों की ज्योति हूं। भौतिक ज्योति जड़ ज्योति है। यह महान सूर्य भी अपने स्वरूप में जड है। श्रुति है **"य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्याऽऽदित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येषत आत्मा अन्तर्याम्यमृतः।** परन्तु वह परमात्मा चेतन रूप इस सूर्य की भी आत्मा है। वही तुम्हारी आत्मा है। वही अमृत है। चिद् ज्योति है।

हिन्दू संस्कृति में उपनयन संस्कार में बच्चे को गायत्री मंत्र का विधान है इस का तात्पर्य यही है कि इस ज्योति का ध्यान करो। बुद्धि के अन्दर जो ज्योति है, तेज का भी तेज है ऐसा ध्यान करना है। मुमुक्षु इस प्रकार अपनी अन्तरात्मा का ध्यान हृदयाकाश में करे। ध्यान रखो कि परम कारण के बिना कोई भी कार्य सम्भव नहीं। इस लिए दृष्टि कार्य से कारण में ले जानी है। परमात्मा भी पहले कारण को देखता है फिर कार्य की सृष्टि करता है। कुछ लोग दीपक जला कर उस की उपासना करते है। ज्योति की उपासना अच्छी है परन्तु यह भौतिक प्रकाश है। जड़ प्रकाश की उपासना से चित् प्रकाश की उसासना श्रेष्ठ है। इस लिए मुमुक्षु

उस चेतन ब्रह्म की अपने हृदय में भावना करे। केवल दीपक की ज्योति जला कर नहीं देखे । कभी २ एक टक इस ज्योति को देखते रहने से अन्धा होने का भी भय रहता है। सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा का ब्रह्म रूप से ध्यान करो।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ३८

२७ ५।८५

"ॐ तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचती नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापःसृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिरा ल्हादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ।।"

(छान्दो० ७।११ १)

भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते हुए कहते हैं कि तेज से वृष्टि होती है और उस से अन्न होता है। उम तेज को ऐसा मत समझो कि यह तेज केवल सूर्य चन्द्रमा या अग्नि का तेज है। यह तेज परमात्मा का ही तेज है **"पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चस्मि तपस्विषु ।।"** (गीता अ. ७।९) यह तेज सारे ब्रह्माण्ड में समाया हुआ है। भूमि का तेज यह सुगन्धि है। अपने शरीर में देखो जरा सा घाव होने से दुर्गन्ध आने लगे तो तुम्हारे पास कोई ठहर नहीं सकता। तो सोचो कि यदि सारी पृथ्वी मे से दुर्गन्ध आने लगें तो हाल क्या होगा ? सत्य की

खोज किए बिना आगे बढना असम्भव है। उस सत्य की खोज के लिए साधन रूप मे चित की कोमलता आवश्यक है। ऐसा मत सोचो कि केवल मोक्ष के लिए ही कोमल चित्त की आदश्यकता है इस लोक में जीने के लिए भी कोमल चित्त जब होगा तभीसुखी रह सकोगे। लोक जीवन में रागपूर्ण चिन्न दया और श्रद्धा से जब पूर्ण होगा तो वह कोमल होगा। श्रद्धा का अर्थ है सत्य के प्रति दृढ विश्वास। इस के लिए कोमल चित्त अत्यन्त आवश्यक है।

आज का बुद्धिमान वैज्ञानिक आज प्रदूषण के लिए तो चिन्ता कर रहा हैं यद्यपि इस के लिए कई प्रकार के गैस उन्हों ने स्वयं ही उत्पन्न किया है। क्या एक नम्बर का मूर्ख है जिस शाखा पर बैठा है उसी को काटने लगे तो वही मूर्ख है। मूर्ख जिस शाखा पर बैठा हैं उसी को काटना शुरू कर दिया। उपकथा है विद्योत्तमा नाम की एक राजकुमारी थी बडी विदुषी थी उस कीं प्रतिज्ञा थी की जो उस को शास्त्रार्थ में हरा देगा उसी से वह विवाह करेगी। बड़े २ विद्वान शास्त्रार्थ के लिए जाए पर सब हार कर लौट जाते थे। राज्य के विद्वान बड़े निराश हुए कौर क्रोधित हो कर उन्हो ने योजना बनाई कि जो सब से मूर्ख हो किसी प्रकार इस का विवाह उसी से कर दिया जाए। ढूंढने निलेक। देखा एक मूर्ख एक पेड़ पर बैठा है और जिस शाखा पर बैठा है उसी शाखा को काट रहा है बस उन्हो ने सोचा इस से मूर्ख और कौन होगा? उस से कहा नीचे उतरो। बस उसे फुसला कर दरबार में ले गये और वहां जाकर कहा कि यह बड़ विद्वान हैं। पर बोलते नहीं। शास्त्रार्थ तो करेंगे पर मौन शास्त्रार्थ होगा। तैयारी हो गई। सब विद्वान भी इकठ्ठे होगये। राज कुमारीने एक उंगली खड़ी की मूर्ख ने दो उंगली खड़ी कर दी। विद्वानों ने निर्णय लिया कि ठीक है, राज कुमारी ने आत्मा एक बताया और इन का मत है कि जीवात्मा और परमात्मा दो हैं। अथवा प्रकृति और पुरूष दो हैं। पुनः राजकुमारी ने पांच उंगलियां दिखाई तो मूर्ख ने झट से मुक्का बांध कर दिखा दिया। बस निर्णय हो गया कि पांच ज्ञानेद्रियां हैं और मुक्का का तात्पर्य है उन्हे बांध कर रखो नियन्त्रण में रखो। अब मूर्ख का मतलब इस से कुछ भी रहा हो। बस विवाह हो गया। आगे जाकर कहते हैं यही मूर्ख विद्योत्तमा के द्वारा शिक्षित हो कर महाकवि कालिदास हुए।

तात्पर्य्य यह है कि आज का बुद्धिमाम Scintist यही कर रहा है। यद्यपि वह स्वयं भी इस बात से चिन्तित है और इस प्रदूषण को रोकने के लिए प्रयत्न शील हैं। इसी प्रकार इस भगवत तत्त्व का अनुसन्धान करना हो तो इस का पहला साधन इस पृथ्वी का सुन्दर गन्ध है। यह प्रगट रूप का भगवत् तत्त्व है। दूसरा यह महान जो सूर्य है यह महान परमात्मा का तेज है। सौर्य पिण्ड में जो तेज है वह केवल सूर्य का नहीं। सुन्दर फूल को खिलने के लिए अमुक मात्रा में गर्मी चाहिए। यह गर्मी उसे इस सूर्य से मिलती है। इस शरीर की सारी सुन्दरता इस चेतन की है। शरीर में से जो ज्योति वाहक आ रही है वह इस चेतन आत्मा की ही है। इसी बात को गीता के इस मंत्र में स्पष्ट किया है

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते" (गीता अ० १३।१७)

तम शब्द का अर्थ अविद्या है। अविद्या का अधिष्ठान वह महान परमात्मा है। वह परमात्मा माया से, तम से, परे है। इस ज्योति रूप, तजोमय परमात्मा की छाया में यह माया अपने अनेक रूप बनाती है और इस परमात्मा को ही ढक लेती है भगवान शिव को भक्त भोलानाथ कहते हैं। यह भोलानाथ तुम्हारी आत्मा बना तो उस की छाया में उस की सत्ता में यह शरीर अपना रूप बदलने लगा। शरीर ने कहा बच्चा तो यह अपने को बच्चा कहने लगा। शरीर ने कहा कुमार कहो तो अपने को कुमार मान लिया। तुम भोले कि यह भोला? जैसे २ यह रूप बदलता जा रहा है तुम अपने को वही मानते जा रहे हो। शरीर जवान हुआ तो तुम अपने को जवान कहने लगे। शरीर बुढ्ढा हो गया तो तुम बुढ्ढे बन गये। तीन सहेलियां रहीं बचपन में काठमांडो में इकठ्ठी रहती रही। विवाह हुए एक भातगांव चली गई एक भक्तपुर और एक बीरगंज। एक त्योहार आया तो तीनों यहां इकठ्ठी हो गई। एक दूसरे से पूछने लगीं कहो तुम्हारे 'वो' कैसे हैं। एक बोली क्या बताऊं बहुत भुलक्कड हैं सवेरे खाते हैं शाम को भूल जाते हैं। दूसरी ने कहा मेरे तो ऐसे हैं कि लेना तो भूलते नहीं पर देना भूल जाते हैं। तीसरी बोली मेरे तो वो ऐसे हैं कि मुझे ही भूलजाते हैं एक दिन आकर कहते हैं तू जमाना की भाभी है क्या? बस यही हाल इस जीव का है। माया ने कहा कि अपने को जीव बोलो तो जीव बोलना शुरू कर

दिया। अपने को ईश्वर बोलो तो ईश्वर बोलने लगा। मुमुक्षु को अपने असली स्वरूप का अनुसन्धान करना चाहिए और दृढ निश्चय करना है कि "मैं कौन हूं ?" अपने स्वरूप को आत्मरूप से जान कर ही मुमुक्षु इस मृत्यु को पार कर सकता है। नहीं तो इस माया से पार जाने का कोई मार्ग नहीं। **"तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"** (श्वेताश्वतरोपनिषद् अ. ३।८) मंत्र स्पष्ट कहता है कि मोक्ष के लिए ज्ञान के बिना अन्य दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। इस लिए बुद्धिमान मुमुक्षु श्रुति शास्त्र एवं गुरू के द्वारा अपने हृदय में ब्रह्म बोध उत्पन्न करे।

गीता में भी स्पष्ट किया **"ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।"** (गीता अ० १३।१७) वह परमात्मा सब के हृदय में विराजमान है। वह ज्ञान स्वरूप है। ज्ञातव्य अर्थात जानने योग्य है। वह ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है। "ज्ञानगम्यं" वृत्ति ज्ञान और स्वरूप ज्ञान। ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा उस परमात्मा का साक्षात्कार अपने हृदय में करता है। यह आंख तो बल्ब है। जब अन्दर से चेतन का प्रकाश आएगा तब यह आंख देखेगी। और देखेगी भी तो बाध्य रूप को ही देखेगी। इस आत्मा को जानने के लिए चेतन का प्रकाश बुद्धि में होना चाहिए। बाध्य नाम रूप में भेद करते २ सारी आयु पार कर आए पर अधिष्ठान चेतन की ओर ध्यान ही नहीं दिया। भगवान कहते हैं आत्म ज्ञान के बिना मोक्ष का कोई अन्य साधन है ही नही। **"यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।"**

जीवन के सारे धन्धे खाना पीना सुनना बोलना सब उसी की सत्ता में चल रहा है पर उस को जानने की चेष्टा कोई नहीं करता। बुर्के में आए बुर्के में जीए और बुर्के में ही सारा जीवन पार कर के चले गए। तत्त्व क्या है ? जाना ही नहीं। यह जो महान तेज है यह ब्रह्म से बाहर कुछ भी नहीं। सब ब्रह्म रूप ही है ब्रह्म का अर्थ है "व्याप्नोति सर्वम्" "आप्नोति सर्वम्" जो सब को अपनी सत्ता में सब को बांध कर रखे 'तद् ब्रह्म' वह सब को व्याप्त कर के बैठा है, पर कैसे व्याप्त किया है ? परमात्मा ने यह सृष्टि बनाई और उस में स्वयं प्रवेश कर गया। "तत् सृष्टवा तदेवानुप्राविशत्" श्रुति कहती है वह परमात्मा

सृष्टि कर के उस में प्रविष्ट हो गया । पर कैसे ? क्या जैसे लोहा अग्नि जैसा हो गया । अग्नि उस लोहे में प्रविष्ट हो गया । ऐसे ही ब्रह्म इस सृष्टि में प्रवेश कर गया । नहीं । यहां लोहा अपने आकार में है मान लो लोहा गोलाकार है तो अग्नि लोहाकार हो गई । परन्तु लोहे को अग्नि में से निकाला तो लोहा लोहा ही रहा और अग्नि अपने स्वरूप में लीन हो गई । अथवा जैसे घर बनाया और उस में प्रवेश किया ? ऐसा भी नहीं । ऐस होने से परमात्मा अलग और सृष्टि अलग । ऐसे परमात्मा और सृष्टि में भेद हो जाएगा । इस लिए ऐसा प्रवेश यहां नहीं यहां तो सृष्टि निर्माण ही उस परमात्मा में हो रहा है । परमात्मा में अन्यथा भाव की प्रतीति आचार्य सम्मत नहीं है । जैसे कपडा है । क्या कपड़ा बनाकर तन्तु उस में प्रवेश कर गया नहीं यहां तन्तु ही कपड़े के रूप में प्रगट हो गया । तन्तु के बिना कपडे की कोई सत्ता नहीं । कारण के बिना कार्य की सत्ता नहीं । सोने का कंकण है, हार है सब सोना ही है । स्वर्ण के बिनां कंकण या हार की कोई सत्ता नहीं । ऐसे ही जगत की आधार, अधिष्ठान ही तद् तद् रूप होकर भास रहा है । नाम रूप संज्ञा में ही भेद है तत्त्व में कोई भेद नहीं । नाम रूप संज्ञा को यदि न पकडो तो हार कंकणादि कुछ नहीं सब सोना ही है । जैसे पानी में लहर या बुद् बुदा पानी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पानी ही बुद् बुदे या लहर के रूप में दिखाई दे रहा है । इसी तरह यह जगत ब्रह्म का ही रूप है ।

"सयस्तेजो ब्रह्मे त्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतो"

अधिष्ठाना की ब्रह्म रूम से उपासना करो । जो तेजरूप ब्रह्म की उपासना करता है ब्रह्म का तेज उस में प्रगट होने लगताहै । ऐसा मुमुक्षु महान तेजस्वी होजाताहै । लौकिक दृष्टि से समझो अपना कोई प्रिय सम्बन्धी जब क्रोध की मुद्रामें बैठा होता है तो उस के पास बैठने से तुम्हारे अन्दर भी क्रोध प्रवेश करने लगता हैं । फिर तुम प्यार से नहीं बोल सकते क्रोधसे ही बोलोगे । श्रुति सच्चा विचार देती है कोरी कल्पना नही करती । सोचो यदि क्रोधीको देखकर तुम्हारे अन्दर क्रोध प्रवेश कर सकताहै तो महान तेजका ध्यान करने

से वह तेज क्या तुम्हारे अन्दर प्रवेश नहीं करेगा ? अवश्य करेगा ।

ब्रह्म भावना से मुमुक्षु महान तेजस्वी हो जाताहै । पर जबतक पूर्णज्ञान नहीं होगा कर्म क्षय तो होगा नहीं । पूर्ण ब्रह्म का ज्ञान होने से ही जन्म मरण का चक्कर छुटेगा । ऐसी तेज की भावना करने वाला तेजस्वी लोको में ही जन्म लेगा । इस का तात्पर्य्य यह नहीं कि उस का जन्म सौरमंडल में होगा । वहाँ सदा प्रकाश तो रहता है पर आग का गोला बन कर भी रहने से क्या होगा । यह मनुष्य लोक ही महान तेजोमय लोक है । तेजकी प्रतिष्ठा केवल मनुष्य के लिए ही है । अन्य किसी योनि में इस तेजकी प्रतिष्ठा नहीं । ऐसा मुमुक्षु इस मनुष्य शरीर में ही आएगा और महान तेजस्वी बनेगा । यहाँ इसको एक भौतिक प्रकाश मिलेगा दूसरा ज्ञान रूप प्रकाश मिलेगा । यहाँ आकर ही अविद्या की, तमकी निवृत्ति होगी । यह तेज ब्रह्म ही है । इस तेजका ध्यान करते २ शरीर छूटेगा तो दूसरे जन्म में जहाँतक तेजका प्रभाव है, जहाँतक तेजकी आवश्यकताका अनुभव हो रहा है । वहाँ तक इस की गति हो जाएगी । प्रथम तो मोक्ष ही हो जाएगा । यदि मानलो मोक्ष नहीं भी हुआ तो योगियोके कुल में, महान तेजस्वी ब्राह्मण कुल में जन्म लेगा । ऐसा जन्म दुर्लभ है । नारदने पुनः प्रश्न कर डाला कि भगवन इस तेज से महान भी कोई है ? महर्षि सनत्कुमारने कहा तेज से ऊपर भी है पर उसका व्याख्यान कल करेंगे आज सीधे होकर बैठो जोर से ओंकार बोलो और अपने हृदय में उस तेज ब्रह्म का ध्यान करो ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

२८-५-८५

प्रवचन सं. ३९

ॐ आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन श्रृणोत्याकाशेन प्र-

तिश्रृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आ-
काशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥''

छान्दो० ७।१२।१

भगवान सनत्कुमार नारद के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि इस तेज से महान आकाश है। क्यों कि श्रुति कहती है आकाश कारण है और तेज और वायु दोनों आकाश के कार्य होने से आकाश की सत्ता में हैं। कारण असीम होगा और कार्य उस कारण की सीमा में होगा। कारण कार्य को अपने में व्याप्त रखता है। मुमुक्षु कार्य से कारण की खोज करे। यह सूर्य यह चन्द्रमा यह अग्नि सब उसी महान चेतन के तेज से तेजोमय हो रहा है तैत्तिरीय श्रुति में भूतसृष्टि का प्रतिपादन किया है **''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः''** (तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली २/१) सूर्य चन्द्रमा और यह शरीर उस तेज के कार्य है। तुम्हारे शरीर की जो चमक है वह उस का अन्तरात्मा की है यह चमक जब तक ठीक रहती है तब तक ठीक परन्तु यदि मुह की चमक मन्द हो रही हो तो डाक्टर भी समझ जाता है कि अब वह अपना बिस्तर बांध रहा है तो वह कहता है कि बड़े डाक्टर को दिखा दो यह मेरे बसका नहीं।

''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति; भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया'' (गीता अ. १८/ ६१) वह परमात्मा सब भूतों के हृदय में बैठा है। 'हृदय' हृ-हरति बाहर से अन्दर ले जाना। द = अन्दर से बाहर फैंकना य = यमन करना = बीच में नियन्त्रण करना। आत्मा ही परमात्मा है वेदो में इसी आत्मा को परमात्मा कहा गया है। जैसे गवर्नमैंट किसी सिपाही की बहादुरी से प्रसन्न हो कर उसे लैफ्टीनैंट बना देती है। तो उस का पद विशेष हो जाता है। विशेषण से वस्तु विशेष हो जाता है। विशेषण हट जाने से वस्तु सामान्य रह जाती है। सामान्य मे राग द्वेष नहीं रहता। विशेष में राग द्वेष हो जाता है। जो राग द्वेष से परे है। रोने गाने से परे है। शोक मोह से परे है वह परमात्मा है। परमात्मा का स्वरूप असीम है। जीव अपने को सीमा में बांध कर बैठ गया इस लिए बन्धन में है। परमात्मा असीम होने से माया से

मुक्त है। 'स वा एष आत्मा हृदयी' ऐसा हृदय में स्थित वह जो आत्मा है वही सम्पूर्ण भूतों को भ्रमण करा रहा है। भ्रमण क्या है। भिन्न २ योनियों में जाना ही भ्रमण है। देहादि में अहंकार करके बैठ जाना भ्रमण है। जाग्रत में अपने को इस शरीर में ओत प्रोत कर के बैठते हो स्वप्न में शरीर को तो बिस्तर में डाल देते हो, मोटर तो गैरेज में खडा कर दिया और ड्राइवर पीछे हट गया। जब तक पिछे नहीं हटेगा तब तक निद्राका सुख भी नहीं ले सकेगा। यह शरीर ही संसार से मिलाने का साधन है। माध्यम है। जब तुम ने इस शरीर को बिस्तर में डाल दिया तो, इस शोक मोह की दूकान जो यह संसार है इस से तुम ने अपने को पिछे हटा लिया। सुख की नींद सोया। इस निद्रा के आनन्द को जानना भी जरूरी है। जाग्रत में स्वप्न में सुषुप्ति में यह अन्तरात्मा सदा जाग्रत रहता है। श्रुति कहती है "सकृद्विभातोह्येवैष ब्रह्मलोकः" नींद तो उन को आती है जो तुम्हारे प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। तुम्हारी liglt मिलने पर ही यह इन्द्रियां स्वाद लेती है। मन बुद्धि और शरीर सब चेतन आत्मा के प्रकाश से प्रकाश लेते हैं। यह सोते हैं यह प्राण तुम्हारा ऐसा Servant है जो कभी सोता नहीं। परमात्मा ने कितनी होशयारी से यह संतरी तुम्हारी रक्षा के लिए रखा है। ऐसी वो तुम्हारी सत् चित् स्वरूप आत्मा है जिस के प्रकाश से यह प्रकाश आरहा हैं।

श्रुति इस शरीरको ब्रह्मपुरी कह रही है। "यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्नन्तराकाशस्तिस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।" (छांदोग्योपनिषद अ. ८ १.१) कंठकूपको विशुद्ध चक्र कह रहे हैं इससे दश अंगुलि नीचे और नाभिके दश अंगुल ऊपर हृदय कमल बताया है। इस हृदयाकाशमें अहं अहं करके वह चेतन भास रहा है। यहाँ खोज करने पर ब्रह्म मिलेगा। दृष्टान्तके लिए सेठकी उपकथा है। एक ही लडका था। डांस डिनर क्लब Life वाला था। सेठने सोचा यदि इस मूर्ख के हाथमें सारा धन आ गया तो यह उडादेगा। उसने लकडीका एक बडा लठ्ठ लेकर अन्दरसे पोलाकरवाया और उसमें हीरे मोती सोना आदि सब भरकर अन्दर आंगनमें गाढ दिया वही में लिखवा दिया की धन खम्बाशाहके पास है उससे ले लेना। लक्ष्मी हजार आंखों से देखने वालाके पास रहतीहै। ऐसा विष्णु ही है जो लक्ष्मीको हजार

आंखों से देखता है । समय पाकर सेठकी मृत्यु हो गई । लडकेकी हालत तो थोडे ही दिनोंमे खराव होगई । एक दिन पिताका मित्र मिलने आया । उसने लडके-की हालत देखी तो उसे भी दुख हुआ । कहा बही दिखाओ । बहीमे देखा और खम्बाशाहके बारे में विचार करने लगा । घरके भितर खोज की देखा कि आंगनमें खम्भा गढा है । हाथ लगा कर देखा समझमें आगया कि धन इसीमें है । सेठने सोचा होगा कि बेटेकी बुद्धि जब ठीक हो जाएगी तो समझ जाएगा । लडके से बोला कि खम्बाशाहको तो मैं जानता हूं पर तुमको अपना आचार विचार ठीक करना पडेगा । तब वह मिलेगा । लडका रोने लगा और कहने लगा कि तबमैं धनका नाश नही करूंगा । कृपा करके मुझे बतादिजिए । मित्रने कहा खम्बा शाह तुम्हारे घरके भीतर ही है । लडकेको वतादिया और धन उसे मिलगया । अब वह खूब अच्छी तरहसे रहने लगा । ऐसे ही यह जीवभी है । परमात्माने सोचा की इसके मित्र अच्छे नहीहैं । पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां मन बुद्धि इसके मित्र हैं । नैना देवी इसे अशोका होटल में ले जाती है । कर्णदेव शब्दके बाजारमें ले जाताहै । मनभी अनेक प्रकारसे भटकाता है । अनेक प्रकारके शोक मोहमें दुखी हो जाता है । इस शरीर को खम्बाशाह समझो । आनन्द रूपी धन इस खम्बे में रखा है । सेठ का मित्र कौन है ? गुरूहीहैं जिन्हों ने बताया कि सुख रूपी धन तुम्हारे भीतर ही रखा है । इस शरीरमें खोज करने पर ही असली सुख मिलेगा बाहरं ही बाहर घूमने पर कुछ नही मिलेगा । इस लिए श्रुति हृदयाकाशकी ओर लक्ष्य करती है । यह हृदयाकाश बाहर के आकाश से भी विशाल है। आत्मा सत्ता रूप होकर इन दोनों आकाश में व्याप्त हो रहा है। मुमुक्षु बडे प्यारसे श्रद्धा से इस सत्य की खोज करे । बडी श्रद्धासे गुरु के पास जाकर इस तेजब्रह्मको जानने की जिज्ञासा करे ।

यह महान सूर्य हमारी धरती से नौ करोड मील की दूरी पर है । इतनी दूरी से यह हमे ताप दे रहा है । सोचो कितना महान इस का तेज है । यह सूर्य उस महान आकाश में कैसा है ? जैसे हमारे शरीर में यह आंख है । यह सूर्य यह चन्द्रमा इस विराट परमात्मा के नेत्र हैं । यह आकाश सूर्य से भी महान है । यह सूर्य चन्द्र नक्षत्र सब आकाश ही है । आकाश के द्वारा ही शब्द फैल जाता

है। शब्द आकाश में सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी बिना यन्त्र के पकड में नहीं आता। यन्त्र के द्वारा ही शब्द पकड़ में आता है। देखो जहां अधिक क्रोध करने वाले लोग रहते हैं, उन के गन्दे शब्दो से वहां का वायुमंडल दूषित हो जाता है। वहां जाते ही मन उद्विग्न हो जाता है। पर जहां शान्त प्रकृति के लोग रहते हैं वहां का वायु मंडल शान्त और पवित्र होता है। इस लिए वहां जाने पर मन शान्त प्रसन्न हो जाता है। वायु मंडल को अच्छा बनाना मानव मात्र का कर्तव्य है। लोक जीवन को सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है। आध्यात्मिक जीवन में तो यह और भी आवश्यक हो जाता है। लोक जीवन में अपने इन्द्रिय व्यवहार को शुद्ध रखो। भगवान कपिल देव अपनी मां देवहूति को उपदेश करते हुए कहते हैं कि यह सारा विश्व चौबीस तत्त्वो से बना हुआ है। अब यह विद्वानों के भिन्न २ मत है सांख्य शास्त्र इस विश्व को चौबीस तत्त्वों द्वारा बना हुआ मानता है। कर्म का साकार रूप ही हमारा यह शरीर है। इस संसार को पान्थ संगम कहा है। यह बेटा बेटी माता पिता पति पत्नी सब यात्री समझो जैसे रात्री को सब यात्री किसी धर्मशाला में ठहर जाते हैं। प्रात: होने पर सब अपने २ मार्ग से चले जाते हैं ऐसे ही यह जगत उस भगवती माया की सराय है। यहां सब जीव आकर अपने २ कर्मानुसार मिल जाते हैं। मुमुक्षु ज्ञान और वैराग्य को धारण करे तभी उस की गति ठीक होगी। मोह छोड कर वैराग्य को पकडो तभी संसार का असली रूप दिखाई देता है और जब यह संसार अपने वास्तविक रूप में दिखाई देता है तभी तत्त्व की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। श्रुति कहती है "खं ब्रह्म" ब्रह्म ही आकाश के रूप में प्रगट हुआ। **"तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्चपूरूष: पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति"** (छान्दोग्योपनिषद् ३। १२।६) यह सब उस चेतन आत्मा की ही महिमा है। यह सारा जगत उस के एक पाद में प्रतिष्ठित है। तीन पाद में वह अपनी महिमा में ही प्रकाश रूप में प्रतिष्ठित है। एक पाद से तात्पर्य है चिदाभास। आत्मा का चिदाभास ही इस शरीर को उठाए हुए है। स्वरूप भूत आत्मा में संसार नहीं है। केवल चिदाभास ने इस सारे जगत का बोझा उठाया हुआ है। जगत के स्वरूप की चिन्ता करना माया मात्र है। मुमुक्षु सदा "आत्मैवेदं"।ब्रह्मैवेदं सर्वम् 'यह भावना करे। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद "स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो

वै स लोकान्प्रकाशवतो ऽसम्वाधानुरूगायवतो ऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति" जो इस आकाश की ब्रह्मरूप से उपासना करता है वह इस आकाश के गुणों की भावना करते २ इसी के समान व्यापक भाव में समाहित हो जाता है। उस की भावना व्यापक हो जाती है। तुम आकाश की ब्रह्मरूप से उपासना करो।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ४०

२६।५।८५

"ॐ स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन श्रृणुयुर्न मन्वीरन्नविजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ श्रृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ।।"

(छान्दो० ७।१३।१)

बडा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है नारद पूछता है भगवन इस आकाश से महान क्या है ? भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद इस आकाश से महान स्मर है। स्मर स्मरणं स्मृति। यह हम लोगों का जीवन क्या है ? सोचो तो यह स्मृति ही जीवन है। यह कौन है ? कहते हैं यह हमारा पुत्र हैं। यह कौन है ? कहते है यह हमारी पत्नी है। यह सब सम्बन्ध स्मृति के आधार पर ही हैं। यह स्मृति ही है। पर यह स्मृति केवल बाहर की है। ऐसी बाहर की स्मृति चित्त में कौन सा माल लाएगी ? Production क्या होगा ? शोक मोह ही उत्पन्न होगा। जिस २ बजार में यह मन जाएगा शोक मोह ही लेकर आएगा। अपने स्वरूप की स्मृति करो। यही जीवन का सार है। जो अपने को भूल कर जीता है वह पागल नहीं तो और क्या है ? बृहदारण्यक उपनिषद में एक बडी सुन्दर श्रुति है

"यो हवा अस्माल् लोकात्स्वलोकमदृष्टवा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननुक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयत एनात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते। अस्माद्धयेवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते" (बृहदाराण्यकोपनिषद् अ० १।४।१५) जो आत्मा की उपासना न कर के महान पुण्य कर्म करता है। जिस २ कामना को लेकर कर्म करता है उस २ लोक में जाता है। स्वरूप की स्मृति में ही सुख है। इस लिए स्मृति अन्तर्मुखी होनी चाहिए। जिस लोक में पहुंचने के वाद तुम्हें फिर लौटना नहीं पडे वह स्वात्मलोक, आत्म स्वरूप है। अपने कर्मो का फल जहां भोग जाता है उसी को लोक कहते हैं। मनुष्य योनि के अनुसार जो कर्म होगा, वही मनुष्य जन्म देगा। तामसी कर्म पशु पक्षी योनि में फैंकने वाला है। महान कर्म का फल तुम्हें स्वर्ग लोक में पहुंचा देगा। देवता बना देगा। पर मोक्ष देने वाला कर्म नहीं वह तो ज्ञान ही है। आत्मज्ञान अपने चित् स्वरूप का चिन्तन।

जीव तीन विभाग में चलते हैं ऊर्ध्व स्रोत, तिर्यक्स्रोत और अधःस्रोत। ऊपर की ओर प्रवाह फैंकने वाला जीव वृक्षादि योनि का जीव है। यह नीचे से भोजन लेता है और ऊपर से निकालता है। ऐसा श्रुति वाक्य है कि यह वृक्षादि भी जीव है महर्षि उद्दालक अपने प्रिय पुत्र श्वेतकेतु को बोध देते हैं। ज्ञानी पिता अपने पुत्र को ज्ञान देते हैं और पुत्र भी अपने को धन्य मानता है। **"अस्य सोम्य महत्तो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्ये ऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो ऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति'** (छान्दोग्योपनिषद् अ. ६।११।१) वृक्ष में भी जीवात्मा है इस को जहां से काटो वहां रस प्रगट होता है। एक शाखा को काटो तो रस स्राव होता है दूसरी शाखा काटो तो रस स्राव होता है। समूल काटो तो रसस्राव होता है। यह वृक्ष नीचे से खाकर अपने शरीर को भी बना रहा है। शाखा पत्ते फल फूल सब दे रहा है। गन्दी से गन्दी चीज खाकर सुन्दर से सुन्दर फल फूल दे रहा है। संसार की भलाई कर रहा है। इस लिए इस योनि का भोग भोगकर ऊर्ध्व गति प्राप्त कर सकता है। तिर्यक् जीव पशु योनि है गाय भैंसादि। यह अग्रभाग से खाकर

तुम्हें बढिया दूध दे रहे हैं। यह जीव भी खतरनाक नहीं हैं। संसार का भला कर रहे हैं। तीसरा जीव यह मनुष्य है जो ऊपर से खाकर नीचे से निकालता है। सुन्दर से सुन्दर पदार्थ खाता है और कितना गन्दा कर के निकालता है। यह जीव सब से खतरनाक है। मन माना कर्म करता है। पाप कर्म करेगा तो अधोगति में चला जाएगा अच्छे कर्म करेगा तो ऊर्ध्व योनि में जा सकता है। मानव जन्म ही एक ऐसा जन्म है जो जंकशन स्टेशन है। यहाँ से स्वर्ग नरक, मनुष्य लोक, पशु लोक सभी ओर मार्ग जा रहे हैं। यह मनुष्य के हाथ में है वह चाहे जहां भी जा सकता है। यह भगवान का सब से बडा बेटा है। इस को भगवान से इतनी स्वतन्त्रता दे रखी है कि वह चाहे तो स्वर्ग प्राप्त करे। चाहे तो निम्नगति में चलाजाए। चाहे तो मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। मुमुक्षु बडी सावधानी से चलना चाहिए। ऊर्ध्वस्रोत वाला जीव मस्ती से खडा है। क्यो कि वह अपना कर्म भोगक्षय कर रहा है। आगे संसार का भला भी कर रहा है। सुन्दर छाया दे रहा है। तुम्हारी गन्दी वायु लेकर तुम्हें स्वच्छ प्राण वायु प्रदान कर रहा है। इस लिए उसे भय नहीं है।

परन्तु जो यह अधःस्रोत वाला जीव मनुष्य है यह बडा खतरनाक है। इस के लिए ज्ञान चाहिए। इस के लिए शास्त्र चाहिए। इसी के लिए स्कूल कालेज चाहिए। इस के लिए गुरु चाहिए। यदि यह अपनी स्वाभाविक गति से चलता रहेगा तो यह संसार का भी अनिष्ट करेगा और अपना भी। ऊर्ध्वस्रोत या तिर्यक्स्रोत योनि में चला जाएगा। इसे बहुत सावधानी की आवश्यकता है। ऋषि कहता है **"किं प्रजया करिष्यामि येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते हस्म, "पुत्रैषणायाश्च, वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।"** (बृहदारण्यकोपनिषद् अ. ३।५।१) बहुत संतान से क्या होगा। जब यह शरीर भी अपना नहीं है तो यह बेटा बेटी क्या करेंगे। पहले भी तो कितने जन्म हुए? कितने पुत्र पुत्रियां हुई? जरा आँख बन्द कर के देखो। करोडो २ जन्म हो चुके हैं। एक दिन यह शरीर भी हम को छोडना है तो इस के सम्बन्धियों से इतना मोह क्यों। यह सम्बन्धी भी साथ में नहीं रहेगे। गीता में भगवान कहते हैं **"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम,,** (गीता अ. १५।६)

इस लोक जीवन के सब सम्बन्ध ऐसे हैं जैसे मान लो किसी के घर मेहमान बन कर गये और यदि वहां से लौटना ही नही चाहो तो वह क्या करेगा जबरदस्ती निकालेगा । लौटना तो पडेगा ही । इसी प्रकार यह सब योनियां दूसरे का ही घर है । अपना लोक वह, जहां से जीव अपने घर लौट सकता है यह मनुष्य लोक ही है । कर्म भोग के सब लोक ऐसे हैं कि वहां से लौटना ही पडेगा । अपना लोक तो आत्मलोक ही है, भगवान कहते है "यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते' जहाँ जा कर लौटता नहीं। "तद्धाम परमं मम' 'वह मेरा परम धाम है। वह ही मुमुक्षु का स्वधाम है। मुमुक्षु को दृढ निश्चय करना है कि मेरा असली लोक तो ब्रह्मलोक है । जिस से फिर लौटना नहीं पडे । सदा यही चिन्तन करना है कि आत्मलोक ही मेरा परम धाम है। स्वस्वरूप का चिन्तन ही इस लोक का मार्ग है ।

मान लो एक मां अपनी बेटी को पढ़ाती लिखाती है । उसे अच्छी शिक्षा देती है पर यह नहीं सोचती कि आखिर तो बेटी को दूसरे घर जाना है। उसे बेलन चलाना सिखाया ही नहीं । अब बेटी की शादी हो गई और वह ससुराल गई । सास ने कहा बेटी आज जरा मैं काम से जा रही हूँ तू रोटी बना लेना । बहु बेचारी वैसे तो खूब पढी लिखी है पर रोटी तो उस ने कभी बनाई ही नहीं । तो क्या करेगी ? मोटी पतली टेढी मेढी रोटी बनाने लगी । कोई जल जाए कोई कच्ची रह जाए । सासु ने देखा तो खूब बडबडायी और उस की मां को भी भला बुरा सुना दिया । बेचारी रोने लगी । इस लिए बेटी को ऐसी शिक्षा भी देनी चाहिए जिस से वह दूसरे घर में भी निपुण हो सके । जैसे यह लडकी केवल बाहर की शिक्षा में ही पारंगत है पर घर की शिक्षा न होने से सास का भला बुरा सुनती है । सब सहन करती है तात्पर्य यह कि केवल बाहर की शिक्षा से ही उस का जीवन सुखी नहीं हो सकता । ऐसे ही यह जीव भी चाहे बाहरी कर्मों में कितना ही पारंगत हो लोक जीवन मे भी चतुर हो, पर जब तक आत्मा का विचार नहीं होगा जन्म मृत्यु के बन्धन से छुट नहीं सकता केवल कर्म करने से ही क्या होगा । कर्म तो सब बन्धन का हेतु हैं जन्म और मृत्यु ही देगें । "तत्कार्यं यन्न बंधाय" कर्म भी वह करो जो बन्धन कारी न

हं, मोक्ष की ओर ले जाने वाले हो। अमृतत्व का साधन हो

मुमुक्षु के जाने का लोक आत्मलोक ही है। ब्रह्म लोक ही है। "आत्मा इत्येव स्वलोका उपास्स्व" आत्मा में ही मन को लगाओ। महावाक्य के द्वारा अपने स्वरूप की बार २ स्मृति करो जिस मन में अपने चेतन स्वरूप की स्मृति होगी वह कितना महान होगा। कितना पुण्यशाली होगा। परन्तु यहां तो कहते हैं अपना ही होश नहीं अपना मुंह देखने की भी फुर्सत नही। तो मुंह का भी मुंह है, जिस के बिना यह मुंह भी मिथ्या है उसे देखने की फुर्सत किसे है? यह माया का मन्दिर है। हम लोग यहां guest बन कर आए हैं। इस मे अनेक विकार हें। बुद्धिमान वह है जो विकारों से उपर उठ कर निर्विकार रूप आत्मा में दृष्टि दे उपकथा आती है भगवान कृष्ण पांडवो को समझाते हुए कहते हैं " विद्यायां धन्विनां कोटि, तदर्धं हरिमन्दिरे।

तदर्धं जान्हवीतीरे, तदर्घ दक्षिणें करे।।

आत्मविद्यामें बाधक एक करोड धनुषधारी खडे रहते हैं। भगवानके मन्दिर में जाने लागे तो आधेयानी 50 लाख तो रोकने वाले रहते ही हैं। गंगा किनारे जाओ तो उससे आधे और दान देने लगो तो उससे आधे धनुषधारी रोकने वाले रहते हैं। पांडब दैवी सम्पत्तिके प्रतीक और कौरव आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक थे। पांडब भगवानकी बात पर विश्वास करते थे। फिर भी भीम हंस पडा और बोला क्ना गप्प मारते हो। कौन किसको रोक सकताहै। मैं जानता हूं गंगा स्नानकेलिए देखता हूं वहां कितने धनुषधारी मिलतेहैं मुझे रोकनेके लिए। बस चल पडा अपना धनुप वाणले कर। सारा दिन गंगाके किनारे इधर उधर ढूंढता रहा शाम को लौट कर आगया और बोला कृष्ण झूठ कहतेहैं। मुझे तो एक भी धन्वी नहीं मिला। कृष्णने हंस कर कहा तब तो बढिया स्नान किया होगा। भीम बोला स्नान कहाँ किया। मैं तो दिन भर इधर उधर जंगलमें धनुषधारियों को ही दुढता रहा। तब कृष्णने कहा कि रोकने वाला कोई बाहरसे नही होता यह तुम्हार मन के विकार ही होते हैं जो तुम्हें कोईभी अच्छा कर्म करनेसें वाधक होतेहैं। जीवके संस्कार ही उसकी वृति बनकर उसे रोकते हैं। तात्पर्य यह है कि इस मनमें करोडों २ वृत्तियां हैं। क्रोधरूपी, मोहरूपी, लोभरूपी, कामरूपी वृत्तियांही वह शूरवीर हैं जो तुम्हें रोक लेती हैं। अपने जीवनमें ही अनुभव करके देखो।

मांन लो अपने घर पर कोई भिखारी आगया। घर बनाकर बैठे होतो कोई न कोई आएगा ही। जब उसको कुछ देने का विचार करते होतो यह मन ही बाधा डालता है। यह मनीराम तुम्हारा मुनीम है। यह तुम्हारा संकल्प बदल देताहै। इस तरह यह वृत्तियोंका बाजार है। बुद्धिमान इन वृत्तियोंका विवेचन करके आगे बढे।

अन्तः करणका धर्म स्मृतिहै। यह स्मृतियां करोड प्रकारकी होती हैं। "अनुभूत विषया स्मृति" पर स्मृति वही होगी जिस विषयका तुमने अनुभव किया होगा। संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः" स्मृतिः संस्कारके अधीन है। जिस विषयका अनुभव तुम कर चुकेहो, उसीका सस्कार बनताहै। जैसा संस्कार होताहै वैसी ही स्मृति बनतीहै। स्मृतिके अनुसार फिर जीवनके भोगलेतेहो। जो २ पदार्थ हमारे जीवनमें आचुके हैं, परिचमें आचुके हैं, चाहे वह जड हो या चेतन हों, स्मृति उन्हीकी होगी। इन पांच भूतोसे ही जीवनके अन्नत भोग्य पदार्थ बनते हैं। पर सोचो क्या यह सब तुम्हारे लिए हैं ? तुम अपने लिए वही भोग ले सकते हो जो तुम्हारी स्मृति मेंहैं। भोग्य पदार्थ सब संस्कारकेअधीनहै। संस्कार के अधीनही तुम चलोगे। पदार्थ तो बहुत हैं म तुम उन्हीको लेतेहो जो तुम्हारी स्मृतिमें हैं। इस लिए भगवान सनत्कुमार कहते हें हेनारद आकाशसे महान स्मृति है। कल इसका और व्याख्यान करेंगे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४१

३०।५।८५

"ॐ ते स्मरेयुरथ श्रृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुजा न्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ।। "

(छान्दो० ७।१३।१)

बड़ा महत्त्वपूर्ण विचार है। सोचो इस लोक जीवन में ऐसा कौन सा ज्ञान है जिस के द्वारा मनुष्य 'मैं' 'और मेरा' करता है। अहं तो करते हो।

इस ग्रंह को देखने के लिए न सूर्य न चन्द्रमा का प्रकाश चाहिए। उपनिषद का मंत्र है **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारंक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि। तमेव भान्तमनुति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।** उस चेतन ज्योति का ज्ञान होने से ही "इदं" सर्वं विभाति। यह सब जगत भासमान होता है। मंत्र बडा महत्त्व पूर्ण है। यह तुम्हारे असली स्वरूप की ओर सकेत करता है। यह सूर्य जगत में रात्रि के अन्धकार को दूर कर देता है. और सब पदार्थ प्रकाश में रख देता है। परन्तु सब पदार्थ में होने पर भी तुम्हारी स्मृति में न होने से तुम्हें नहीं दीखेंगे। तुम को जो चाहिए, जो तुम्हारी स्मृति में होगा वहीं तुम्हें दिखाई देगा। बाजार में ही जाओ, सब कुछ पडा है, पर यदि तुम्हारी स्मृति ठीक नही। तुम्हें याद ही नहीं कि क्या लेना है तो तुम्हें क्या मिलेगा। जो ज्ञान तुम्हें यह बताएगा कि तुम्हें क्या चाहिए, क्या लेना है, स्मृति इसी ज्ञान का नाम है।

स्मरण ही तुम्हारा जीवन है। जिस की स्मृति खो गई वह अपने प्रिय बन्धु को भी नहीं पहचानेगा। उदाहरण के लिए एक बच्चा दस बारह साल की आयु में घर से कहीं चला जाए और १५, २० वर्ष बाद लौट कर आए तो उस की मां भी उस को नहीं पहचानेगी किसी परिचित को भी १५, २० वर्ष के बाद देखने पर तुम उसको एक दम नहीं पहचान सकते क्यों कि तुम्हारी स्मृति वहां नहीं है। यह तो हम रोज एक दूसरे को देखते हैं इस लिए स्मृति बनी रहती है। स्मृति न होने से व्यवहार नहीं होता। परिवार में माता पिता पति पत्नी भाई बहिन सब स्मृति ही है। लोक जीवन में इस स्मृति को ठीक रखना भी धर्म है। अपने जीवन को व्यवस्थित करो सुन्दर बनाओ। विस्मृति मृत्यु है और स्मृति जीवन है। लोक जीवन में यदि स्मृति नहीं रहेगी तो बेहोश कहे जाओगे और अस्पताल में भर्ती कर दिए जाओगे। तो सोचो तुम्हें घर में रखने वाला कौन है। अस्पताल में जाकर यदि स्मृति लौट आई तो घर लौट सकोगे। अस्पताल से घर लाने वाली स्मृति ही है। यह स्मृति ही तुम्हें घर में रखे है। स्मृति से पहले तुम्हारा वह सुन्दर ज्ञान है जिस से संस्कार बना और फिर स्मृति बनी। एक लडका रोज एक सन्त के पास जाता था। श्रद्धालु था। संत भी पहुंचे हुए उच्च कोटि के संत थे। एक दिन बोला महाराज जीवों के रूप हम

को समझाओ। संत ने कहा यह सामने मलयाचल पर्वत में सुन्दर २ चन्दन के पेड़ हैं। जाओ और रात को वहां रहो। कल हमारे पास आना तुम्हें समझाएं गे। श्रद्धा तो था ही मान गया। गुरु की आज्ञाका पालन कर के जंगल में चला गया। वहां जा कर क्या देखता है कि बडे २ भयंकर सर्प चन्दन के वृक्षो में लिपट पडे हैं। गुरू जी की स्मृति करने लगा कि आज तो गुरु जी ने मुझे मौत के मुंह में ही भेज दिया पर मन में श्रद्धा होने के कारण भावना बुरी नहीं करता। सोचता है इस में भी मेरा कुछ भला ही होगा। दिन भर तो इधर उधर घूमता रहा सायंकाल हो गया सोचने लगा रात भी यही काटना है। एक विशाल पत्थर पर चढगया। और इधर उधर देखने लगा। नींद तो आनी नहीं थी। ऐसी भयंकर जगह पर जहां सामने मृत्यु ही दीख रही हो तो भला नींद कैसे आती। थोडी देर में क्या देखता है आकाश में चन्द्रमा निकल आया और चारों ओर प्रकाश फैल गया। उस ने सोचा चलो कुछ तो ठीक हुआ अब कम से कम सब दिखाई तो देता रहेगा। देखता है कि कुछ सर्प पेडों से उतर कर मैदान में आगये और अपनी मणि सिर में से निकाल कर सामने रख दी। उस मणि के प्रकाश में अपने शिकार की खोज करते हैं। कोई भी जीव मेंढक आदि जो उस के पास आता है खाजाते हैं। कुछ सर्प केवल मणि के प्रकाश को ही देखते हैं। चन्द्रमा की किरणें निकलीं और मणि पर पडते ही पडते ही एक विशेष प्रकार का रस टपकने लगता है बस उसे ही चाट कर मस्त हो जाता हैं। कुछ सर्प पेडों से ही चिपके हुए हैं वह नीचे आते ही नहीं। यह लडका सब को ध्यान से देखता रहा रात काट कर सवेरे गुरु जी के पास पहुंचा और बोला महाराज आप ने तो आज मुझे मृत्यु के मुंह में ही फैंक दिया था पर मैं भाग्य का धनी रहा बचकर आ ही गया। गुरु जी बोले बेटा वहां तुम ने देखा क्या ? लडके ने कहा कि बडे २ सांप चन्दन के पेडों पर लिपटे हुए थे। रात को कुछ सांप नीचे उतरे और अपनी मणि निकाल कर सामने रख दी और उन पर आने वाले कीडे मकौडों को खाने लगे। कुछ सांप कीडे मकोडे नहीं खा रहे थे। वह चन्द्रमा की किरणों के द्वारा जो रस मणि पर गिर रहा था उसे ही चाट रहे थे। और कुछ सांप तो नीचे उतरे ही नहीं वही पेडों पर चिपके रहे। संत ने समझाया कि देखो यह जीव भी तीन प्रकार के हैं।

यह सुन्दर रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श ही चन्दन का जंगल है। यह मनुष्य प्राणी तीन प्रकार के सांपों की तरह हैं। कुछ तो विषयों में ऐसे चिपके हुए हैं कि कहते हैं मरने की भी फुर्सत नहीं। मोहासक्त भोगासक्त प्राणी यह भी नहीं सोचता कि मृत्यु अवश्यम्भावी है। अपने असली स्वरूप को वह समझ ही नहीं पाते। वह यह निश्चय ही नहीं कर पाते कि यह जीवन है क्या। इस शरीर का जीवन तो नकली जीवन है। देखने के लिए ही है। ट्यूब की हवा निकाल दिया गाडी ढीली हो गई। चमडी ढीली हो गई। हड्डियां पोली हो गई। पर स्मृति विषयों में ही लगी हुई है। भगवान सनत्कुमार कह रहे हैं हे नारद इस स्मृति को ब्रह्मभाव से जानो। गीता में भगवान कृष्ण भी इस बात को स्पष्ट करते हैं **''ओंमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्''** (गीता अ. ८।१३) उस अक्षर ब्रह्म को जानो। ओंकार का उच्चारण करो और अर्थ की भावना करो की यह सारा जगत ब्रह्मस्वरूप ही है। शास्त्र और गुरु के मुख से मंत्र श्रवण कर के उस के अर्थ को समझ कर जप करोगे तो उस का महान फल होगा। नहीं तो तोते की तरह गोपी कृष्ण गोपी कृष्ण रटते रहोगे लाभ कुछ भी नहीं होगा।

मनुष्य के हृदय में इतनी बडी शक्ति है कि वह चाहे तो ऊंची से ऊंची गति प्राप्त कर सकता है। भगवान ने इस मानव को अपनी तीनों शक्तियां संकल्प शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति से सम्पन्न किया है। यह तीनों शक्तियां भगवान में भी है जिन से वह सृष्टि की रचना करता है। मानव भी जैसा चाहे इन शक्तियों का उपयोग कर के अपनी सृष्टि बना सकता है। चाहे तो यह स्मृति कर सकता है कि मेरा स्वरूप सत् चित् आनन्द स्वरूप है। 'मैं ही आत्मा हूं'' ''मैं ही ब्रह्म हूं'' ऐसी ब्राह्मी भावना दृढ कर के मोक्ष में जा सकता है। यह तो हमारे पूर्व जन्मों के सुकृतों का फल है कि अच्छी मां मिल गई अच्छे पिता मिल गये जिस से यह सुन्दर मानव शरीर मिल गया। इस जन्म में सुडौल शरीर मिलना, अच्छे सम्वन्धी मिलना पूर्व जन्म के सुकृतो का ही सुन्दर फल है। मुमुक्षु आगे भी अच्छी पुण्य कमाई के द्वारा सुन्दर गति प्राप्त करता है। अच्छा पति और अच्छी पत्नी वह है जिन के हृदय में आत्म स्वरूप की स्मृति

बनी हुई है। भागों की ओर तो सब पशु पक्षी कीट पतङ्ग भी भाग रहे हैं। अगर हम भी भोगों की ओर ही भागते रहे तो पशु से अधिक क्या जीवन है? इस लिए भगवान कहते हैं कि मुमुक्षु ओंकार का उच्चारण करे। और मुझे सब भूतों की अन्तरात्मा जान कर आत्मरूप मे मेरी स्मृति करे।

दूसरे प्रकार के मनुष्य वह हैं जो पहले वालों से भोगासक्त प्राणियों से अच्छा है। जैसे वह सांप जो मणि पर पडने वाली किरणों प्रकाश में आने वाले किड़े मकोडो का शिकार करते हैं। यह सुन्दर बुद्धि ही मनुष्य की मणि है। आफिस में काम कर के वह अपनी इस सुन्दर बुद्धि से राष्ट्र का समाज का और अपने परिवार का भी भला करता है। यदि वहां इस के मन में लोभ बढ गया, मोह बढ गया, तो अफिस में आने वाले लोगों को मक्खी मच्छर की तरह मसल कर खा जाएगा। बुद्धिमान दयाशील होना चाहिए। और इस भावना से सब लोगों का भला करे। अपनी बुद्धि रूपी मणि के प्रकाश में ईमान दारी से राष्ट्र के लिए अच्छा करे। यही धर्म है। नहीं तो लोभ मोह में वह अपने पास आने वाले भोले भाले लोगों का ऐसे शिकार करने लगेगा जैसे मणि पर अपने वाले कीड़े मकौडों का शिकार सर्प करते हैं। जिस राष्ट्र में ऐसे लोग बढ़ जाते हैं वह राष्ट्र गरीब हो जाता है। वहां क्रान्ति हो जाती है। यह आसुरी प्रकृति के मनुष्य हैं। स्वयं भी दुखी होंगे दूसरों को भी दुखी कर देंगे। "स्वयं दुःखी परान् दुःखयति" हे नारद जीवन का तत्त्व स्मृति ही है। मुमृक्षु को अपनी स्मृति शुद्ध और पवित्र बना कर ब्राह्मी भावना में ही लगाना चाहिए।

तीसरी कोटी के मनुष्य वह है जो चन्द्रमा की किरणों से जो रस मणि से निकला उसी को चाटता है। किसी की हिंसा नहीं करता। किसी प्राणी को मारता नहीं। मन को एकाग्र करता है। तब मन मणि की ओर जाता है। भगवद् चिन्तन करता हुआ अपनी सत्विक बुद्धि के द्वारा तत्त्व का चिन्तन करता है। इस मनुष्य की बुद्धि सुन्दर निर्मल सत्वगुणी है। यही मणि है। इस का विवेक ठीक जाग्रत है। यह आत्मा ही तत्त्व है यही सत् है श्रुति है "सदैव सोम्य इदमग्र आसीत्।" महर्षि उदालक अप्रने प्रिय पुत्र श्वेत

केतु को तत्त्व का उपदेश करते हैं कि सृष्टि से पहले यह सत् रूप ही था जैसे अपने शरीर में ही देखो। यह रस रूप अमृत रूप चेतन पहले था तभी इस शरीर की सृष्टि हुई। इस का जीवन भी तभी तक है जब तक यह चेतन आत्मा इस में है। इस के बिना इस शरीर की कोई किमत नहीं। इस लिए मुमुक्षु अपना मन इस आत्मा की ओर खींचे। खींचना तो पड़ेगा चाहे इस जन्म में खींचो चाहे सैकड़ो जन्मों के बाद। यह माया तम को छोड़ेगी नहीं। "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अन्तर्मुखी मुमुक्षु आत्मा से मन को मिलाता है और मोक्ष की ओर बढ जाता है। नहीं तो बार २ मरो। "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्"। जो अपनी बुद्धि को आत्मा के सामने करता है। यह आत्मा ही चन्द्रमा है। इस की किरणें जब सत्त्विक निर्मल बुद्धि पर पड़ती है तो अज्ञान रूपी अन्धकार की निवृत्ति हो जाती है। ब्राह्मी वृत्ति बनती है। तब तो आनन्द की अनुभूति होती है वही आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद. "स्मरो वै आकाशात् भूयान्" यह स्मर आकाश से महान है। स्मृति होगी तभी बोलेगा, सुनेगा और व्यवहार करेगा। स्मृति नहीं होगी तो न बोलेगा, न सुनेगा और न व्यवहार करेगा। इस लिए तुम इस स्मर कीं स्मृति की ब्रह्मरूप से उपासना करो।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४२

३१-५-८५

"ॐ स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।"

(छान्दो० ७।१३।२)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद जो इस स्मृति की ब्रह्म रूप से

उपासना करता है वह उन लोको को प्राप्त करता है जहां स्मृति की प्रतिष्ठा है। जिन २ लोकों में स्मृति प्राप्त होती है। यह स्मृति अन्तः करण की वृत्ति है। मन बुद्धि ही अन्तःकरण है। स्मरणात्मिका वृत्ति का नाम ही स्मृति है। यह स्मृति संस्कार के अधीन होती है। जैसे किसी के संस्कार होंगे वैसी ही उसे स्मृति होगी। तुम्हारा लोक जीवन यह स्मृति ही है। स्मृति ही जीवन में तत्त्व है। लोक जीवन और आध्यात्मिक जीवन में स्मृति ही सार है। पारिवारिक जीवन के सारे सम्बन्ध माता, पिता, पति, पत्नी, भाई वन्धु सब स्मृति ही है। जिस की स्मृति समाप्त हो जाती है वह अपने घर का रास्ता भी भूल जाता है यहां तक कि अपना नाम भी भूल जाता है। उस को अपने सम्बन्धी कैसे याद रह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति को पागल कह कर समाज में अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। उसे फिर घर में नहीं रखा जाता। अस्पताल या पागलखाना ही उस के लिए रहने का स्थान है। बताओ ऐसे व्यक्ति की आंख भी ठीक है आत्मा भी है तो कौन सी चीज गायब हुई है? स्मृति माने ज्ञान ही लुप्त हो गया। इस लिए कहा "प्रज्ञानं' ब्रह्म"। मुमुक्षु इस स्मृति को सदा ठीक रखने का प्रयत्न करता है।

व्यर्थ की चिन्ता मत करो। व्यर्थ के शोक में मन को मत डूबने दो। व्यर्थ का क्रोध मत करो क्यों कि यह सब स्मृति को नष्ट करने वाले हैं। जैसे लोक जीवन में स्मृति एक दूसरे से सम्बन्ध जोड़ कर रखती है ऐसे ही आ-ध्यात्मिक जीवन में स्मृति ही मोक्ष मार्ग में आगे बढाती है। रात को भोजन कर के सोये और सवेरे अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती तो क्या है? स्मृति खो गई। सदा ब्रह्मभाव की स्मृति बनाए रखो मुमुक्षु सदा सावधान रहे। "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्"। भगवान कहते हैं मेरा ब्रह्मभाव स्मरण करो। ओंकार का उच्चारण करो। यही अक्षर ब्रह्म है। अक्षर माने न क्षरति इति अक्षरः जो नष्ट नहीं होता सदा एक रस रहता है वह ब्रह्म ही अक्षर है यही ओंकार है। अर्थ का बोध नहीं होगा तो केवल उच्चारण का उतना महत्त्व नहीं होगा। भगवान कहते हैं मुमुक्षु मेरा स्मरण कैसे करे। "अनन्य-चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः" जो नित्य सदा सर्वदा अनन्यभाव से

स्मरण करता है उस के लिए मैं सुलभ हो जाता हूं शीघ्रता से प्राप्त हो जाता हूं । जिस समय मुमुक्षु आत्मा की ओर दृष्टि करता है तो अन्य उस की दृष्टि में रहता ही नहीं । बृहदारण्यक श्रुति है । "**तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा ।**" (बृहदारण्योकोपनिषद् १ । ४ । ८) आत्मा ही सर्व प्रिय है । यह केवल शब्द मात्र नहीं है । अपने अनुभव से देखो मान लो किसी बड़े घर में अग्नि लग गई तो सब अपनी २ जान बचाकर भागते हैं । मां भी बाहर आ गई तब वह चिल्लाने लगी कि मेरा बच्चा भीतर सोया हुआ रह गया है जो उसे निकाल कर ला दे उसे मैं ५० हजार रूपये दूंगी । आग जोरों से जल रही है और वह घोषणा करती है जो बच्चे को निकाल लाएगा उसे पचास हजार रुपया दूंगी । देखो पहले आत्मरक्षा करती है फिर पुत्र की और उस के बाद धन की । अर्थात वित्त से प्रिय पुत्र है और पुत्र से प्रिय अपनी आत्मा है । मुमुक्षु इस लिए सावधान होकर लोक व्यवहार भी करे । अपने को भूल कर जगत का भला क्या करोगे । जो अपना ही भला नही कर सका वह दूसरे की रक्षा या भला क्या करेगा ? इस लिए कहते हैं कि यह जितना भी प्राणी जन्मे हैं सब स्मृति से ही बंधे हुए हैं । यह स्मर ही ब्रह्म है । हे नारद तुम इस स्मृति की ब्रह्मरूप से उपासना करो ।

उस परमात्मा की यह विचित्र सृष्टि है । उस ने तुम्हारे लिए यह पृथ्वी बनाई, जल बनाए, वायु बनाया । सोचो तो यदि तुम्हें अपने लिए स्वयं ही सब कुछ बनाना पडे तो क्या करोगें ? बुद्धिमान सत्य की खोज करे । केवल भोगोंमें जीवन व्यर्थमें व्यतीत नहीं करे। भोगोंमें घूमने वाला जो मन है उस के लिए भगवान गीतामें कहते हैं "आशापाशशतैर्बद्धा: कामक्रोधपरायणा:" आशा रूपी बन्धनमें बंधे रहते हैं । जैसे पशु को रस्सी से बांध कर जिधर खींचोंगे वह उधर ही जाएगा । ऐसे ही यह मनुष्य प्राणी भी आशारूपी रस्सी मे बंधे २ उन कामनाओं के पीछे खिचे चले जाते हैं । ऐसे लोग काम क्रोध के शिकार होते हैं । यद्यपि यह रस्सी गले में बंधी हुई दिखाई नही देती परन्तु सूक्ष्म शरीर इस रस्सी से बंधे २ सैकड़ों विपयों के पिछे अपनी सारी शक्ति क्षीण कर देता है । ऐसे मनुष्य को ईश्वर के बारे में सुनने की भी फुर्सत नहीं रहती ।

दृष्टान्त है एक सन्त एक सेठ की दुकान के सामने से रोज निकलते थे। सेठ से राम राम करते थे। एक दिन सेठ अपने धन्धे में मग्न था। सन्त ने रोज की तरह राम २ की पर सेठ ने देखा ही नहीं। सन्त खडे हो गये। बोले सेठ जी राम राम। सेठ बोला क्या हम तुम्हारी तरह संत हो गये हैं ? जो राम २ ही बोलते रहें, हमें बहुत काम हैं हम आपकी तरह फालतू नहीं। संत तो अहैतुकी कृपालु होते ही है उन्हों ने सोचा इस का कुछ भला अवश्य होना चाहिए। संकल्प सृष्टि से सेठ का रूप बनाया और सेठ के घर पहुंच गये। सिद्ध अपने संकल्प से जैसा चाहे वैसा कर सकता है। घर पहुंच कर बेटों को बुलाया और कहा देखो मेरी ही शक्ल बना कर एक आदमी आ रहा है उसे अन्दर मत घुसने देना। सेठ जैसे ही स्नान करके आया और घर में घुसने लगा तो बेटोंने लट्ठ लेकर उसे मारने लगे। सेठ घबरा कर भागा और सीधा राजा के पास पहुंचा। जाकर सारा किस्सा बताया। राजा ने बेटों को बुलवाया और कारण पूछा। बेटे बोले हमारे पिता जी तो घर में बैठे हैं। यह कोई नकली रूप बनाकर हमें ठगना चाहता है। राजा ने कहा पिता को बुलाकर लाओ। वे लोग बुला कर ले गये। राजा ने देखा तो वह भी चक्कर में पड गया। अब राजाको असली सेठ कौन है यह जानना कठिन हो गया। तब राजा ने एक युक्ति निकाली उस ने झट से पूछा. अच्छा बताओ बडे बेटे की शादी मे कितना रूपया खर्च किया था ? सेठ को तो याद नहीं था बोला: बही में लिखा है देखकर बता दूंगा। महात्मा जो सेठ बना हुआ था उस ने झट से बता दिया। तब राजा ने भी कह दिया की असली सेठ यही है। और इस प्रकार जो असली सेठ था उस को जेल में भजेने की आज्ञा दे दी। अब वह महात्मा अपने रूप में सेठ से बोले अब बताओ राम २ कहने की फुर्सत है कि नहीं। सेठ गिड गिडा कर सन्त के चरणों में गिर गया। क्षमा मागी और बोला भगवन मुझे बचाओ। अब मैं कभी ऐसी गल्ती नहीं करूंगा। तो जीव जब भोगों में प्रमादी हो जाता है तो उस असली सत् को भूल जाता है। इस असली सत् के बिना नकली का व्यवहार होता नहीं। इस के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है तुम्हारा शरीर। "एषोऽणुरात्मा चेतसा

वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश, प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा (मुण्डकोपनिषद ३ १ ९)" अणु माने अति सूक्ष्म जिस को इन्द्रियां देख नहीं सकती। इस को विशुद्ध चित्त से जानो। विशुद्ध चित्त का मतलब है विकार रहित चित्त। काम क्रोध लोभ मोह शोक यह चित्त के विकार है। अज्ञान काल में यह विकार चित्त को चंचल करते रहते हैं। परन्तु ज्ञान काल में यह अज्ञान काल जैसे शोक मोहादि नहीं रहते। ज्ञान काल और अज्ञान काल में अन्तर होता है। मात्रया तो शोक मोह तब तक रहेगा जब तक चित्त सिद्ध भूमि में स्थिर नहीं हो जाएगा। अन्दर से प्रकाश आने से चित्त के विकार क्षीण हो जाते हैं। सोचो तो कि इस चेतन के बिना तुम्हारे इस शरीर की क्या Value है। मंत्र कहता है "यस्मिन् प्राणः पञ्चधा सम्विवेश" पांच प्रकार से यह प्राण इस शरीर में कार्य करता हैं। मुख्य प्राण वायु मुंह और नासिका द्वारा नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता है। अपान वायु गुदा और उपस्थ में स्थित होकर मल मूत्र को शरीर से बाहर निकाल देता है। नाभि से कंठ तक विचरण करने वाला उदान वायु है। यह उदान वायु ही पुण्यशील मनुष्य को अन्य सब प्राण और इन्द्रियों सहित वर्तमान शरीर से निकाल कर पुण्य लोकों में ले जाता है। पाप कर्मो से युक्त मनुष्य को पाप योनियों में शूकर कूकरादि योनियों में और रौरव नरकादि में ले जाता है। व्यान वायु इस शरीर की बहत्तर करोड नाडियों में विचरण करता है। नाभिमें में समान वायु रहता जो मनुष्य द्वारा खाए गऐ अन्न के सार को सम्पूर्ण शरीर के अङ्गों में समान रूप मे पहुंचाता है। बुद्धिमान मनुष्य अपने शरीर के प्रत्येक अंग पर ठीक ध्यान रखे। जिस से शरीर स्वस्थ रहे और रक्त संचार ठीक से होता रहे।

इस प्राण का भी प्राण चेतन है। इस चेतनसे यह तन मन ओत प्रोत है। इस लिए यह मन चेतन की तरह ही हो जाता है। जैसे लोहा अग्नि में जलने पर अग्नि जैसे हो जाता है। ऐसे ही यह शरीर भी चेतन आत्मा जैसा ही हो जाता है। मंत्र आगे स्पष्ट करता है "यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा" चित्त के विशुद्ध होने पर इस चेतन आत्मा का बोध इस रूप में हो जाता है कि मैं इन्द्रिय संघात नहीं। "मै ब्रह्म हूं।" "साक्षी स्वरूप हूं।" ऐसा ज्ञान हो

जाने पर जन्म मरण का चक्कर माया का बन्धन समाप्त हो जाता है।

" अनेकचित्तविभ्रान्ता " जिन का चित्त शान्त स्थिर नहीं होता । वह अनेक प्रकार से भ्रान्त रहते है। अर्थात् नाना प्रकार की भोग वासनाओं से मलिन और क्षुब्ध हो रहे हैं। इस कारण से सब लोगों के लिए उस परमात्मा को जानना अति दुर्लभ है। अन्त:करण के विशुद्ध होने पर जीव सब प्रकार से समर्थ हो जाता है । इस लिए मुमुक्षु भोगों से विरक्त हो कर परमात्मा के चिन्तन में लग जाता है तो उस परम तत्त्व को पा लेता है । जिस का चित्त उस एक तत्त्व में स्थिर हो गया है उन्हे कोई भय नही रहता । पर यदि मृत्यु के समय भी चित्त चंचल हो गया तो उसी भाव में चला जाएगा। इस का बडा उदाहरण जड़ भरत है। जन्म और मरण कर्म के अधीन है। यह विकासवाद के सिद्धान्त के अधीन नहीं। विकासवाद से शरीर छोटा बड़ा तो हो सकता है पर जन्म मरण इस के अधीन नहीं। जब यह जीव ठीक रास्ता पकड़ कर चलेगा तभी इसका भान होगा। लोक जीवन में भी और पर लोक में भी। नारद कहते हैं हे भगवन इस स्मर से परे भी कुछ है। भगवान सनत्कुमार बोले हे नारद स्मृति के बाद आशा की बात आती हैं परन्तु यह हम कल समझाएंगे। आज तो तुम स्मर की ही ब्रह्म रूप से उपासना करो। स्मृति की ब्रह्मभाव से उपासना करने वाला उन लोकों को स्वेच्छा से प्राप्त होता है जहां २ स्मृति का भान है महत्त्व है स्मृति की प्रतिष्ठा है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

१।६।८५

प्रवचन सं. ४३

"ॐ आशा वाव स्मराद्भूय .... आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति"

(छान्दो ० ७।१४।१-२)

नारद ने भगवान सनत्कुमार से पुछा कि हे भगवन इस स्मृति से बड़ा

कौन है ? महर्षि बोले हे नारद आशा स्मृति से बड़ी है। यह स्मृति भी कब होगी । स्मृति से पहले अनुभव प्रत्यक्ष हुआ। तदनुरूप संस्कार बना और यह संस्कार बुद्धि में जम कर बैठ गया। जितना ऊंचा संस्कार होगा उतनी स्मृति होगी। जिस पदार्थ को ध्यान से देखोगे उस का संस्कार हृदय में प्रबल रूप से जम कर बैठ जाता है। फिर उस की स्मृति होती है। सामान्यतः हम पदार्थो को देखते हैं और भूल ते जाते हैं। पर जिस पदार्थ को ध्यान से देखते हैं उस की स्मृति होती है । धर्माऽधर्म पुण्याऽपुण्य के संस्कार जन्म जन्मान्तर तक साथ रहते हैं जीव आशा बांध कर बैठ जाता है कि उसे बाहर के विषयों से सुख मिलेगा। उस की यह प्रबल इच्छा होती है कि उसे सुख मिले किन्तु विचार करो कि क्या इन बाहर के विषयों से तुम्हे सुख मिल सकता है? क्या सुख इन विषयों में है जो तुम्हे मिलेगा ? सुख तो तुम्हारे भीतर है। यह विषय तो उस को प्रगट करते हैं। यह तुम्हारे अन्दर के सुख को प्रगट करते है इस लिए यह विषय निमित्त मात्र है जीवन में अनुभव करो । जैसे अपना ही बेटा है। जीवन में गल्ती करता है। तो बताओ तुम्हे उस पर क्रोध आएगा कि नहीं ? अब विचार करो यह क्रोध आया कहाँ से ? तुम्हारे अन्दर सोया हुआ था अब जाग गया। अब सोचो यदि वही गल्ती तुम स्वयं करते तो क्या करते ? मनुष्य का स्वभाव है कि अपने प्रति वह बडा दयालु हो जाता है। जो क्रोध दूसरे के प्रति आता है वह अपने लिए नहीं आता असुरों और देवताओं ने मिलकर समुंद्र मंथन किया। बड़े २ ऐश्वर्य निकले। विष्णु बोले यह लक्ष्मी तो मुझे दे दो। इन्द्र ने कहा यह ऐरावत हाथी दे दो। जो बढिया बढिया पदार्थ निकले वह तो देवताओं ने ले लिए। जब विष का घड़ा निकाला तो सब एक दूसरे का मुह ताकने लगे। सोचा इस का क्या किया जाए। जैसे आज कल scientist बड़े २ भयंकर एटम तैयार करते हैं। जब अस्त्र तैयार हो जाता है तो उसे नष्ट करना कठिन हो जाता है। जिस के पास अस्त्र होता है वह स्वयं भी भयभीत होता है और जिस के पास नही है वह भी भ भीत है। इसी प्रकार देवता इस विष के घड़े के लिए भय भीत हो रहे हैं। उन्हें ने सोचा इस संकट से तो महादेव ही बचा सकते हैं। सब ने उन के पास जाकर हाथ जोड कर प्रार्थना की कि भगवन आप ही पियो

इस को। देवी पार्वती जो पास ही बैठी थी बिगड़ी । कौन स्त्री चाहती है कि उस के पति को विष दिया जाए । पर देवताओं ने प्रार्थना की कि भगवन संसार के भले के लिए आप इस को पी लीजिए नहीं तो संसार नष्ट हो जाएगा। भगवती पार्वती को समझाया देवी यह साक्षात् भगवान हैं इन का कुछ नहीं बिगड़ेगा। ।

इस शरीर को समुद्र समझो। दैवी और आसुरी वृत्तियां मन्थन कर रही हैं। देव वृत्ति तो दया धर्म आदि देव गुणों को उत्पन्न कर रही हैं और आसुरी वृत्ति क्या देगी ? यह वृत्ति काम क्रोध आदि आसुरी विकारों को उत्पन्न कर रही हैं। क्रोध आए तो करो बेशक किन्तु ज्ञान के प्रकाश में ही बोलो। नहीं तो यह विकार तुम्हारे ज्ञान को दबा देगें। ज्ञान के नियन्त्रण में किया गया क्रोध क्रोध नहीं है। नहीं तो यह क्रोध तुम्हें नष्ट कर देगा। **"इन्द्रियाणां हि विचरतां विष्वेयेष्व पहारिषु, संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्"**(मनुस्मृति २। ८८) विषयों के साथ तुम को मिलना तो पडेगा। व्यवहार तो जगत में ही करना पडेगा। इस लिए शास्त्र कहता है कि इन्द्रियों का संयम करो। जैसे किसी सुन्दर बगीचे में जाओ तो वहां लिखा रहता है। "फूल तोडना मना है।" तो वहां संयम करना पडता है। वहां से फूल तोडना चोरी करना है और चोरी का दण्ड भी भुगतना पड सकता हैं। इसी तरह सोचो यह विषय तुम्हारी इन्द्रियों को चोर रहे हैं। बिना इन्द्रिय शक्ति के तुम्हारा शरीर केवल खोल मात्र रह जाएगा। यह विषय इन्द्रियों की शक्ति को क्षीण बना देते हैं। कहा गया है "दुर्लभो मानवो देहो" यह मनुष्य शरीर बडा दुर्लभ है। इस लिए बुद्धिमान इन्द्रियों का संयम करे। अगर कोई यह समझे कि यह विषय समाप्त हो जाएंगे तब हम विरक्त हो जाएंगे। विषयों के नष्ट होने से हम विरक्त नहीं होंगे। हम विरक्त होंगे तो अपने ऊंचे ज्ञान से। जैसा पेट भर जाने पर भोजन से तृप्ति हो जाती है और अधिक भोजन खाने की इच्छा नहीं रहती। ऐसे ही विषयों से तृप्ति हो जाने पर अधिक विषय भोग की इच्छा नहीं रहेगी तो साचो कितने जन्म हो चुके है तुम्हारे। लाखों वार इन भोगों को भोग चुके हो पर वासना अभी तक तृप्त नहीं हुई इस लिए कहते है कि आशा को दुर्वल बनाओ। वासना को कमजोर करो। सांसारिक भोगों की आशा को कम करो और ब्रह्म

प्राप्ति की आशा को बलवान बनाओ। जिस की कृपा से जी रहे हो इन्द्रियों के भोग ले रहे हो। वाणी बोल रहे है। मन विचार रहा है उधर ध्यान दो। ऐसे ब्राह्मी भावना करना ही मोक्ष की ओर जाना है। ऐसी भावना सहज पुण्य उत्पन्न करती है। सहज पुण्य मोक्षदायी है। यह सत्य के ज्ञान को प्रगट करेगा।

इस लिए मुमुक्षु हाथों से अच्छा कर्म करता है और बुद्धि से अच्छा विचार करता है। यदि सारथि घोडो को नियन्त्रण में रखेगा तो ठीक लक्ष्य तक पहुंच जाएगा। यह शरीर भी रथ है और इन्द्रियां घोडे। आत्मा रथी है। **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।** (कठोपनिषद् अ. १।३।३) "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्ता" श्रुति स्पष्ट करती है कि यह आत्मा शरीर इन्द्रिय और मन से युक्त होने पर भोक्ता बन जाता है और शरीर इन्द्रियों और मन से न्यारा केवल साक्षी रूप है। यह चिन्मात्र "साक्षी आत्मा मैं हूँ" मुमुक्षु को यह निश्चय करना है निश्चय तो दृढ करना ही पडेगा। चाहे इस जन्म में करो और चाहे सौ जन्मों में करो। इसी लिए बुद्धिमान प्रमाद रहित होकर इसी जन्म में निश्चय करले यह मन गाडी का Steering है। इस को घुमाओ। यदि ड्रायवर drink कर के बैठेगा तो मालिक को ठीक जगह नही पहुंचा सकेगा। यह बुद्धि तुम्हारी गाडी का ड्रायवर है। बुद्धि यदि शान्त व संयम में रहने वाली होगी तो अच्छे ज्ञान को प्रगट करेगी पर यदि अशान्त और असंयमी होगी तो तुम्हें किस घाट पर छोडेगी? महाभारत की बडी अच्छी कथा है। युद्ध में जब भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य धराशायी हो गये तो दुर्योधन ने विचार किया कि इस समय हमारा भला कर्ण ही कर सकता है। कर्ण भी कुन्ती का ही पुत्र था और अर्जुन की बराबरी का ही शूरवीर था। दुर्योधन कर्ण के पास जाता है और उस से कहता है कि भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य यद्यपि हमारे सेनापति थे, परन्तु उनका मन पाण्डवों की ओर था। अद्यपि वह शरीर से हमारे साथ थे पर मन पाण्डवो के पक्ष में होने के कारण वह पाण्डवो को मारने में असमर्थ रहे। कर्ण ने कहा कि मैं अर्जुन के बराबर ही शस्त्रविद्या में निपुण हूं। यद्यपि विद्या तो दोनों की एक जैसी है पर अर्जुन का सारथी बडा चतुर है। यदि वैसा ही योग्य सारथी मुझे भी मिल सके तभी मैं उसे हरा सकता हूं। तुम्हारा मामा शल्य कृष्ण की तरह ही चतुर है यदि

उस को तुम अपनी ओर कर सको तो ठीक है। दुर्योधन ने शल्य को बुलवाया और रास्ते मे हीं उसे प्रसन्न कर के अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। शल्य तो पांडवों की सहायता के लिए आरहे थे। अन्तिम पडाव पर दुर्योधन स्वयं शल्य से मिलने गया। शल्य समझ रहा था कि यह मार्ग की सब सुविधा का प्रबन्ध युधिष्ठिर कर रहा था। पर स्वयं ती मिलने आया ही नहीं। दुर्योधन ने बताया कि मामाजी यह सब प्रबन्ध तो मैं ने किया था। शल्य प्रसन्न हो गये और बोले कि बोलो मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं। दुर्योधन ने कर्ण की बात बताकर शल्य से सारथी बनने का प्रस्ताव रखा। शल्य को बडा क्रोध आ गया और बोला दुर्योधन मुंह सम्भाल कर बात करो। तुम मेरा अपमान कर रहे हो इतने में युधिष्ठिर भी आ गये। सारी बात जानकर उन्होंने शल्य से कहा मामा जी बुद्धिमान क्रोध नहीं करते। बल्कि बुद्धि से काम लेते हैं। आप सारथी बन कर हमारा भी भला कर सकते हैं और दुर्योधन से अपमानका बदला भी ले सकते हैं। रथी का बल सारथी होता है। सारथी अपने रथी की प्रशंसा करके उस का बल बढाता है। जब प्रशंसा भी जीवन है। जीव परस्पर प्रशंसा चाहता है। हम जो परमात्मा की प्रार्थना करते है वह क्या है? प्रशंसा ही तो है। भगवान भी जब प्रशंसा से प्रसन्न हो जाता है तो तुम्हारा क्या है? "स्वार्थी अन्धो न पश्यति" स्वार्थी तो अन्धा होता है वह भला बुरा कुछ नहीं सोचता। इस समय दुर्योधन का स्वार्थ है इस लिए वह आप से ऐसा कह रहा है। शल्य की समझ में बात बैठ गई और उस ने उस की बात स्वीकार कर ली। पर युद्ध में जब कर्ण शल्य से कहता है कि मेरा रथ अर्जुन के रथ के सामने ले चलो तो शल्य उसे निरुत्साहित करते हुए कहता है तुम क्या अर्जुन का सामना करोगे? खरगोश भला सिंह के सामने क्या जाएगा इस प्रकार जब २ भी समय आता है शल्य कर्ण का मनोबल कम करता है।

इसी लिए कहा है कि सारथी यदि अनुकूल होगा तो रथी की विजय अवश्य होगी। यदि सारथी अनुकूल नहीं होगा तो विजय नहीं हो सकती। इसी तरह तुम्हारी बुद्धि तुम्हारा सारथी है। यदि बुद्धि तुम्हारे अनुकूल होगी तो तुम्हे मोक्ष मार्ग की ओर ले जाएगी। नहीं तो बार २ जन्मों और मरो। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं भाग्य अच्छा होगा तो मनुष्य मां मिल जाएगी।

नहीं तो सिंह पूंछवाली मां की तो कमी नहीं है। भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को उपदेश करते हुए कहते हैं कि "आशां उपास्स्व" इस आशा की ब्रह्म रूप से उपासना करो। शुद्ध ब्राह्मी आशा जब बन जाएगी तो वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा। और यह वैराग्य ही एक ऐसा शस्त्र है जो इस संसार चक्र को काट सकता है और मोक्ष की ओर ले जा सकता है। किसी महापुरूष की शरण ग्रहण करो। "अमोघा हि यस्य आशिषो भवन्ति" ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरूष का आशीर्वाद अमोघ होता है। वह जिस किसी प्रिय शिष्य को आशीर्वाद देगा वह अवश्य फलीभूत होगा। ब्रह्मवेत्ता सत्यवक्ता होता है। जो बोलता है वह सत्य हो जाता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४४

२।६।८५

ॐ प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वं समर्पितं प्राणः प्राणेन याति, प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति। प्राणो हि पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥

(छान्दो ७।१५।१)

नारद ने पूछा हे भगवन इस आशा से कोई महान है? यह आशा एक ऐसी रस्सी है जिस ने सब प्राणियों को बांध रखा है। जिधर रस्सी खिचती है उधर ही खिचे चले जाते हैं। कोई विवेकशील बुद्धिमान ही अपनी आशा को refined कर सकता है। आजकल यद्यपि सब वस्तुओं के लिए बडी २ refineries बनी हुई है। पर आज तक मनुष्य को refined करने के लिए कोई मशीन नहीं बनी। अप्राप्त वस्तु की इच्छा ही आशा है। मनुष्य स्वयं यदि चाहे

तो ही अपने मन को शुद्ध कर सकता है। ब्राह्मी आशा हो तो मिथ्या राग द्वेष की निवृत्ति हो जाती है। भगवान सनत्कुमार ने कहा हे नारद इस आशा से बड़ा प्राण है। नारद ने पहले प्रश्न किया था कि हे भगवान मैं ने सुना है कि "शोकं तरति आत्मवित्" मैं अज्ञानी हूं इस लिए शोक में डूबा हूं। अज्ञानी का लक्षण बताया जिस के चित्त में शोक बैठा हो। शोक एक ऐसा समुद्र है जिस से केवल आत्मवेत्ता ही पार हो सकता है। जो इस आत्मतत्त्व को नहो जानेगा वह शोक से पार नहीं हो सकता। इस जीवन का सारभूत तत्त्व आत्मा ही है।

जब यह शरीर, यह इन्द्रियां, यह मन बुद्धि किसी न किसी रोग से पकड़े हुए हैं तो इन में शोक भी आएगा। मृत्यु का भय भी होगा। इस शोक और भय को तभी पार कर पायेगा जब यह जान जाएगा कि "मैं आत्मा हूं।" "आत्मा अमर है।" "मैं अमर हूं।" इस लिए मेरी मृत्यु नहीं। ऐसा आत्मवित् ही शोक एवं भय से तर जाता है। नारद ने पहले अपनी विद्याओं की List बता दी थी। भगवान सनत्कुमार ने कहा हे नारद तुम ने अभी तक केवल शब्दों को ही पकड़ा है। लेकिन तुम्हें इन शब्दों के अर्थ की अनुभूति जब तक नहीं होगी तुम इन का अर्थ नहीं समझ पाओगे। अर्थ ज्ञान के बिना तुम्हारी प्रवृत्ति और निवृत्ति सम्भव नहीं। मान लो किसी ने कहा नैरे पो नैरे पो। तामिल भाषा में कहा। इस का अर्थ है सीधे चलो। पर यदि हम इस भाषा को जानते ही नहीं तो हमारे ऊपर इस शब्द की क्या प्रतिक्रिया होगी ? शब्द तो पकड़ा परन्तु अर्थ समझ में नहीं आया। इस लिए प्रवृत्ति सम्भव नहीं है। इसी लिए तुम अभी तक अविद्या में ही घूम रहे हो। अन्धकार में हो। शोक में हो। अब कहते हैं "प्राणो हि बलं" प्राण ही एक मात्र बल है। इस के द्वारा ही सब बलवान है। तुम्हारे अन्दर प्राण ही बल है। कभी २ दौड़ की प्रतियोगिता होती है, पहलवान कुश्ती लड़ते हैं। पर कब तक दौड़ेगा ? कब तक लड़ेगा ? जब तक प्राण नियन्त्रण में होंगे। जब प्राण हांफने लगता है तो हार जाता है। सीधा समझो इस दुयां नें सब बलवान का ही आश्रय लेतेहैं। कमजोर का आश्रय कोई नहीं लेता। बेटा

जवान हो जाता है तो माता पिता भी उस का आश्रय लेने लगते हैं। इसी तरह इस शरीर में यह प्राण ही बल है और इन्द्रियां मन बुद्धि सब इसी को पकड़े हुए हैं। इसी के आश्रय में हैं। यहां दृष्टान्त देते हैं " **अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्** " जिस प्रकार रथ के पहिए की नाभि में लगे हुए अरे नाभि मे ही आश्रित रहते हैं इसी प्रकार जीवन की गाड़ी का प्राण अरा की भांति है। नाभि में इन्द्रियां प्राण में अरा की भांति प्रविष्ट है। किनारे का भाग नेमि है और बीच के भाग को अरा कहते हैं जो नाभि चक्र में डंडे की भांति स्थित है। सब प्राण के आश्रय में हैं। यह प्राण कहीं रूक गया तो देखना सुनना सब बन्द हो जाएगा। प्राण ही सब इन्द्रियों को बल दे रहा है। जैसे कोई महाराजा अपने बड़े आफीसर को पूरी शक्ति व अधिकार देता है तो वह आफीसर भी महाराजा की तरह ही रहता है। हमारे शरीर का महाराजा हमारी आत्मा है। यह शरीर इस के लिए बड़ी सुन्दर गाड़ी है। परन्तु यह गाड़ी संसार की किसी मार्केट मे मिलने वाली नहीं है। इस को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की मार्केट में जाना पड़ेगा। वहां तक पहुंचने के लिए भी यदि राजमार्ग छूट गया और गली कूचे में फस गये तो सींग पूंछ वाली कार मिल जाएगी। कभी देखी है कि नहीं? यह पशु जगत। तो परमात्मा ने देखा कि इस जीव को मायामयी नगरी में जाना तो पड़ेगां पर वहां कब तक रहना? कैसे जाना कहाँ रहना कैसे होगा यह सब! निराकार को यदि साकार बनकर जाना पड़ेगा तो कैसे बनेगा। इस के लिए हमे किसी उपाधि को पकड़ कर जाना पडेंगा। "**स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति** " उस परम पुरूष परमात्मा ने विचार किया कि जिस ब्रह्माण्ड की मैं रचना करना चाहता हूं उस के लिए सर्व प्रथम प्राणका सृजन करूंगा" स: प्राणमसृजत, प्राणे प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठित: प्राणे उत्क्रान्ते उत्क्रमिता " प्राण का सृजन किया और उस के आश्रय में इन शरीरों में प्रविष्ट हो गया। गीता में कहा " सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि" जब तक चेतन के आश्रय में रहेगा तब तक बेट बेटी जब है पर चेतन के निकलते ही कुछ नहीं। प्राण को नौकर समझो। जैसे कोई सासु अपने जमाई को बहुत प्यार करती है। कभी २ तो अपने बेटे

को भी फटकर देती है। वह जमाई अपने साथ नौकर लेकर आता है तो वह सासु नौकर का भी आदर करती है। कहीं नौकर नाराज होकर चलने लगेगा तो जमाई भी चल देगा। जमाई तुम्हारी आत्मा है जब यह प्राण चलने लगा तो यह जमाई तुम्हारी आत्मा भी निकल जाएगा। इस लिए प्राण की रक्षा करो।

श्रुति कहती है "कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठित:" किस के रहने से तुम रहोगे किस के जाने से तुम चलोगे। तो परमात्मा ने सोचा कि साक्षात् तो हम कहीं आ जा सकते नहीं इस लिए उस ने प्राण का सृजन किया। "**केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्त: केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।**" ऋषि ने प्रश्न किया इस शरीर के प्राण इन्द्रियां, मन बुद्धि सब नौकर हैं पर सब से पहले डयूटी पर कौन आता है ? तो कहते है सब से पहले प्राण ही क्रियाशील होता है। जब मां के पेट से बाहर आ गये तो सभी इन्द्रियां क्रियाशील हो गई पर मां के गर्भ में ही पांच महीने में प्राण संचार शुरू हो जाता है। मां का भोजन ही बच्चे का भोजन होता है इस लिए मां को उस समय अच्छा भोजन करना चाहिए। बाहर आकर अकड़ जाते है कि मां तुम ने हमारे लिए क्या किया है ?

मंत्र आगे कहता है "केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति" किस की इच्छा से वाणी बोलती है ? आंख देखती है ? कान सुनता "**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राण:, चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीरा:**" मंत्र कहता है वह श्रोत्र का भी श्रोत्र है। यह कान तो रिसीभर है शब्द को सुनने वाला मो अन्दर बैठा है। वह मन का भी मन है "मननाय मन:" मनन करने वाला मन। यदि किसी वस्तु का मनन नहीं होगा तो वह वस्तु मन में प्रगट नहीं होगी। मनन वृत्ति विचार वृत्ति है। श्रुति कहती है यह चक्षु अपने आप नहीं देखेगा। इस चक्षु को तो चश्मा समझो। जैसे चश्मा अपने आप कुछ नहीं देखता ऐसे ही यह आंख अपने आप कुछ नहीं देखती। चेतन की सत्ता के बिना यह आंख कुछ नहीं देखेगी। जैसे विद्युत प्र-

वाह के बिना बल्ब प्रकाश नहीं देगा। ऐसे ही इस आंख को भी बल्ब ही समझो बिना चेतन के प्रकाश के यह कुछ नहीं करेगी। वह वाणी की वाणी है। यह वाणी भी जब ठीक चेतन के प्रकाश में होगी तो ठीक बोलेगी। चेतन का प्रकाश ठीक न होने पर यह वाणी गडबडा जाए गी। निद्रा में व्यक्ति बड़बड़ाता है पर स्पष्ट नहीं होता। "प्राणस्य प्राण:" यह प्राण भी अपने आप कुछ नहीं करेगा। यद्यपि शरीर की सारी कियाएं इस प्राण के अधीन है पर यह प्राण भी तभी तक काम करेगा जब तक चेतन की सत्ता में रहेगा। उस चेतन में सब इन्द्रिय गण प्रविष्ट हैं पहिए के अरा जैसे नाभि में समर्पित हैं। ऐसे ही यह प्राण तुम्हारे जीवन की नाभि है। सुव्यवस्थित रूप से प्राण में यदि इन्द्रियां है तो ठीक से काम करेगी। पर यदि यह इन्द्रियां प्राण में सुव्यवस्थित नहीं हैं तो यह अस्त व्यस्त रहेगी। इस प्राण को आगे कर के वह परा देवता तुम्हारे शरीर में आ गया। नाम रूप की सृष्टि किया। बच्चा जब जन्मता है तो कितना बड़ा होता है? बढना, यह कार्य किस की सत्ता में हो रहा है। जो करता कुछ नहीं पर हो सब उसकी सत्ता मे रहा है। प्राण को आगे कर के काम किया तो नाम हो गया प्राणी। "अनेन रूपेण जीवात्मनानुप्रविश्य" जैसे कोर्ट में वकील को आगे कर देते हैं वही हमारी ओर से बोलता है पर हम उस के खाने दाने का प्रबन्ध कर देते है। इसी तरह यह परा देवता पीछे बैठकर प्राण से सब कुछ करवा रहा है।

भूतों का सार तुम्हारी बुद्धि में प्रतिष्ठित है। यह बुद्धि प्राण में प्रतिष्ठित है। इस शरीर को एक राज्य समझो। इस में जो कुछ भी होगा इस प्राण के आश्रय में ही होगा। जैसे डाक्टर ने अपरेशन किया। पर प्राण यदि रहेगा तो ठीक होगा अन्यथा प्राण के निकल जाने पर कुछ भी ठीक नहीं होगा। श्रुति वैज्ञानिक तथ्य का उलेख करती है। प्राण ही प्राण के साथ जाता है। मान लो अन्धेरी रात में तुम कहीं जा रहे हो। तुम को ऐसा लगा कि कोई तुम्हारे आगे जारहा है तुम एक दम डर जाओगे कि कोई भूत है। तुम्हारे शरीर का प्राण दूसरे शरीर के प्राण के साथ मिलकर चलेगा तो भय नहीं होगा। पर यदि प्राण निकल गया और पिता का शरीर हिलने लगा, तो बेटा वहां से भाग खडा होता है। इस लिए महर्षि कहते हैं हे नारद प्राण को ब्रह्म समझकर इस की उपासना करो।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ४५

३-६-८५

"ॐ प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ।। स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याहधिक्त्वास्त्वित्येवैनमाहुः पितृहावै त्वमसि भ्रातृहावै त्वमसि स्वसृहावै त्वमस्याचार्यहावै त्वमसि ब्राह्मणहावै त्वमसीति"

(छान्दो० ७।१५।१-२)

विचार आया कि प्राण बडा महत्त्वपूर्ण है इस लिए परमात्मा ने इस प्राण को सर्वाधिक अधिकार दिया। उस परमात्मा ने सोचा कि इस माया के बगीचे में हम जाएंगे तो कैसे जाएंगे। यह शरीर देखो जब तक प्राण है तभी तक चेतन आत्मा विराजमान है। जहां प्राण ने इस शरीर को छोडा कि यह चिदात्मा भी इसे छोड देगा। "प्राणः प्राणं ददाति" प्राण ही प्राण को देता है प्राण ही प्राण से लेता है। देखने वाले शरीर भले ही जुदा २ दीखते हैं पर प्राण सब का एक ही है। एक शरीर से यह प्राण दे रहा है दूसरे शरीर से ले रहा है। अपने ही देता है अपने ही लेता है। कहोगे कि यह प्राण भी तो जड है। वायु का विकार ही है। यह बात सत्य है पर जैसे यह शरीर आत्मा के होने से चेतन जैसा दीखता है ऐसे ही यह प्राण भी चेतन के साथ मिल कर सब कुछ करने में समर्थ होता है। जैसे महाराजा का एक अधिकारी जिस को महाराजा जैसा ही माना जाता है। यह तुम्हारी आत्मा महाराजा का भी महाराजा है। इस की छाया में रहने वाला प्राण भी आत्मा जैसा चेतन ही दीखता है। हम लोग एक साथ आते हैं जाते हैं। यह प्राण ही आ रहा है प्राण ही जा रहा है।

प्राण के द्वारा प्राणपति, जो अन्तरात्मा है उसी का व्याख्यान है। **"प्राणो हि माता प्राण: पिता प्राणो भ्राता प्राण: स्वसा"** यह प्राण ही माता हैं प्राण ही पिता है। प्राण है तभी तक माता है प्राण हैं तभी तक पिता है। यह प्राण ही भाई है। प्राण ही स्वसा है स्वसा माने बहन। पति की बहन ननंद जो होती है उसे स्वसा कहते हैं। ननंद जो कभी नाना प्रकार के आनन्द दे और कभी कोई भी आनन्द न दे। प्राणो हि ब्राह्मण: प्राण: आचार्य:। प्राण ही ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण पुरोहित जो तुम से कुछ सत्कर्म ही करवाता है। यह ब्राह्मण भी प्राण ही हैं। इस माया की नगरी में, यह शरीर क्या हैं माया नगरी का स्टोर रूम समझो। इस में नाना प्रकार के शोक मोहरूपी माल भरा पडा हैं। यह जीव इस शोक मोह के बाजार में विभ्रान्त हो जाता है। गीता में कहा है **"अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृता:, प्रसक्ता: कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।"**
(गीता. अ. १६।१६)

भगवान कहते हैं कि इस संसार में यह जीव नाना प्रकार के पदार्थों में विभ्रान्त हो रहा है। यह संसार शोक मोह का समुद्र है और यह जीव इस में माया के जाल द्वारा नाना प्रकार की वासना में फंसा हुआ है। न भाई दुख देता है न कोई दूसरा इस जीव को दुख देता है। इस की वासनाएं ही इसे दुख देती हैं। इस लिए बुद्धि मान मनुष्य का ज्ञान शुद्ध होना चाहिए। सोचो इस शरीर में ऐसा तत्त्व क्या है? जिस के रहने से ही सब प्यारे हैं। यद्यपि वह किसी को दीखता नहीं पर उस के बिना भी कुछ नहीं दीखता। उस अन्तरात्मा में मन को कौन लाएगा? यह चक्रपथ तो है नहीं जो तुम घूमकर वहां स्वयं पहुंच जाओगे। यह तो ज्ञान द्वारा गुरु ही है जो तुम्हें इस अन्तरात्मा तक पहुंचने का मार्ग बतलाएगा। मन्त्र है :- **"तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्, अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।"** (कठोपनिषद् अ. १।२।१२) मंत्र कहता है यह अन्तरात्मा गूढतम हैं इस को जानने वाला ही शोक मोह के पार जा सकता है। अन्तरात्मा है तो प्राण भी रहेगा।

इस प्राण के द्वारा इस अन्तरात्मा की शोभा बढ रही है आंख की चमक से उस की ही चमक है जो अन्दर बैठा है जैसे बैटरी का बटन दबाओ परन्तु

यदि अन्तर करंट नहीं होगा तो प्रकाश नहीं होगा। ऐसे ही तुम्हारे मुंह की चमक उस अन्तरात्मा से ही है। उस के बिना कोई कोमलता नहीं कोई सुन्दरता नहीं। कितना भयानक लगता है मुर्दे का मुंह। वह सुन्दराणां सुन्दरः है। इस सत्य को जानने वाला विद्वान अतिवादी नहीं होगा। वह जानता है कि इस शरीर के अन्दर जो भी सुन्दरता, जो भी कोमलता भान हो रही है। इन इन्द्रियों में, प्राण में, इस शरीर में, वह सब अन्तरात्मा का ही है। इस लिए बुद्धिमान सत्य की दृष्टि को जरूर बुद्धि से पकडे। नहीं तो जीवन यों ही व्यर्थ चला जाएगा। पशु घास खा कर चला गया आप लोग पूरी परोंठे खाकर चले जाएंगे। अन्तर क्या पडा? "आत्मक्रीड आत्मरतिः" बुद्धिमान आत्मा से खेले। दूसरों का खेल देखते २ आंखे शीशा हो गई पर अपने को देखा ही नहीं।

आत्मरतिः! श्रद्धा, प्रेम, स्नेह राग यह चारों रति में होते है। जगत में यह चीजें अलग २ जगह पर होती हैं वडो के प्रति श्रद्धा होती है, बराबर वालों में प्रेम होता है, छोटो मे स्नेह होता है। और घर की वस्तुओं की रक्षा में राग होता है। पति पत्नी मे रति होती है। उस मे यह चारो भाव एक ही स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। पति जानता है की पत्नी न जाने किस महान आत्मा को जन्म देगी इस लिए उस के प्रति श्रद्धा होती है। बराबर का होने के कारण प्रेम करता है। छोटी होने से स्नेह भी रखता है और उस का पालन पोषण भी करता है रक्षा भी करता है इस लिए राग भी होता है। इस प्रकार पति पत्नी के प्रेम को रति कहा जाता है। ज्ञानी की रति आत्मा मे होती है। उसी में श्रद्धा, प्रेम, स्नेह और राग करता है। इस शरीर में बेटा या बेटी हो। यदि कोई अपने माता पिता गुरू या ब्राह्मण का अनादार करे तो लोग उसे धिक्कार देते हैं। पर यदि प्राण निकल गया तो बेटा बेटी उस शरीर को चिता मे जला देते हैं। चन्दन की लकड़ी और घी आदि डाल कर उसे भस्म कर देते हैं। तब लोग उस प्रशंसा करते हैं कि मां संस्कार वडा अच्छा किया। तो सोचो कि प्रतिष्ठा किस की है? मुमुक्षु इस आत्मा की ऐसे प्रतिष्ठा करे। कहते हैं एक वार नारद ऋषि इस धरा धाम मे भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते २ एक स्थान पर उन्हों ने देखा कि हजारों की संख्या में भक्त जन आत्मविभोर होकर हरि नाम का कीर्तन कर रहे हैं। नारद सोचने लगे कि इतने सारे भक्त

भगवान के नाम का संकीर्तन यहां कर रहे हैं और भगवान अपना हृदय कठोर कर के वहां वैकुण्ठ में बैठे हैं। वह यहाँ आकर देखें तो उन के भक्त कितने ध्यान मग्न होकर उन्हे पुकार रहे है। बस वह एक दम वैकुन्ठ पहूंचे और विष्णु भगवान से प्रार्थना करने लगे कि आप तो करूणासागर हैं। दया के समुद्र हैं। फिर इतने निष्ठुर होकर कैसे बैठे हो। जरा चलकर देखो तो तुम्हारे हजारो भक्त तुम्हे पुकार रहे हैं। भगवान बोले नारद। वह भक्त कैसे दीखते हैं वैसे हैं नही। वह सच्चे हृदय से मुझे नहीं पुकार रहे। नारद ने कहा भगवन आप जाकर देखे तो। नारद इस प्रकार भगवान को तैयार कर के वहाँ ले ही गया। नेपाली भाषा में कहेते है फकाकर ले गया। चलते २ जहाँ वह भक्त मण्डली कीर्तन कर रही थी उस से पांच मील पहले भगवान रुक गये और बोले कि नारद अब इतनी दूर तो मैं चल कर आया हूं अब तुम उन भक्तों को यहाँ ले आओ मैं आगे नहीं जाऊंगा। नारद ने कहा अच्छा अच्छा भगवान आप यहीं बैठिए मैं अभी जाकर सब भक्तो को लेकर आमा हूं।

नारद तुरंत वहाँ पहुंचे जहाँ भक्तजन कीर्तन में मस्त थे। नारद ने भगवान के पधारने की सूचना सब को सुनाया। कुछ भक्तों ने तो अनास्था प्रगट की कि ऐसे कैसे भगवान हैं जो वैकुण्ठ से यहाँ आ गये और पांच मील की दूरी पर बैठ गये। जो वहाँ तक आ सकते है वह क्या यहाँ नहीं आ सकते। आप गप्प मार रहे हो। परन्तु कुछ भक्त नारद जी के समझाने पर चल पडे। इधर भगवान ने अपनी भगवती से कहा कि देवी जरा तुम आगे जाकर देखो तो कि यह भीड जो आ रही है यह मेरे भक्त हैं या तुम्हारे? इन की परीक्षा तो करो। माया ने वहाँ जाकर तांबे के पैसों की वर्षा कर दी। भक्त लोग वहीं रूक गये और समेटने लगे। नारद ने कहा अरे यह क्या कर रहे हो आगे चलो भगवान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ तो वही रूक गये और कुछ आगे चल पडे। थोडा आगे जाकर देखा तो चांदी के सिक्कों की वर्षा हो रही है। भक्त फिर वहाँ रूक कर इकट्ठे करने लगे। नारद ने फिर समझाया कि आगे बढो। फिर कुछ वहीं रूक गये और कुछ आगे चलने लगे। कुछ और आगे जाकर देखा तो स्वर्ण की वर्षा हो रही है। यहाँ तो भक्त जम ही गये बोले अब आगे

नहीं जाएंगे । महाराज आप तो संन्यासी हैं पर हम लोग तो गृहस्थी हैं । बेटे बेटियों की शादियां करनी है इतना सोना चांदी छोड कर हम आगे कैसे बढ सकते हैं । नारद ने बहुत समझाया तब कहीं दस भक्त आगे चलने को तैयार हुए । परन्तु थोडी ही दूर चलने पर देखा कि हीरे ज्वाहरात बरस रहे हैं । सब वहीं रूक गये । नारद सिर पटकता है पर भक्त आगे बढने का नाम ही नहीं लेते । कहने लगे थोडा ले लेने दो फिर तुम्हारी बात सुनेंगे । यह चार कोस तक हुआ । पांचवे कोश में भगवान स्वयं खडे थे वहां तक केवल दो चार ही भक्त पहुंचे । माया के बजार में सब अटक गये । रूक गये । तो कहने का अभिप्राय यह है कि यह तुम्हारा शरीर ही पंच कोश की यात्रा है । स्थूल शरीर तावे की वर्षा है । बहुत से तो यहीं रूक जाते हैं । इस शरीर और इस के भोगों में ही आसक्त हो कर जीवन व्यतीत कर देते हैं । प्राण को चांदी वर्षा समझो । कुछ प्राण में ही आसक्त हो जाते हैं । प्राणायाम इत्यादि के द्वारा कुछ ऋषियों ने भी प्राणों को वश में कर के ही अपने को धन्य मान लिया । कुछ आगे जाकर मन में फंस गये इसे स्वर्ण समझो । बस मन के पीछे ही चल कर सारा जीवन नष्ट कर देते हैं । चौथा कोश विज्ञानमय कोश है । यहाँ हीरे ज्वाहरात की वर्षा समझो । बुद्धि की चमक के सामने आगे कुछ दीखता ही नहीं । कुछ यही फंस कर रह जाते हैं । पांचवे कोश में तो कोई २ ही पहुंच पाता हैं । आनन्द मय कोश । एक तो सुषुप्ति का आनन्द हैं जहां सभी पहुंचते हैं पर अविद्या के घेरे में होने से कुछ समझ नहीं पाते । ब्रह्माकार वृत्ति में पहुंच कर जो आनन्द मय कोश में पहुंचेगा उसी की अविद्या निवृत्त होगी और परमानन्द की प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार मुमुक्षु धीरे २ इन कोशो का अतिक्रमण करे । मंत्र कहता है "प्राणः हि एतानि सर्वाणि भवति" वो चेतन सत् चित् आनन्द रूप से प्राण में प्रगट हो कर सब में व्याप्त रहा है । "एवं विजानन् अतिवादी भवति" इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जानने वाला अतिवादी हो जाएगा । जब तक हम शरीर इन्द्रियों में रहते हैं तब तक इन्हीं की प्रशंसा करते रहते हैं । इन्हीं को सुखरूप समझते हैं । क्यों कि इस से ऊपर भी कोई सुख है इस को वह समझते ही नहीं । पर जब यह जान जाता है कि सुखरूप तो चेतन आत्मा ही है जिस

की कृपा से यह शरीर इन्द्रियां भी सुखरूप प्रतीत हो रही हैं। तब शरीर इन्द्रियों का अतिक्रमण कर के इस आत्मा में प्रवेश करता है। इस शरीर के सब धन्धे करते हुए भी अपना मन आत्मा में ही रखता है क्यों कि उसने सत्य को पा लिया है। ऐसा मुमुक्षु मृत्यु के भय से पार हो जाता है। ऐसे ब्रह्म वेत्ता को यदि कोई अतिवादी भी कहे तो उसे स्वीकार कर के इसे छिपाना नहीं चाहिए। **"एषा ब्राह्मी स्थितिःपार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति, स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।"** कभी २ ऐसा भी होता है कि जीवन भर जप ध्यान भी करते हैं। सत्सङ्ग भी करते हैं पर बुद्धि में वह सत्य प्रगट नहीं होता। पर भगवान गीता में स्पष्ट कहते हैं कि यदि अन्त समय में भी यह सत्य प्रगट हो जाएगा तो निर्वाण अर्थात् विदेह कैवल्य हो जाएगा।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४६

४-६-८५

"ॐ अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषं दहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति ।।"

(छान्दो. ७।१५।३)

प्राण के बारे में विचार चल रहा है कि यह जो प्राण है यह महान् शक्ति शाली है। इस प्राण की रक्षा के लिए प्राणायाम का विधान है। इस लिए योग में प्राणायाम योग आया है। आज का बुद्धिमान नोटों की गड्डी में सें एक रूपये का नोट मन्दिर में चढाने के लिए निकालता है तो उस को घिस घिस कर देखता है कि कहीं एक की जगह दो न चले जाएं वह धन को कीमती मानता है। परन्तु इस प्राण के बारे में विल्कुल नहीं सोचता कि यह कितना कीमती है। सोचो तो यह प्राण यदि निकल गया और लौट कर नहीं आया तो क्या होगा ?

करोडपति भी होगा तो उस बंगले में अब उस का क्या है ? घर में उसी स्वरूप में रहने का अधिकार है जिस रूप में घर बनाया है। यदि यह स्वरूप दीखना बन्द हो जाए तो तुम किसी कोने में से आवाज भी लगाओ कि बेटा यह घर तो मैं ने बनवाया था। इसे छोडने की मेरी इच्छा नहीं है। तो बेटा क्या करेगा ? जानते हो ? भूत २ कर के चिल्लाएगा और बुलाएगा भूत झाडने वाले को। दे लाल मिर्ची का धुंआं।

इस प्रकार यह प्राण इस जीवन का बडा धन है। "प्राणो हि एतानि सर्वाणि भवति" यह प्राण ही सब कुछ है। प्रत्यक्ष जीवन यह प्राण ही है। प्रत्यक्ष जीवन वह जो यह शरीर इन्द्रियों के सम्बन्ध दीखने में आ रहे हैं। यह जीवन प्राण के अधीन है। जिस चेतनात्मा के आश्रय यह प्राण चल रहा है वो तुम्हारा असली स्वरूप है। यह रूप तो यहीं रह जाएगा। स्पष्ट है कि जैसा किसी लडकी को ड्रामा में लडका बना दिया तो वह लडके जैसा व्यवहार कब तक करेगा ? जब तक ड्रामा चलता रहेगा। इसी तरह यह तुम्हारा आकार प्रकार माया भगवती का ड्रामा चल रहा है। बुद्धिमान को सोचना पडेगा कि यह ड्रामा जिस के आधार पर चल रहा है वो कौन ? वो सत् चित् आनन्द स्वरूप तुम्हारी आत्मा है। वही असली जीवन है। **"स वा एष एवं पश्यन् एवंमन्वान् विजाना एवं अतिवादी भवति।"** ऐसा आत्मा को ही अपना असली स्वरूप जानने वाला अतिवादी कहलाता है। जो प्राण को ही जीवन समझता है पर इस प्राण का भी जो प्राणपति है उसे नहीं समझता वह भी अपने असली स्वरूप को नहीं जानता। हां इतना अवश्य है कि प्राण को ब्रह्म जानने वाला भी अतिवादी है। अतिवादी का अर्थ है "अतीत्य वदति स अतिवादी। जो इस शरीर से इन इन्द्रियों से ऊपर उठकर प्राण के महत्त्व को जान लेता है। जो प्राण को ब्रह्म मानता है उसे अतिवादी स्वीकार कर लेना चाहिए। पर इतनी बात अवश्य है कि केवल प्राण को ही यदि सत्य पकड कर बैठ जाएगा तो विकार मे ही रह जाएगा। **"अस्ति भगवः प्राणाद् भूयः।"** पर यहाँ पर पहुंच कर नारद चुप हो गया।' इस का तात्पर्य यह हुआ कि नारद ने प्राण को ही ब्रह्म समझ लिया पर ऋषि बडे कारूणिक होते हैं। उन्हों ने जान लिया कि नारद प्राण ब्रह्म में ही रह जाएगा। इसे परम सत्य का उपदेश देना

चाहिए। "वेदान्तार्थाभिज्ञेन परमकारुणिकेन" ऐसा बुद्धिमान करूणाशील होना चाहिए नहीं तो वह अहंकार मे आ जाएगा तो कठोर हो जाएगा। विद्या भी पात्र में जाकर फलती है नहीं तो विद्या भी व्यर्थ हो जाती है।

भगवान सनत्कुमार ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। नारद भी ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। महर्षि नारद को पुनः समझाने के लिए बोले कि हे नारद जो परम ब्रह्म को जान लेता है वह कृतार्थ हो जाता है। "कृता अर्था येन इति कृतार्था" जिस ने जीवन में जो करना था कर लिया। कुछ लोग तो केवल सांसारिक कर्तव्य कर के ही अपने को कृतार्थ मान लेते हैं। शरीर इन्द्रियों की भूख मिटाने में ही अपने को कृतार्थ समझते हैं। परन्तु वास्तव में कृतार्थ वह है जिस ने परम सत्य को पकड लिया है। 'अहं' 'अहं' तो करते हो पर यह अहं है कौन ? इस को समझोगे तो कृतार्थ होओगे। इस को जानने वाला तुम्हारे बिना कोई नहीं। यह कार्य तो तुम्हें स्वयं ही करना है। यही तुम्हारे जीवन का मुख्य कर्तव्य है। जीवन के बाकी के धन्धे तो तुम्हारे बिना भी हो सकते हैं। दूसरे भी तुम्हारे बाकी काम को पूरा कर देंगे। पर इस सत्य को तो तुम्हें ही जानना पडेगा।

भगवान सनत्कुमार कृपालु होकर स्वयं ही कहते हैं जो सत्य ब्रह्म को पकड लेगा वह अतिवादी होगा। "य सत्येनाऽतिवदति" जो इस सत्य को नहीं पकडेगा वह असत् में ही रह जाएगा। असत् जैसा ही हो जाएगा। इस असत् ब्रह्म को पकड कर तुम अतिवादी कैसे बन सकोगे। जब तक सत्य को पकडेगा नहीं असत् को पकडकर बैठ जाएगा और इस असत् से ऊपर जो सत् है वह उसे मानने के लिए भी तैयार नहीं होगा। क्यों कि उस की बुद्धि उच्छृखल हो जाती है। वह अपने से ऊपर किसी को मानने के लिए तैयार ही नहीं होता। तैत्तिरीय श्रुति कहती है। बडी सुन्दर श्रुति है "**असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेदचेत्।**" जो कहेगा कि ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म असत् है तो वह असत् ही हो जाएगा। जैसे लोक में ही देखो अपने से ऊपर किसी को धनी देख कर धनी होने का प्रयत्न करता है। विद्या में अपने से बडा किसी को देखता है तो विद्वान बनने का प्रयत्न करता है। जब तक अपने से बडे की ओर नहीं देखेगा तब तक

अपने अहंकार में ही फंसा रहेगा कि मैं ही सब से बडा हूं। अध्यात्म जीवन में तुम से बडा कौन ? कहोगे कि दीखता तो है नहीं। तो क्या जो दीखता नहीं वह है ही नहीं ? 'अहं' 'अहं' तो करते हो पर इस अहं को पहचानो। यह है कौन ? अपना क्या परिचय दोगे ? शरीर के स्वरूप से यदि अपना परिचय दोगे तो कौन से रूप को पकड कर परिचय दोगे ? बचपन का परिचय दोगे या कुमारावस्था का दोगे या युवावस्था का अथवा जो रूप इस समय है उस का पापड life का ? तुम्हारा कौन सा रूप पकड में आने वाला है ? इस लिए कहना पडेगा कि शरीर के आकार से तुम्हारा कोई आकार नहीं। यह तो अन्न पानी का विकार है। यदि अपने को शरीर से मानोगे तो जीव मानोगे।

स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी दयानन्द यह हिन्दू जाति के लिए देवदूत हुए हैं। इन्होंने हिन्दू जाति को जीवन दिया है। स्वामी रामतीर्थ एक बार इंगलैंड गये। वहाँ इन्होंने विज्ञापन दिया कि जो ईश्वर को देखना चाहते हैं आ जाएं। सत्य की भूख जल्दी मरती नहीं। एक बडा नास्तिक था। नास्तिकों का गुरु। उस के भी कई शिष्य थे। यह विज्ञापन पढ कर उस की इच्छा स्वामी जी से मिलने की हुई। उसने फोन किया कि मैं आप से मिलना चाहता हूं। पर जिस समय आप के पास कोई न हो ऐसा समय मुझे बतला दीजिए। मैं उस समय आप के पास आ जाऊंगा। जिस चाल से मनुष्य चलने लगता है उसी का टोला बन जाता है। एक व्यक्ति बडा दुष्ट था। उस की दुष्टता के कारण वहां के राजा ने उस की नाक कटवा दी। बस वह तो नाचने लगा कि मुझे भगवान के दर्शन हो रहे हैं। बस नाककटों का टोला बन गया। सब गाते बजाते घूमने लगे। राजा ने देखा तो सोचने लगा कि भाग्य से मनुष्य बना हूं। भाग्य से राजा भी बना हूं। अब भगवान के दर्शन भी करलूं। उसने नक्कटों के गुरु से कहा कि मुझे भी अपना चेला बना लो। वह बोला कि भगवान नाक की ओट में छिपा है। नाक कटा लो दर्शन कर लो। राजा तैयार हो गया परन्तु उस का मंत्री जरा बुद्धिमान था उस ने सोचा कि इतने दिन से राजा का नमक खाया है। कहीं राजा की नाक व्यर्थ में कट गई तो बडा दुख होगा। इस लिए पहले मैं अपनी नाक कटवा कर इस की परीक्षा कर लूं। ठीक समय पर मंत्री की नाट कट गई। नक्कटों के गुरु ने धीरे से उस के कान में जा

कर कहा कि देखो भगवान वगवान तो कुछ दीखते नहीं पर नाक तो कट ही गई है अब तुम भी हमारी तरह गाओ नाचो और कहो कि भगवान के दर्शन हो रहे हें । मंत्री ने राजा की नाक बचा ली । राजा ने सब की खूब पिटाई करवाई और सब को जेल में बन्द करवा दिया । **"गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः, पश्य लोकस्य मूर्खत्वं हृतं मे ताम्रभाजनम् ।।"** (पंचतन्त्र) एक अन्धे के पीछे सब अन्धे चलने लग जाएं तो कहां पहुंचेगे । गीता में कहा है **"मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यततिसिद्धये"** (गीताअ. ७।३)

अब यह नास्तिक स्वामी जी के पास पहुंचा और अपना परिचय दिया कि मैं वही व्यक्ति हूं जिस ने आप से मिलने का समय मांगा था । मैं भगवान से मिलना चाहता हूं पर भगवान के अस्तित्व को नहीं मानता । आप मुझे भगवान से मिला दीजिए । स्वामी जी बोले या तो अपना पता भगवान को दो या भगवान का Add ले लो और उन के पास जाने का समय और तिथि बता दो हम भगवान से पूछ कर आप को बता देगे । किसी से भी मिलने के यह दो ही रास्ते हैं या तुम उन के पास जाओ अथवा उन को अपना Add. बता दो ताकि वह तुम्हारे पास पहुंच सके । अब वह नास्तिक विचार करने लगा कि न जाने वहां जाने का रास्ता कैसा होगा ? मेरी गाडी वहां तक जा भी सकेगी या नहीं वहां ठहरने या खाने पीने क्या प्रबन्ध होगा ? यदि मैं भगवान से मिलने जाता हूं तो यह समस्याये हैं । नास्तिक का लक्षण है पहले अपने सुख अराम और पेट का ध्यान करता है। मेरी भाषा भी वहां कोई समझेगा कि नहीं । इस से अच्छा यही है कि अपना ही Add दे दिया जाए । ऐसा सोच कर उसने अपने घर का नम्बर गली का नम्बर आदि स्वामी जी को बता दिए अब स्वामी जी ने पूछा वहाँ कब से रहते हो और कब तक रहोगे ? यह तो निश्चित नहीं । यह तो तुम्हारे शरीर का पता है और इस शरीर का क्या ठीकानां कब तक रहेगा ! शरीर से अलग तुम्हारा पता क्या है ? नास्तिक सोच में पड़ गया । स्वामीजी बोले देखो हम कहते हैं यह मेरा हाथ है यह मेरा मेरा मुंह है । जैसे तुम्हारा घर है । तुम्हारी गाडी है । पर तुम घर या गाडी तो नहीं बन गये । ऐसे ही तुम्हारा हाथ तुम्हारा मुंह

तो यह तुम कैसे हो गये। तुम यह शरीर भी नहीं हो। यह तो तेरे शरीर का Add. है। तुम कहाँ रहते हो ? अपना असली पता बताओ।

इस प्रकार स्वामी रामतीर्थ ने उसे समझाया कि तू इस शरीर से न्यारा है। तू अलग है और शरीर अलग है। आत्मविज्ञान के द्वारा जब उस ने यह सुना कि मैं शरीर हूं मैं भोक्ता हूं मैं ज्ञाता हूं कैसे ? स्थूल शरीर के सम्बन्ध से मैं मनुष्य हूं। मन के सम्बन्ध से मैं भोक्ता हूं। बुद्धि के सम्बन्ध से मैं ज्ञाता हूं। और इन सब से मैं न्यारा हूं। अब धीरे २ उस की रूचि सुनने मे बढने लगी और वह नित्य प्रति सत्सङ्ग में आने लगा। उस के चेले परेशान होने लगे और कहने लगे कि भगवान यह आप क्या कर रहे हैं। आप तो रोज ईश्वर के अस्तित्व के बारे में सुनने लग गये। उस ने कहा ऊँट जब तक अपने से बड़े किसी को देखता नहीं तब तक सोचता है कि मैं ही सब से बड़ा हूं। पर जब एक दिन जब हिमालय के पास जा कर देखा तो उस का सारा अहंकार गल गया कि ओहो यह तो मुझ से बहुत बड़ा है। इसी प्रकार मनुष्य जब तक अपने से बड़े से नहीं मिलेगा तब कक उस का अंहकार नष्ट नहीं होगा। भर्तृहरि कहता है

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम् तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यमवदवलिऽप्तं मम मनः। यदा किञ्चित्किञ्चिद् धजधनसकाशादवगतम् तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।

(नीतिशतक / ७)

मैं अहंकार मे अंधा हो गया था। जैसे ही मैंने बुद्धिमान गुरू से अहंकार रुपी बुखार उतारने की गोली खाई कि अहं गल गया। एक साधु था उस ने अपने तांबे के वर्तन मिट्टी में गाड़ दिए और उस पर एक ढेर बना दिया। लोगों ने समझा कि ऐसा ढो लगाना आवश्यक होगा। यह जीव जब तक सत्य के पास पहुंचेगा नही तब तक अहंकार मे रहे गा। ऊर्ध्व गति होगी नहीं और जीव नीचे ही नीचे गिरता जाएगा। इतना नीचे गिर जाएगा जहां इस की कोई प्रतिष्ठा नहीं होगी। "असत् समः सम्पद्यते" असत् जैसा हो जाएगा। तात्पर्य यह है कि ऐसे लोक में पहुंच जाएगा जहाँ इस का

कोई महत्त्व नहीं होगा। जैसे राष्ट्र में सब से पहले मनुष्यों की गिनती होती है। जन गणना होती है। उस के वाद उन पशुओं की गिनती है जो मनुष्य के लिए उपयोगी है। पर कौवे और गिद्ध की गिनती कहाँ होती है जो ब्रह्म को असत् मानेगा वह असत् ही हो जाएगा। **अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेन ततो विदुरिति।।"** सन्त का मतलब केवल लाल कपड़े से नहीं। व्यापक सद् बुद्धि को देने वाला ही संत है। जो परम सत्य की खोज नहीं करेगा वह शोक मोह में ही रह जाएगा इस लिए भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते हैं कि यदि केवल प्राण को ही पकड़ कर बैठ जाएगा तो अतिवादी नहीं कहलाएगा। अतिवादी तो तभी कहलाएगा जब इस परम सत्य ब्रह्म को जाने गा "सत्यं तु एवं विजिज्ञासितव्यम्" उस सत्य को जानने की जिज्ञासा करो। नारद ने कहा भगवान मैं उस परम सत्य को जानने की इच्छा करता हूं। आप कृपा कर के मुझे उस का उपदेश कीजिए। सनत्कुमार बोले अच्छा आज तो ध्यान करो कल हम तुम्हें उस सत्य का उपदेश करेंगे

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ४३

५।६।८५

"प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसी त्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत।। एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यंत्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।।"

(छान्दो० ७।१५।३-७।१६।१)

भगवान सनत्कुमार नारद ऋषि को इस बात को समझाते हैं कि अतिवादी कौन होगा? जो इस परामार्थ तत्त्व को, आत्मतत्त्व को जानेगा। वाद तो

वहां तक होता है जहाँ तक इन्द्रियों का विषय है। जहां इन्द्रियों का विषय कहां है वहाँ अतिवाद है। भूत भौतिक जो जगत है इस से मन को उठाकर के, पंचभूतो का अतिक्रमण करके सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा में मन को लगावे। यह आत्मा ही जीवन का सार है। यह संसार के सारे सम्बन्ध माता पिता भाई बहिन पति पत्नी सब आत्मा से ही हैं। यह आत्मा जिस दिन शरीर को छोड़ देगा सब विरक्त हो जाएंगे। रोयेंगे भी तो मुंह फेर कर और कहेंगे कि जल्दी निकालो ! तो सोच लो कि इस जगत में प्यारा कौन और सत्य कौन ?इस आत्मा की छाया में यह शरीर सौ वर्ष तक भी रहे तो कुछ नहीं होगा। कोई कुछ नहीं बोलेगा। पर यदि इस चेतन के करंट से बाहर हो जाएगा तो एक दिन भी उस को रख नहीं सकते। सड जाएगा। अतिवादी का अर्थ यह हुवा कि वह कब शरीर इन्द्रियों को सत्य नहीं मानेगा। यह सब दीखने वाला प्रपञ्च मिथ्या है। मिथ्या मानो जो जैसा दीखे वैसा हो नहीं। अतिवादी का मन शरीर इन्द्रियों से ऊपर उठ जाता है।

महर्षि उद्दालक अपने प्रिय पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं हे सोम्य "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" यह जगत पहले सद्रुपी ही था मान लो कोई महान वृक्ष है। वह जन्म से पहले क्या था नाम रूप उत्पत्ति से पहले कारण रुप ही था। बम्बई में टापुस नाम का एक आम होता है। सरकार उस को बाहर भी भेजती है क्यों कि डालर चाहिए। इसी हापुस को ही लो। इस का बीज यदि भूमि में लगा दो तो पहले अंकुर निकालेगा फिर धीरे २ लम्बा चोडा वृक्ष वन जाएगा। बीज की सकल में यह लम्बा चौड़ा जो वृक्ष है उत्पत्ति से पहले वह बीज में है कि नहीं ! तो कहना पडेगा कि बीज के रूप में वृक्ष का यह आकार प्रकार पहले से ही है। यदि बीज मे यह आकार नहीं था तो आया कहां से। बीच में वह निराकार रूप में है। उस का कोई आकार नहीं कोई गुण नहीं। परन्तु मिट्टी रूपी उपाधि को पकड कर, धरणी सलिल के योग से इस आकार में आया। आकार आया तो उस का गुण भी आया। क्रिया भी आई ! एक बीज से हजारों हापुस तैयार हो गये। इन सब फलों जो रंग रूप रस है वह सब चीज में पहले से ही विद्यमान है। जो एक में था वही सब में है। विलक्षण विशाल वृक्ष और हजारों हापुस सब बीज में ही थे। चने के वृक्ष

से बट नहीं उत्पन्न हो क्यों कि उस में वह है नहीं । महर्षि कहते हैं इसी तरह यह जगत जो दीख रहा है वह पहले परमात्म रूप ही था । आदि अन्त मध्य जो कुछ भी वही एक सत् है सत् से बाहर कुछ नहीं । 'एकमेवाद्वितीयं' यह एक है अद्वितीयम् का अर्थ इस में भेद नहीं है । भेद तीन प्रकार का होता है। सजातीय भेद, विजातीय भेद और स्वगत भेद । त्रिविध भेद रहित होने से " ब्रह्म सत्यं" ब्रह्म सत्य है । हाथ हमारा है हम हाथ नहीं अपने शरीर में हाथ पांव मुंह आदि का भेद स्वगत भेद' एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से भेद सजातीय भेद और एक व्यक्ति का पशु आदि से भेद विजातीय भेद । जहां तीन प्रकार के भेद होंगे वह वस्तु भिन्न होगी । जैसे हमारे शरीर भिन्न २ हैं इन में भेद है। पर इन सब शरीरों मे रहने वाला आत्मा एक है। इस में न सजातीय भेद है न विजातीय भेद है न स्वगत भेद है । इस लिए इसे "एकमेवा द्वितीयम्" कहा है । भेद भिन्न मे होगा । वह मिथ्या होगा । ब्रह्माण्ड मिथ्या होने से स्वयं मे कोई तत्त्व नहीं इस लिए इस का भेद भी कुछ नहीं । वह भी मिथ्या है । जैसे एक व्यक्ति का विवाह हुआ । दो चार वर्ष तक कोई बेटा बेटी नहीं हुआ । मां को चिन्ता होने लगी । बेटे को भी सुन २ कर वही बुखार चढ गया । एक दिन स्वप्न मे देखा कि बेटा हो गया । तो बताओ प्रसन्न होगा की नहीं होगा । बडी खुसी से उस स्वप्न के बेटे को गोदी मे लेकर प्रसन्न होता है । पर जैसे ही एक झटका लगा नींद खुल गई । वह स्वप्न का का पुत्र कहाँ गया? परन्तु वह व्यक्ति स्वयं तो वैसे का वैसे ही है । जैसे यह स्वप्न का पुत्र और उस से होने वाला सुख दुख मिथ्या है । उस का पितृत्व भाव जो स्वप्न मे था वह मिथ्या था । वह उस स्वप्न दृष्टि से अरोपित था ऐसे ही यह जगत ब्रह्म में आरोपित है। जगत के सुख दुख सब प्रतीति मात्र है । मिथ्या हैं जिससे वर्तमान काल मे जीव क्षुब्ध है ।

बुद्धिमान मुमुक्षु अपना लोक क्या है यह समझे । यह आत्मा ही अपना लोक है । इस में जाएगा तो लौटना नहीं पडेगा । पर यदि इस में नहीं जाएगा तो लौटना ही पडेगा । इस अपने शरीर को ही देखो । हम लोग लौट रहे हैं कि नहीं । जब यह शरीर भी अपना नहीं तो इस संसार में अपना क्या है ? यह

सत् चित् आनन्द स्वरूप जो चेतन आत्मा है वहीं अपना असली स्वरूप है। अब एक विचार आता है बहुत लोग कहते है कि यह निर्गुण निराकार साकार कैसे होगा। यह राम कृष्ण का अवतार भी गप्प गोला ही है। "मुण्डे मुण्डे मति-भिन्ना" जैसे संसार में लोग भिन्न २ बुद्धि के होते हैं ऐसे ही अध्यात्म जगत में भी है। भेद विचारकों में भी है। जैसे यह जगत मायिक है ऐसे ही उस का अवतार भी मायिक ही होगा। श्री मद्भागवत में कृष्ण जन्म की कथा आती है कि अवतार से पहले वसुदेव और देवकी को चतुर्भुज रूप का दर्शन दिया। जब वसुदेव देवकी ने प्रार्थना की तो साधारण बालक बन कर सामान्य बच्चों की तरह लीला की। इस को किसी मां के गर्भ में नौ दस महीने रहने की आवश्यकता नहीं। निर्गुण निराकार ब्रह्म उपाधि बलात् अथवा अपनी योगमाया से प्रगट हो जाता है। माता पिता को चतुर्भुज दर्शन दिया और स्वाभाविक बालक के रूप में आ गये। इस का मतलब यह है कि उसे जहां जिस प्रकार की आवश्यकता होती है वहाँ उसी प्रकार से प्रगट हो जाता है। वैवस्वत मनुका प्रसंग है कि यह महान ऋषि कृतमाला नदी के किनारे बैठ कर संध्या कर रहे थे। संध्या के पश्चात् जब अंजुली देने के लिए अंजुली में जल लिया तो उस में एक छोटी सी मछली आ गई। जब वह उस मछली को पानी में छोडने लगे तो उस ने मनुष्य की वाणी में कहा। भगवान मुझ पर दया करो इस नदी की विशाल मछलियां मुझे खा जाएंगी। मनु महाराज ने दया वश उसे अपने कमण्ड्लु में डाल लिया। पर थोडी ही देर में वह मछली बोली कि, मनु इस कमण्डुल में तो थोडी जगह है। इस में मेरा निर्वाह नहीं होगा मुझे किसी बडे बर्तन मे रखो। मनु ने उसे घर आकर बडे से मटके में रख दिया। प्रतिः काल देखा तो वह मटके में फंस गई है और फिर कहा कि मुझे बडी जगह रखो। तब उसे तालाब में रखवा दिया। थोडी ही देर में देखा तो उस का आकार तालाब जितना बढ गया है और वह फिर और बडे स्थान में रखने के लिए प्रार्थना कर रही है। तब मनु महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि भगवन यह कैसा दर्शन दे रहे हो। उस मत्स्य को लाकर एक बडे तालाब में रख दिया फिर देखा कि वह मत्स्य तालाब के आकार का हो गया है। आकाश वाणी हुई कि यह तालाब भी मेरे रहने के लिए कम पड रहा है। मुझे कहीं बडे स्थान में

रखो। मनु महाराज समझ गये कि यह साधारण मछली नहीं है भगवान ही मेरे ऊपर कृपा कर रहे हैं। यह मत्स्यावतार धारण कर के मुझे दर्शन दे रहे हैं। अवश्य ही इस का कोई विशेष प्रयोजन होगा। तभी आकाश वाणी हुई कि मनु मुझे समुद्र में डाल दो। आज से सातवें दिन यह पृथ्वी जलमग्न हो जाएगी। एक सुन्दर नौका आएगी। तुम और वडे २ ऋषि उस नाव में बैठ जाना मैं विशाल मत्स्य बन कर तुम्हारी रक्षा करूंगा। करूणावरूणालय भगवान हैं कि नहीं ? वैवस्वत मनु भगवान का वडा भक्त था। उस का और बडे २ ऋषियों का मरना भगवान को स्वीकार नहीं था। इस लिए उन्होंने यह मत्स्य अवतार धारण कर के उन की रक्षा की। सगुण साकार को निर्गुण निराकार और निर्गुण निराकार को सगुण साकार बनने में देर नहीं लगती। वह सब जानता है कि जिस स्थान से, जिस केन्द्र से, जिस रूप से जीवों का भला करना होगा। उसी रूप में अवतार ले कर आ जाएगा। और अपने भक्तों की रक्षा कर के धर्म की स्थापना करेगा। मत्स्यावतार वराहावतार सब यह सूचना देते हैं कि उसे सगुण साकार बनने में क्या कठिनाई है ? तुम स्वप्न मे रोज अवतार लेते हो। पर जाग्रत में तुम तुम ही हो जाते हो। इसी लिए श्रुति कहती है **"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णं स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरूषं महान्तम् ॥"** (श्वेताश्वतरोपनिषद् अ. ३।१९) मंत्र भगवान के निर्गुण निराकार स्वरूस को सगुण साकार में वर्णन कर के बता रहा है। मंत्र कहता है हे भगवव तुम तो निर्गुण निराकार होते हुए भी सगुण साकार हो रहे हो। तुम्हारे पांव नहीं पर तुम चल रहे हो। हाथ नहीं पर सब कुछ पकड रहे हो। तुम्हारी आंख नहीं पर सब देख रहे हो तुम्हारी पकड से बाहर कुछ भी नहीं कोई भी नहीं। अपने शरीर में ही देखो वह देखेगा तो आंख देखेगी वह बोलेगा तो वाणी बोलेगी। वह सुनेगा तो कान सुनेगा। उस की सत्ता के विना देखना सुनना बोलना कुछ भी नहीं होगा। वह आत्मा हाथ के आकार में आया तो पकडने लगा। पांव के आकार में आया तो चलने लगा। कर्ण के आकार में आया तो सुनने लगा। इस लिए अपनी उस सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा की ओर ध्यान दो। केवल पोलो में घुडदौड की तरह ही नहीं लगे रहो। अपने चित्त को इस अन्तरात्मा में लगाओ। विचार करो

"कोऽहमस्मि ?" "Who am I ?" "मैं कौन हूं ?"

मुमुक्षु इस का विचार करता है तब उस की बुद्धि में संस्कार दीखने लगतें हैं। एक सेठ बडा धर्मात्मा था। कभी २ T. V. में कुछ न होते हुए भी कुछ दिखाई देने लग जाता है। यह बुद्धिमान सेठ धर्ममार्ग पर चलते हुए अपना जीवन व्यतीत करता था। एक दिन विचार करने लगा कि मेरा आने वाला जन्म कैसा होगा। यह बुद्धि भगवान का दिया हुआ T. V. है। इस में जन्म जन्मान्तर के दृश्य दिखाई दे जाते हैं। सेठ को आने वाला जन्म सूअर की योनि दिखाई दी। वह तो चिन्ता में डूब गया कि यह क्या! पितृभक्त पुत्र अपने पिता का चेहरा देखता है तो जान जाता है कि पिता किसी चिन्ता में हैं। पिता से चिन्ता का कारण पूछता है। पिता ने कहा बेटा अगर तुम चाहो तो मुझे इस चिन्ता से छुडा सकते हो। पुत्र ने कहा पिता जी मैं आप के लिए सब कुछ करने को तैयार हूं आप आज्ञा कीजिए। पिता बोला देखो कुछ समय बाद मेरी मृत्यु होगी और मेरा अगला जन्म सूअर योनि में होने वाला है। बस तुम मुझे जन्मते ही मार डालना इस प्रकार मैं शीघ्र ही सूअर योनि से छूट जाऊंगा। बेटा बोला पिता जी मैं यह कर तो दूगा लेकिन मैं यह जानूंगा कैसे कि आप का जन्म कहा हुआ है। पिता ने बताया देखो यह पास में ही जो भंगियों की बस्ती है इसी में मेरा जन्म होने वाला है। सूअरी जब बच्चे देगी तो तुम देख लेगा मेरे माथे पर सफेद गोला बना हुआ होगा। यह जो मैं चन्दन का टीका लगाता हूं इसी का निशान बना होगा। बस तुम देखते ही मुझे मार डालना। बेटा बोला ठीक है।

समय बीतता गया। सेठ की मृत्यु हो गई। बेटा उस बात को भूल गया। एक दिन वह घूमते हुए उधर भंगियों के मुहल्लो से निकाला। देखा की एक सूअरी चली आ रही है। पीछे २ आठ दश बच्चे हैं। एक के माथे पर सफेद गोलाकार दाग देखते ही उसे पिता की बात याद आ गई। उस ने झट अपनी तलवार निकाल ली और उसे मारने लगा। तब वह सूअर का बच्चा मनुष्य की वाणी मे बोला बेटा बस रहने दो। अब मत मारो। अब तो मुझे इसी योनि में जीवन का आनन्द आ रहा है। जीव का स्वभाव है कि वह जिस योनि में जाता है वहीं आनन्द ढूंढ लेता है। क्यों कि आनन्द उसका स्वरूप है।

स्वभाव है। आनन्द स्वरूप आत्मा जहाँ भी होगा वहीं आनन्द उत्पन्न कर लेगा बुद्धिमान मुमुक्षू को सदा यह सोचना चाहिए कि अपनी आत्मा के बारे में कभी भूल नहीं करे। दूसरे की गल्ती होगी तो छोटी होगी। क्षम्य होगी। पर अपनी गल्ती होगी तो हिमालय जैसी बडी होगी। उसे कब सुधारोगे यही मनुष्य जीवन उस का भूल को सुधारने के लिए। इस लिए सावधानी से चलो। इसी जन्म में तत्त्व की खोज करो। छोटा बच्चा यदि जन्मते ही मर जाए तो माता पिता को अधिक शोक नहीं होता। जितने दिन अधिक जीव तुम्हारे पास रहेगा उतना ही मोह इस मे बढ जाता है। इसी लिए जीव जितने दिन अधिक इस शरीर मे रहता है उस को इस शरीर से भी मोह हो जाता है अध्यास अधिक देर रहने से मोह अधिक हो जाता है। इसी लिए बूढ़ा जवान की अपेक्षा मरने से अधिक घबराता है। कहीं झगड़ा हो रहा होगा तो लडका झट लट्ठ लेकर नीचे पहुंच जाएगा पर बुढ्ढा झट ऊपर भाग जाएगा। ऊपर से भले ही वह बेटे को बुलाएगा पर स्वयं लट्ठ खाने नीचे नहीं जाएगा। इस शरीर को धर्मशाला समझो। इस में जितना अधिक रहोगे उतना ही इस को छोड़ने का दुख होगा।

एक बात याद रखो जो तत्त्व विचारशील होगा वह अधिक चिन्ता नहीं करेगा। वह सोचता है कि कर्म का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। यह मत समझो कि हम को ही रस गुले खाने में आनन्द आता है। हम को जितना आनन्द बढिया भोजन में मिलता है उतना ही आनन्द गधे को हरी २ घास खाने में मिलता है। क्यों कि आनन्द तो उस आनन्द स्वरूप चेतन का है। वह चेतन सत्ता रूप मे सब जगह व्याप्त है। सब के अन्तर विराजमान है "अजायमानो वहुधा विजायते अजन्मा होते हुए भी जन्म लेता हुआ सा प्रतीत होता है। अपने शरीर को ही देखो। पहले तुम थे या तुम्हारे विना ही इस शरीर का जन्म हुआ! यह शरीर तो पंचभूतो का विकार है। जन्म तो हुआ पडोसी का और मान लिया अपना। पंचभूतों का विकार शरीर पंचभूतो का ही है। उस में अध्यास कर के जीव इसे अपना मान रहा है। इसीका फल है बार २ जन्मो और मरो जिस समय जन्म हुआ तो वजन कितना था! चार छः पौंड का जो भी वजन था वह तुम्हारा है क्या ? वह मां के भोजन का वजन है।

बाहर आकर जो भी खाया पिया इस शरीर पर लेप पर लेप चढता गया और तुम इसे अपना ही वजन मानते गये। माल तो सब पडोसी का और मानने लगे अपना। यह शरीर पंचभूतों का है। अच्छा यह बताओ इस लोक में जो दूसरे के भला को अपना कहे उस को हम कितना इमानदार कहते हैं। दूसरे के भला को अपना कहने वाला ही मार खाता है। यह बार २ जन्म और मृत्यु की मार है। दूसरे की वस्तु को अपना मान रहे हो यही अपराध है। इसी की सजा यह जन्म मृत्यु है। अपने को इस शरीर से भिन्न समझो तभी इस से छुट्टी पा सकोगे। इस प्रकार तत्त्व को जानने वाला ही अतिवादी होता है। ऐसा ही अतिवादी शरीर इन्द्रियों को मिथ्या जान इन के मोह से अहंकार से परे हो जाता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ४८

६-६-८५

"ॐ यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति। यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति॥"

(छान्दो ७।१७।१– ७।१८।१)

भगवान सनत्कुमार महर्षि को समझाते हुए कहते है कि यह बुद्धिमान मनुष्य जब ठीक से समझता है तो सत्य बोलता है। ठीक समझने से मतलब कि मनुष्य अपना हित अहित समझ जाता है। किन्तु साथ में यह भी समझ लो कि हितं कल्याणं एक तो हित यह है कि इस लोक में आराम

से रोटी मिले, आराम से रहने की जगह मिले। आराम से जीने में ही वह कल्याण समझते हैं। उन को इस से आगे की चिन्ता नहीं। किन्तु आराम की रोटी तो चोर भी चोरी कर के खा सकता है। एक चोर है और एक व्यापारी। रोटी का प्रबन्ध तो दोनों कर रहे हैं। परन्तु चोर न अपना भला कर रहा है न दूसरे का। इस लिए चोरी पाप कर्म है। व्यापारी अपनी जेब से पैसा निकाल कर बाजार में लगाता है उस के द्वारा जो धन उसे मिलता है उसे अपने लिए लेता है। इस से वह अपना भी हित करता है परिवार का भी, समाज का भी हित करता है, यह राष्ट्र का भी, उस का सत्कर्म हो जाता है। यही धर्म है केवल अपना हित तो पशु भी करता है। जो कर्म तुम्हे पतन की ओर ले जाए वह पाप है और जो कर्म तुम्हे उपर उठावे वही अच्छा कर्म है।

ऐसा नहीं कि जहां तक हमारी पहूंच है वहीं तक अच्छा है इस से आगे कुछ नहीं। बहुत से तुम अच्छे हो। सब से अच्छा तुम्हारा आत्मा ही है जिस के रहने से ही यह सब जगत प्रिय लगता है। सोचो क्या यह शरीर स्वभाव से प्यारा है? यह इन्द्रियां स्वभाव से प्यारी है? या किसी और की कृपा से स्वभाब से यह शरीर यह इन्द्रियां प्रिय नहीं। इन का कोई महत्त्व नहीं यह तो आत्मा के होने से प्रिय हैं। यह सब प्यारे तभी तक है जब उस चेतन की सत्ता में हैं। चेतन की सत्ता से दूर होते ही क्या अच्छा है? यह कारखाना अच्छा और इस के सारे नौकर भी अच्छे। यह शरीर तुम्हारा कारखाना है और यह इन्द्रियां तुम्हारी नौकर। समझ लो कि इस जीवन में यदि सब इन्द्रियां ठीक से काम कर रही हैं तो तुम्हारा पूर्व जन्म का पुण्य महान है पर यह अच्छा पुण्य तभी अच्छा होगा जब इस जन्म में भी उस सब से अच्छे की ओर मन दोगे। तत्त्व का विचार करोगे तो आगे गति बढेगी नहीं तो जीवन व्यर्थ ही चला जाएगा कोल्हू के बैल की तरह। कोल्हू के बैल की आंखो पर पट्टी बांध देते हैं वह दिन भर चलता है और सोचता है कि बहुत दूर आ गये। पर शाम को जब पट्टी खुलती है तो देखता है कि वहीं का वहीं खड़ा है। अगर आंख पर पट्टी न बंधी होती तो वहीं

चक्कर खाकर गिर पड़ता यही दशा इस जीव की भी है।

इस माया भगवती ने इस जीव को कोल्हू का बैल वना रखा है। इस की आंखो पर अज्ञान की पट्टी वांध कर रखा है और इस जीव को कुछ समझने ही नहीं देतो। **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।** (मुण्डकोपनिषद् ३।१।५) उस परम सत्य को पाने के लिए तुम लोक सिद्ध सत्य को पकड़ो। लोक में जिस सत्य की प्रतिष्ठा है उसे पकड़कर ही तुम आगे वढ़ सकते हों उस परम सत्य की ओर। परम सत्य वह जिस के बिना कौन तुम्हरा भाई कौन तुम्हारा पिता! यह जगत के सभी सम्बन्ध उस परम सत्य से ही है। उस परम सत्य की ओर अपने मन को दौडाओ "यथा पश्यति यथा श्रृणोति तथा वदति तथा करोति" इन्द्रियां सिद्ध सत्य यह है। यह सापेक्ष सत्य है जो देखते हो जैसे सुनते हो वैसा ही वोलो। नमक मिर्ची लगा कर बोलना ही पाप है। किसी को खुश करने के लिए अपना सत्य मत छोड़ो "**सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।** (तैत्तिरीयोपनिषद् १।११।१) सोचो झुठ से इस जग में किस का भला हुआ है और सत्य वोल कर किस का बुरा हुआ है। पूरे विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है। हां सत्य के लिए तप तो करना पड़ेगा। त्याग करना पड़ेगा। सहन करना पड़ेगा। झूठ वोलने वाले को तप त्याग सहन कुछ नहीं करना पडता इसी लिए श्रुति कहती है सत्य में प्रमाद मत करो। धर्म में प्रमाद मत करो कुशल होने से भी प्रमाद मत करो। बुद्धू वन कर जीने से क्या होगा ! जैसे सुनते हो कि बिल्ली के आने पर कबूतर अपनी आंखे वन्द कर लेता है। और सोचता है कि बिल्ली है ही नही यह जीवन कबूतर और मृत्यु देवता विल्ली की तरह है। यदि कबूतर आंख खोल कर देखता और बचने का उपाय करता तो मृत्यु के मुंह से बच जाता। इसी प्रकार यह जीव भी देख रहा है कि पाप करने से यह नष्ट होगा। पाप इस को मारेगा। पाप कर्म मारने वाला है पर यह जीव देख कर भी बचने का प्रयत्न नहीं करता और कर्म उसे ऐसे ही पकड़ लेता है जैसे बिल्ली कबूतर को पकड़ लेती है। यदि यह जीव विवेक करता और पाप कर्म से वचने का उपाय

करता तो नष्ट होने से बच सकता था। "धर्मेण हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" जो धर्म की रक्षा करता है वही धर्म से रक्षित होता है। धर्म सत्य है। वाणी से ठीक बोलो, हाथ से ठीक कर्म करो। कान से ठीक सुनो यही धर्म है। इस से यह जीव इस बिल्ली रूपी काल के भय से बच सकता है इस से बचने के लिए धर्मानुष्ठान है। इस के लिए ध्यान है। जप है। थोड़ा जप ध्यान करो। मन को सुन्दर बनाओ और उसे अपनी आत्मा की ओर लगाओ।

एक माली बगीचे में जड़ पौधों को जब इतना सुन्दर बना सकता है तो तुम क्या उस माली से भी गये बीते हो। जो अपने मन को ठीक नहीं कर सकते। मन की काट छांट करते रहो। इस में काम क्रोध लोभ मोह को बढ़ने मत दो यही इस को सुन्दर बनाने के साधन हैं। विरोचन और सुधन्वा की कथा आती है। विरोचन प्रह्लाद का पुत्र था और सुधन्वा एक ऋषि पुत्र था। दोनों बड़े मित्र थे। पर याद रखो भोग के समय मित्र एक नहीं रह सकते। भोग में तो भाई २ का दुश्मन हो जाता है। यह दोनों मित्र कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक सुन्दरी रूपवती कन्या इन्हें मिली। दोनों की इच्छा इस से विवाह करने को हुई विरोचन ने कहा मैं राज पुत्र हूं मैं इस से विवाह करूंगा। सुधन्वा ने कहा मैं तुम्हारे पिता के भी गुरु का पुत्र हूं इस लिए इस से विवाह मैं करूंगा। निश्चय किया कि चलो कन्या से ही पूछते हैं कि वह किस से विवाह करना चाहती है। कन्या के पास जा कर पूछा तो उस ने कहा तुम दोनों में से जो श्रेष्ठ होगा मैं उस से विवाह करुंगी। पहले तुम अपनी २ श्रेष्ठता सिद्ध करो। दोनों विचार करने लगे कि क्या किया जाय। सुधन्वा ऋषि पुत्र है इस लिए अच्छी बुद्धि वाला है। वह कहता है कि चलो तुम्हारे पिता प्रह्लाद से ही निर्णय करवाते हैं। तुम्हारा पिता धर्मनिष्ठ है वह सही निर्णय करेगा। विरोचन प्रसन्न हो कर बोला ठीक है। शर्त रखी गई कि जो अपकृष्ट बोला जाएगा उस का गला काट लिया जायगा। दोनों प्रह्लाद के पास पंहुचे और अपनी २ बात बताई। विरोचन ने कहा पिता जी एक कन्या को हम दोनों वरण करना चाहते हैं। पर वह कन्या कहती है कि जो श्रेष्ठ होगा उस से ही

वह विवाह करेगी। आप निर्णय कीजिए कि हम दोनों मे से श्रेष्ठ कौन है। प्रह्लाद विचार में पड़ गया। धर्मात्मा धर्म को नहीं छोड़ सकता। वह सोचता है कि इस लोक में जो अधर्म को पकड़ता है वह अधर्म ही उसे नीचे गिराता है। इस संसार से क्या साथ जाने वाला है। धर्म ही इस जीव का लोक लोकान्तर का बन्धु है। धनानि भूमौ पशुश्च नारी गृहद्वारे जनः श्मशाने देहश्चितायां परलोकमार्गोधर्मानुगो गच्छति जीवलोक: " धन सम्पत्ति सब भूमि पर यहीं रह जाते हैं। भगवती जो सब से प्यारी है वह घर के दरवाजे तक जाती है। परिवार के लोग श्मशान तक साथ जाते हैं यह शरीर भी चिता तक ही साथ है इस से आगे जीव अकेला ही जाता है। उस के धर्म अधर्म उस के साथ होते हैं। "धर्मं न जैह्यात् जीवितस्यापिहेतु" पाप कर्म करने वाला सदा अधोगति में जाता है। पुण्य कर्म ही तुम्हे सद्गति में लेजाएगा। इस लिए बुद्धिमान कर्म में सावधान रहे। हमेशा ऐसे कर्म को पकड़ो जो तुम्हें उत्तम गति में ले जाए। अज्ञान की रक्षा मत करो। यह अज्ञान तुम्हें छोड़ेगा नहीं। जैसे ज्ञान तुम्हारी रक्षा करता है ऐसे अज्ञान तुम्हें अन्धकार की ओर ले जाएगा। प्रह्लाद ने कहा देखो विरोचन सुधन्वा ऋषि पुत्र है। स्वभाव से तपस्वी है' धर्म निष्ठ है। गुणों से वह देव गुणों वाला है शान्ति दान्ति तितिक्षा आदि सब गुणों उस में हैं प्रतिकूल को अपने जीवन में सहन करो। अनुकूल में तो गधा भी प्रसन्न रहता है। फिर यदि मनुष्य भी इतने तक ही रहा तो क्या लाभ ? यह देव गुणों वाला होने से तुम से सब प्रकार से श्रेष्ठ है। तुम्हारा जन्म असुर कुल में हुआ है। तुम आसुरी सम्पन्नि वाले हो। " दम्भो दर्पोभिमानश्च (गीता अ० २६। ४। दम्भ दर्प क्रोध सब आसुरी वृत्तियां हैं। इस लिए तुम किसी भी प्रकार इस से श्रेष्ठ नहीं हो सकते। इस लिए विवाह का अधिकारी सुधन्वा ही है। बड़े२ ऋषि इन न्याय को सुनने के लिए आए थे। सब प्रसन्न हुए। सुधन्वा भी प्रसन्न होकर बोला प्रह्लाद मैं तुम्हारे सत्य से बहुत प्रसन्न हूं मैं तेरे पुत्र को नहीं मारूंगा और उस कन्या से विवाह भी नहीं करूंगा। तुमने धर्म की रक्षा की है धर्म तेरी रक्षा करेगा।

तुम में भी ऐसे गुण होना चाहिए। प्रह्लाद विरोधी का भी पक्ष करता है अपने २ में तो मां एक चोर बेटे का भी पक्ष करती है परन्तु सत्यनिष्ठ गुणी का ही पक्ष लेता है। तात्पर्य यह है कि यह दृष्टान्त जीवन निर्माण के लिए सुत्र है। हम से बड़ा कौन है ऐसे दृष्टान्त भी आवश्यक हैं। यदि कोई ऐसा दृष्टान्त ही नहीं होगा तो हम किस को देख कर ऊँचा उठने का प्रयत्न करेंगे। हमारा इतिहास ऐसे उत्कृष्ट दृष्टान्तो से भरा पड़ा है। मंत्र कहता कि बेटा तुम सत्य को पकड़े रहो। जो सत्य को पकड कर चलता है भगवान भी उस की रक्षा करता है। अच्छा बेटा कौन ? जो अपने माता पिता की बात सुनेगा उस में स्वभाव से माता पिता के गुण आएंगे। जो चेला गुरु की बात ही नहीं सुनेगा उस में गुरु के गुण और ज्ञान कैसे आ सकता है। चेला भी वही अच्छा जोअपने गुरु का ध्यान से सुने। यच्छेद् वाङ्मनसि प्राज्ञः शान्त, आत्मनि" इन इन्द्रियों का मुह मन की ओर करो और मन को आत्मा की ओर मोड़ो यह महान तप है। वाङ्मनसि " मंत्र कहता है वाणी को मन की ओर मोड़ो। वाणी से तात्पर्य सभी इन्द्रियों से है। यह वाणी सभी इन्द्रयों की नेत्री है। जब जब उपद्रव होता है तो गवर्नमैंट लीडर को ही पकडती है। इस लिए यहां मंत्र वाणी को पकड़कर इन्द्रियों का निर्देश कर रहा है। सारा विश्व वाणी के नीचे चल रहा है। बड़े २ नेता रीगन आदि जरा सा भी इधर उधर बोले तो देखो फिर क्या होता है। इस लिए बुद्धिमान इस वाणी का सुन्दर उपयोग करता है। वाणी को जितना सम्भाल कर बोलोगे उतना ही तुम्हारी बात को बेटे सुनें। पिता भी वही अच्छा जो वाणी से कम बोले। उस की बात सब ध्यान से सुनते है। वाणी कम बोले हाथ से काम अधिक करे तो सासु भी बहू को अच्छी लगेगी काम नहीं करोगे तो चक्का जाम हो जाएगा। शरीर का हिलना डुलना बहुत जरूरी होता है इस से शरीर की शक्ति ठीक २ बनी रहती है। मुमुक्षु इन्द्रियों को मन में मन को बुद्धि में बुद्धि को महातत्व में प्रतिष्ठित करे। महत्तत्व को सत् चित् आनन्द स्वरूप चेतन में जोड दो। महान पुण्य महान तप यही है तुम अपने को अपने कंट्रील में ले आयो। तत्त्व ज्ञान को ग्रहण करो। शंका नहीं करो। शंका करने से तुम्हारा

कल्याण कैसे होगा यह चेतन तो तुम्हारे अन्दर बैठा है । उस की कृपा से तुम्हारी वाणी बोल रही है । आंख देख रही है । कान सुन रही उस में भला शंका की कौन सी बात है ।

मुमुक्षु अपने मन को आत्माभिमुख बनावे सत् चित् आनन्द स्वरूप शुभ्र ज्योति स्वरूप अन्तरतमा का अपने अन्दर ध्यान करो । इस से तुम्हारे अन्दर ब्रह्मभाव प्रगट होगा जिस के दोष क्षीण हो गये हैं वो इस आत्मा का दर्शन करेगें । सत्य को जान कर ही सत्य को पकडता है । जो सत्य को जानेगा ही नहीं वह सत्य की प्रतिष्ठा भी क्या करेगा । भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद विज्ञान की जिज्ञासा करो इस से सत्य तुम्हारी समझ में आएगा ।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ४९

७।६।८५

"ॐ यदावै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धात्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति । यदावै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठात्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ।।"

(छान्दो० ७ १९।१–७।२०।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह मनुष्य तर्कशील प्राणी है । तर्क जहां तक उठता है वहां तक संशय होता है । जहां निश्चय हो गया वहां संशय रहता नहीं । इस लिए उस निश्चय को बनाना पडेगा । जहां तक निश्चय दृढ नहीं होता तभी तक तर्क होता है। हे नारद जिस समय यह निश्चय दृढ हो जाता

है। जगद्गुरू शंकराचार्य कहते हैं :—

वाक्यार्थश्च विचार्यताम्, श्रुतिशिरःपक्षः समश्रीयतां दुष्तर्काः सुविरम्यतां श्रुतिमतश्तर्कोऽनुसंधीयताम्

ब्रह्मास्मीति विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यताम् । मुमुक्षु अपने मोक्ष के लिए वाक्यार्थ का विचार करे। वाक्यार्थ से तात्पर्य चार महावाक्यों से है। चार वेदों के चार महा वाक्य हैं। अहं ब्रह्मास्मि ऋग्वेद। प्रज्ञान ब्रह्म यजुर्वेद। अयमात्मा ब्रह्म अथर्व वेद। तत्त्वमसि सामवेद। महावाक्य का उपदेश जब गुरु करता है तो शिष्य को यह आत्मा ब्रह्म है ऐसा साक्षात्कार होता है। शंका होती है कि यदि साक्षात् कार हो जाता है तो फिर जन्म नहीं होना चाहिए। पर देखो शास्त्र में विधान है कि बच्चे के जन्म से ग्याहरवें दिन तक तो उस से कुछ बात नहीं करे क्यों कि यह अतिथि बन कर आया है या मालिक बन कर ? उस के बाद पिता उस का नाम संस्कार करे। जब ग्यारह दिन तक जम गया तो समझ लो कि यह मालिक बन कर आया है। 'जगदीशोऽसि' पिता ने नाम दियां पर बच्चा उसे पकडने में अशक्त होता है। दो तीन महिने बार २ उसी नाम का श्रवण करने पर वह अपने नाम को पकड लेता है। इसी प्रकार मुमुक्षु भी ब्रह्मभाव को एक दम नहीं पकड सकता। यद्यपि मुमुक्षु को साक्षात्कार तो हुआ पर वह अपनी बुद्धि से उस को पकड नही सका। जैसे किसी को कंपवात हो तो वह किसी भी वस्तु को एक दम पकड नहीं सकता। हम लोगों की बुद्धि भी अनादि अनन्त काल से शोक मोह में रोती २ आ रही है। इस लिए साक्षात्कार होने पर भी उस ब्रह्म भाव को पकडने में असमर्थ होती है। निरन्तर श्रवण मनन एवं निदिध्यासन से यह भाव मुमुक्षु की बुद्धि में दृढ हो जाता है। तब वह अपने को ब्रह्म जानता है। उस आत्मा का स्वरूप महावाक्य के अन्दर है इस लिए कहते है वाक्यार्थ का विचार करो। सोचो तो यह 'अहं' है क्या ? शरीर से इस अहं को अलग करो। इन्द्रियो से इस अहं को अलग करो। मन से इस अहं को अलग करो। बुद्धि से परे कहां पहुंच गये अविद्या में सुषुप्ति में इन सब से अलग हो गये। वहां शरीर का, इन्द्रियों का, मन का, बुद्धि का कोई विलास नहीं। तुम्हारे शोक मोह को पकडने वाले यंत्र वहां नहीं हैं। इस लिए वहां कोई शोक मोह नहीं है। पर वहां अविद्या तुम्हें घेर कर बैठी है अपने

असली स्वरूप को समझने नहीं दिया। इस लिए जाग्रत में आने पर शोक मोह फिर शुरू हो जाता है। अविद्या, बुद्धि और कूटस्थ चेतन का आभास। जैसे शीशा, हमारा मुख और शीशे में उस का प्रतिबिम्ब। दर्शन तो तभी होगा जब इस की ओर आंख होगी। यह अविद्या सहित साभास बुद्धि मे जो अहं का भान होता है यह अहं जीव है कूटस्थ में अहं भाव का आरोप होता है। स्थूल शरीर को पकड कर शरीर के अहंकार में आ जाएगा। अपने को मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र मोटा दुबला कहने लगेगा। अविद्या सहित साभास बुद्धि विशेषण और इस का अधिष्ठान चेतन विशेष्य है। विशेष्य अंश में विशेषण का आरोप होता है यह जीव ही संसरण शील है। संसरण ही संसार है। यह जीव ही संसारी बन गया। मान लो यहां से बेटा गया और दूसरी जगह उत्पन्न हो गया तो यह तुम्हारा बेटा न होकर दूसरे का बेटा बन गया। तुम वहां जा कर बोलो कि यह तुम्हारा बेटा है तो कौन सुनेगा वह सब उस के मालिक बन गये। जिस का कोई मालिक नहीं और जिस के सब मालिक बन गये। ऐसी वो तुम्हारी अन्तरात्मा है। उस की ओर ध्यान दो। इस लिए मुमुक्षु महावाक्य का अर्थ विचार करे और उस के अनुसार अपने को जीव भाव से मुक्त कर के ब्रह्म भाव में ले आवे। "श्रुतिशिर:पक्ष:" वाक्यार्थ के विचार के लिए वेद और श्रुति को पकडो और इन के अनुसार दृढ निश्चय करो कि मैं ब्रह्म हूं। वेद में तीन काण्ड हैं। कर्म उपासना और ज्ञान काण्ड। ज्ञान के बिना न कर्म है न उपासना। परन्तु ज्ञान में पहुंने के लिए कर्म उपासना आवश्यक अङ्ग हैं। अच्छा कर्म वह जिस के बोझ से तुम्हारी आत्मा दबे नहीं। जिस से तुम भी प्रसन्न होओ और दूसरे भी प्रसन्न हों। बुरा कर्म वह जिस से न तुम्हारा भला न दूसरे का। संसार में सब कुछ मिल सकता है परन्तु सुन्दर ज्ञान का मिलना दुर्लभ है। 'दुर्लभं तत्त्वदर्शनं' इस लिए जगद्गुरु कहते हैं "दुस्तर्कात् सुविरम्यताम्" 'यथार्थ बोधकत्वं तर्क' तर्क वह करो जिस से यथार्थ ज्ञान हो।

एक तर्क यथार्थ का बोध कराने वाला होता है जैसे आजकल गाडियों में देखो। भीड तो होती है जो पहले आ गया पूरी सीट घेर कर बैठ गया। एक गरीब आया, और एक बुढिया जो पहले ही सीट घेर कर बैठी है, उस से बोला माता जी आप जरा सामान नीचे रख ले तो मैं भी बैठ जाऊं। बुढिया बिगड

कर बोली गाली देते हो मैं क्या तुम्हारे बाप की घर वाली हूं जो मुझे माता जी कहते हो। गरीब बेचारा घबरा गया और बोला अच्छा बहन जी सही तो बुढिया ग्रौर बिगडी ग्रौर बोली ग्रच्छ ग्रब मेरी मां को गाली देने लगें। गरीब ने फिर कहा ग्रच्छा देवी जी सही। बुढिया लाल पीली हो गई ग्रौर कहने लगी कि देवी तो काली कलकत्ते वाली को कहते हैं। मैं क्या वह हूं ? तब एक भद्र व्यक्ति बीच में बोला कि माता जी ग्राप तो योंही बिगड रही हैं। माता जी तो ग्रादर सूचक शब्द हैं इस बेचारे ने ग्राप को सब ग्रादर देने वाले शब्द कहे हैं। तो ऐसा तर्क कुतर्क होता है। ग्राचार्य कहते हैं कि बुद्धिमान ऐसे कुतर्क से दूर रहे। वेद ग्रौर श्रुति के ग्रनुसार तर्क करो तो तुम्हारी बुद्धि विशाल बनेगी। तर्क के बिना भी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती। केवल सत् वचन कहने से भी बुद्धि का विकास नहीं होगा।

एक सन्त कथा कर रहे थे ग्रौर श्रोता सब सत् वचन करते जा रहे थे। सन्त ने सोचा कि कुछ गप्प लगाग्रो देखें यह भक्त लोग कुछ विचार भी कर रहे हैं या ऐसे ही सत् वचन बोलते जा रहे हैं। बोले एक दिन हिमालय से मधुमक्खियां उडी। वे इतनी ग्रधिक संख्या में थी कि उन्हों ने पूरे सूर्य को ढक लिया। उडते २ वे मुजफ्फर नगर जो यू. पी. मे एक शहर है, वहां गुड की मंडी है। वहां पहुंच गई। फिर क्या था देखते ही देखते एक २ मक्खी ने एक २ गुड की भेली (५ किलो) उठाई ग्रौर उडने लगी। भक्त लोग बडी श्रद्धा से सत्य वचन कहते जा रहे थे। सन्त बिगड कर बोले क्या सत् वचन! कुछ विचार तो करो। क्या सुन रहे हो तुम लोग ? क्या यह सम्भव है कि मधुमक्खी पांच किलो गुड की भेली ले कर उड़ जावे। तात्पर्य यह है f मुमुक्षु को विचार करना चाहिए कि यह उचित भी है या नहीं। इस लिए ग्राचार्य शकते हैं कि तर्क करो तर्क ग्रावश्यक है परन्तु श्रुति के ग्रनुसार तर्क से ग्रनुसंधान करो। जिस से कोई ग्रर्थ निकलनेवाला न हो ऐसा तर्क मत करो।

"ग्रहरहर्देहे गर्वः परित्यज्यताम्" रात दिन विचार करो। यह देह तो पांच भूतो का विकार है। तुम शरीर तो हो नहीं। तुम तो देह से परे

ब्रह्मतत्त्व हो। ऐसी ब्राह्मी भावना को दृढ करो। जैसे ड्रामा में किसी लड़के को राजा हरिश्चन्द्र बना दिया। अब वह ड्रामा समाप्त होने पर भी अपने को राजा ही मानने लगे। अब वह राजा नहीं है अपने को राजा मान रहा है। ऐसी ब्राह्मी भावना नहीं है यहां तो वस्तुतः वही है। जीव-भाव तो मिथ्या है, कल्पित है। यहां मनोरंजन के लिए अपने को ब्रह्म नहीं मानना। यहां तो सत्य को पकड़ना है। यह बदलता हुआ शरीर "मैं" नहीं हूं। पर जिस की कृपा से यह मरणधर्मा अभी तक मरा नहीं "वह चेतन आत्मा मैं हूं" ऐसा दृढ निश्चय करना है। ब्राह्मी भावना वैदिक भावना है। हां इस मे शुभ अशुभ कर्मों का आरोप तो होता है पर वह कर्म केवल तुम्हारी भावना को ही शुभ अशुभ बनाते हैं। कर्ममीमांसा में भी ऐसे विधान है। ऋत्विज जो होता है यजमान उस के सामने ऐसी भावना करता है पुण्योहम्' मैं पुण्यात्मा हूं। भावना का इस जीवन में बडा महत्त्व है। तुम जैसी भावना करोगे वैसे ही बन जाओगे। मां बच्चे में जैसी भावना भरेगी वैसा ही बन जाएगा। यदि तुम उस को प्रशंसा करके उसे शेर बीर कहोगे तो वह झट से तुम्हारा काम कर देगा पर यदि मां बच्चे को हमेशा बुद्ध् ही कहती रहे तो वह कभी उस का काम नहीं करेगा। भले ही मार खा लेगा। पर तुम्हारा काम नहीं करेगा।

इस जगत का सत्य ब्रह्म है। जैसे अपने शरीर का सत्य तत्त्व जो है वहचेतन आत्मा है। "वो चेतन तुम हो"। ब्राह्मी भावना करो। अपने को ब्रह्म ही जानो। शरीर का अंहकार छोड़ो। शरीर का अंहकार करते रहोगे तो अपने को उसी के अनुसार सुन्दर जवान और वृद्ध मान लोगे। और जैसे सैंट की शीशी में से सेंट उड़ जाता हे। शीशी खाली रह जाती हे। ऐसे ही तुम्हारी सुन्दरता' तुम्हारी जवानी' तुम्हारा बल है। चाहे तुम इस का उपयोग करो या न करो। यह तो समय पर उड़ ही जाएगा शरीर से काम नहीं लोगे तो यह शीघ्र नष्ट हो जाएगा। जैसे बढिया कार हो दश लाख की ले आओ। और को गैरेज मे बन्द कर के रख लो। उस का उपयोग नहीं करो तो उस से क्या लाभ ? हां उस कार का अंहकार तो तुम्हें

होगा। ठीक ऐसे ही यह शरीर अंहकार भी है। इस लिए आचार्य कहतें हैं "गर्वः परित्यज्यताम्" इस शरीर के अंहकार को त्यागो। यह शरीर तो उस कार से अधिक कीमती है। इस का सुन्दर उपयोग करो। इस से अच्छे कर्म करते रहो।

विद्वानों के साथ केवल तर्क नहीं करो। उन की बात ध्यान से सुनो। यथार्थ को समझ कर बुद्धि में तत्व का दृढ निश्चय करो। भगवान सनत्कुमार कहते हैं, हे नारद जब इस प्रकार तत्त्व को जान जाओगे तो तर्क नहीं करोगे। जब तक तत्त्व को नहीं समझोगे शोक मोह से पार नहीं हो सकते। "मति मननात् मति" जिस बुद्धि में मनन वृत्ति है उस का नाम है मति। बुद्धि में शोक मोह भ्रम तो भरे ही हैं। उन सब का तो यह स्टोर है। पर श्रुति और तर्क के द्वारा मति को जाग्रत करना पडता है। मति में तुम को सत्य क्या है, असत्य क्या है? धर्म क्या है अधर्म क्या है! यह प्रगट होगा। मति सत्य असत्य के स्वरूप को प्रगट करती है। बुद्धिमान वह है जो सत्य को पकडे और असत्य का त्याग करे। जैसे थाली में बढिया २ भोजन रखा है और साथ ही एक ओर नीम की चटनी भी रखी है। तो सोचो हाथ किधर जाएगा। भले भक्त की रुचि की रक्षा करने का लिए उंगली उधर चटनी की ओर चली भी जाए पर दुबारा नहीं जाएगी। ऐसे ही इस शरीर में भी जब यह ज्ञान हो जाएगा कि सार तत्त्व सब से प्रिय आत्मा ही है तब मन स्वतः उधर ही जाएगा। भगवान को ढूंढने कहां जाओगे? इसी लिए भगवान निर्देश करते हैं **"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूतशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥** गुडाका निद्रा को कहते है। निद्रा को जितने वाला गुडकेश। अर्जुन निद्राजित् था इस लिए उस का नाम पड़ा गुडकेश, भगवान अर्जुन को गुड़-केश के नाम से सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मैं सब की आत्मरूप से सब के हृदय में स्थित हुं। भगवान कहते हैं। कि मुमुक्षु धीरे २ उपरामता को प्राप्त करे। **शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्** (गीता अ० ६।२५) सुन्दर बुद्धि जो धैर्य युक्त है उस के द्वारा मुमुक्षु धीरे २ ब्राह्मी भावना करता है। यह संसार किसी समय

शोक पूर्ण था क्रोध पूर्ण था। बड़े २ ऋषि यहाँ आए। उस समय भी यहां शोक मोह काम क्रोध रूपी बुराईयां थी। ऐसा मत सोचो कि यह संसार पहले बहुत सुन्दर था। महाभारत की कथा देखो द्रौपदी महासती थी पवित्रा थी पर दुर्योधन भरी सभा में कहता है कि उस द्रौपदी को पकड़ कर यहां ले आओ मैं उस को अपनी जंघा पर बिठाऊंगा बड़े २ योद्धा और शूरबीर वहां थे। बड़े २ ज्ञानी भी थे। पर कोई रोक नहीं सका उसे। इस लिए यह कल्पना नहीं करो कि बुराई कभी नहीं थी। यह संसार बना ही द्वन्द्वात्मक है। हां अपने को बुराई से बचाओ। सारे संसार की बुराई तुम समाप्त नहीं कर सकते। इस लिए कहते हैं कि बुद्धि मे ऐसी मति उत्पन्न करो जो तुम्हें ब्रह्म भाव की ओर ले जावे। भगवान सनत्कुमार नारद को समझा हुए कहते हैं कि ब्रह्म आत्मा का बोध प्राप्त करो। उस मति की जिज्ञासा करो जो तुम्हे ब्राह्मी भावना में ले जावे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

८-६-८५

प्रवचन सं. ५०

"यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।

छन्दो० ७।२१।१

भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते हैं कि बुद्धिमान मनुष्य को अपने जीवन में सत्य की खोज कैसे करनी चाहिए। जब तक सत्य नहीं मिलेगा तो यह मनुष्य झूठ में कब तक जिएगा। कहते है सत्य को पकड़ने के लिए दो प्रकार की बुद्धि चाहिए। एक तो बुद्धि तर्कशील होना चाहिए और दूसरे

उस में श्रद्धा रूपी गुण होना चाहिए । तर्कशील बुद्धि मन्द नहीं होगी। जड़ नहीं होगी। श्रद्धाशील बुद्धि अविश्वास को नहीं पकड़ेगी। सत्य की ओर उस की गति होगी । विश्वास ही तुम्हारा जीवन है । माता पिता पति पत्नी सब विश्वास से ही सुखी हैं । कल इस बात की चर्चा की थी कि बुद्धिमान जीवन में सत्य को पकड़े। उस सत्य की खोज के लिए श्रद्धा पकड़े। 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः' यह पुरुष श्रद्धामय है । जो जीवन में जिस श्रद्धा को धारण करेगा वह वैसा ही हो जाएगा । जीवन में मनुष्य जिस श्रद्धा से जीएगा मरने के बाद भी उसी के अनुसार जाएगा। भरत का दृष्टान्त सुना ही है आप लोगों ने। महान प्रतापी राजा था। राज्य त्याग कर बन में गया महान तपस्या की परन्तु अन्त में हिरणी के बच्चे में ध्यान के कारण हिरण योनि में जाना पड़ा । इस लिए मुमुक्षु सदा सावधान रहे। जैसे दृढ विश्वास को पकड़ कर बैठोगे मरने के पश्चात् उसी योनि में चले जाओगे। उसी भावना के अनुसार जन्म होगा।

केवल कर्म से काम नहीं चलेगा । बुद्धिमान मनुष्य अपने मन में अच्छे तो ज्ञान को भरे। अच्छे विचार को भरे। अच्छे संकल्प को भरे जीव अच्छी योनि में जाएगा। इस लिए महर्षि कहते है श्रद्धा को धारण करो । श्रत् सत्यं ध- ध्यान जिस वृत्ति में सत्य का ध्यान हो वह श्रद्धा है। सत्य के बिना झूठ भी नहीं टिकेगा। इस लिए उस वृति को बनाओ जिस में सत्य हो। जो इन्द्रियों का विषय नहीं उस में श्रद्धा होनी चाहिए। यह आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं है इसे आंख देख नहीं सकती। हाथ से इस को पकड़ नहीं सकते परन्तु श्रद्धाशील बुद्धि आत्मा को ब्रह्म भाव से पकड़ लेगी। वेद कहता है यह ब्रह्म है। बुद्धिमान आचार्य कहते हैं, यह ब्रह्म है। इस लिए मुमुक्षु बड़े पवित्र भाव से इस श्रद्धा को पकड़े रहे। ऋग्वेद में ऋषि प्रार्थना करते हैं "श्रद्धे श्रद्धेपयऽहम .. ...–...... सूर्यस्यनेमृची" प्रात काल की प्रार्थना में ऋषि परमात्मा को नहीं बुलाते वे श्रद्धा के लिए प्रार्थना करते हैं हे भगवान हमें श्रद्धाशील बनाओ। पहले त्रिकाल संध्या का विधान था। श्रद्धा जीवन का रस है। श्रद्धाशून्य मनुष्य नीरस वृक्ष है। दोपहर के समय भी दिन के बारह बजे बैठ कर यही प्रार्थना करते हैं कि हमें श्रद्धाशील बुद्धि

दो सायं काल की सूर्यास्त की संध्योपासना भी श्रद्धा को ही धारण करने वाली बुद्धि के लिए ही करते है जैसे एक सुन्दर वृक्ष सूख गया तो उस में सुन्दर फल, पत्र पुष्प कुछ नहीं लगेगा। इसी प्रकार तुम्हारे चित्त में यदि श्रद्धा नहीं है तो मनुष्य का जीवन उस सूखे वृक्ष की तरह नीरस हो जाएगा। न कुछ सोच सकेगा। न अच्छा कर्म कर सकेगा। चित्त में यदि श्रदा होगी तो यह वह रस है जिस के द्वारा तुम्हारे चित्त में सुन्दर विचार आएंगे। सुन्दर संकल्प होगा। हाथ से सुन्दर कर्म होगा।

बुद्धिमान सदा बड़ी श्रद्धा से लगा रहे। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:" गीता अ० ४।३९ श्रद्धाशील बुद्धि ही तत्त्व ग्रहण करेगी। श्रद्धा रहित बुद्धि शंकाशील बनी रहेगी। सूक्ष्म तत्त्व बोध बिना श्रद्धा के बुद्धि में अवतरित नहीं होता। और यदि आएगा भी तो टिकेगा नहीं। क्यों कि यहाँ तो दूसरा कोई है ही नहीं। अपने को अपने ही सुनाना है। आत्मा ही सुनने वाला। वही बोलने वाला। इस के बिना अन्य क्या है। सब शक्ति तो उस चेतन की ही है। शरीर की बेचारे की क्या अच्छाई है। इस लिए जो तुम्हारा असली स्वरूप है आत्मा बुद्धिमान उसी को पकड़े इस लोक में किसी वस्तु या व्यक्ति को पाने के लिए जैसे राग आवश्यक है। राग के बिना मिलने की इच्छा ही नहीं होगी इसी प्रकार आत्मा के असली स्वरूप ब्रह्म को पाने के लिए ज्ञान पूर्वक श्रद्धा है। इस लोक की किसी वस्तु व्यक्ति को पाने के लिए आतुर रहता है या किसी को पाना चाहता है तो उस के लिए संयतेन्द्रिय भी होता है। समय भी जरूरी है। एक बुढ़िया बाजार से कुछ समान लाई साथ में एक सुग्गा भी खरीद लाती है। घर आकर बड़े प्यार से उसे खाना दाना देने लगी। यह नियम है कि मनुष्य क्या पशु भी अपने खिलाने वाले को बड़े प्यार से देखता है। कुत्ता भी को उसे खाना देते है उसे देखते ही प्यार से पूंछ हिलाने लगता है। बुढ़िया जब उस सुग्गे का दाना देती तो वह बडी सुन्दर आंखे नाचता और बुढ़िया को प्यार से देखता। एक दिन उसे बिचार आया और सोचने लगा कि तू इस महाकाश में कब उड़ेगा। कब इस बन्धन से मुक्त होगा। वह गोपी कृष्ण गोपी कृष्ण कहता रहता था। उस नगर में एक बार एक महात्मा आए हुए थे। भक्त लोग उन का सत्सङ्ग

सुनने रोज उसी रास्ते से गुजरते। एक सुग्गा नाथ द्वारे में था कहते हैं उसे तीन हजार श्लोक भागवत के याद थे। एक सेठ उस के लिए पांच हजार रूपये देने के लिए तैयार था पर जिस का सुग्गा था उसने कहा कि मैं ने इसे इस के लिए नहीं पढाया। वैसे सुग्गा मनुष्य जैसी भाषा बोल लेता है और उसे जो चाहो पढ़ाया जा सकता है। एक दिन बुढिया का सुग्गा लोगों से पूछने लगा कि तुम लोग रोज इसी समय कहां जाते हो। उन्हों ने बताया कि एक महात्मा का सत्सङ्ग होता है वह सुनने जाते हैं। बड़े विद्वान अच्छे संत है। सुग्गा कहने लगा कि अच्छा उन से मेरे लिए पूछना कि मेरी मुक्ति कब होगी। उस दिन वह भक्त पूछना भूल गया। जब लौट रहा था तो सुग्गे ने पूछा कि संत ने मेरे लिए क्या कहा है। भक्त बोला आज तो पूछना ही भूल गया। उसने कहा अच्छा कल अवश्य पूछना। दूसरे दिन सूग्गे ने फिर कहा आज अवश्य पूछना याद रखना भूलना नहीं। भक्त ने कहा अच्छा। जब प्रवचन समाप्त हुआ सब लोग चले गये तो उस भक्त ने बड़ी विनम्रता से कहा कि महाराज रास्ते में एक सुग्गा पिंजरे में पडा है। उस ने भी एक प्रश्न पूछा है। संत ने कहा क्या पूछा है। भक्त ने कहा वह पूछता है कि मेरा मोक्ष कब होगा। कब इस बन्धन से मुक्त होऊंगा। सुनते ही संत बेहोश हो गये। भक्त घबरा गया। थोड़ी देर बाद संत होश में आ गये पर अब उस ने दुबारा कुछ पूछा नहीं चुप चाप उठ कर चला आया। रास्ते में सुग्गे ने फिर पूछा कि संत ने हमारे लिए क्या कहा है ? भक्त बोला कहा तो कुछ नहीं तुम्हारा प्रश्न सुनते ही बेहोश हो कर गिर गये। तोते ने कहा बस मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। उसने पूछा क्या। तोता बोला कि यदि तुम्हे बता दूंगा तो काम बिगड़ जाएगा। दूसरे दिन जब बुढ़िया खाना देने आई तो देखा कि तोता बेहोश हो-कर गिर पड़ा है। बुढिया ने पिंजरे का दरबाजा खोल दिया। मनुष्य का स्वभाव होता है वह नहीं चाहता कि पक्षी पिंजरे में ही मरे। बुढ़िया ने भी सोचा यह अजादी में प्राण छोड़े। बस तोते ने देखा कि अच्छा मौका है झट से उड़ कर आकाश में पहुंच गया। इस प्रकार वह बन्धन से मुक्त हो गया। वह तो मुक्त हो गया पर यह तुम्हारा सुग्गा जो इस शरीर रूपी पिंजरे में बन्द है सोचो तो इस का मोक्ष कब होगा। यह सुग्गा जब इस पिंजरे को

छोड़ कर उड़ जाएगा तो इस पिंजरे का क्या होगा। यह तो हिन्दुओं की बुद्धि अच्छी है कि वह इस खाली पिंजरे को (शरीर को) अग्नि में डाल देते हैं जिस से यह शीघ्र ही अपने भूतों में मिल जाता है। मुमुक्षु अपनी इस आत्मा की ओर ध्यान दें "**दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम। दुर्लभा सहजाऽवस्था सद्‌गुरोः करुणां विना** ।। विषयों का त्याग अत्यन्त दुर्लभ होता है। तत्त्व दर्शन और भी कठिन है। सहज स्वभाव प्राप्त होना बडा कठिन है। एक सहज अवस्था होती है। जब बच्चा जन्मता है तो कितना भोला होता है? कितना निश्छल! कितना कोमल! कोई छल नहीं। कोई चतुराई नहीं होती। पर जैसे २ बड़ा होता है वैसे २ चतुर होने लगता है। यहां तक कि उसे अपने जीवन में भी शंका होने लगती है। जब चिन्ता अधिक बढ़ जाती है तो एक पागलपन आ जाता है। सुन्दर विचार करो कि यह सत्य आत्मा क्या है?

चित्त का निर्मल होना चित्त का निश्छल होना सहजावस्था है। यह तो सदगुरू की कृपा हो तब तत्त्व चिन्तन का सुन्दर अवसर प्राप्त होता है। विषयों से वैराग्य होता है तब सहजावस्था प्राप्त होती है। मंत्र कहता कि जब यह मनुष्य श्रद्धा करता है तब सत्य की ओर इस बुद्धि की वृत्ति बनती है " यदा वै श्रद्धधाति " लोक में श्रद्धा शब्द का अर्थ है दृढ विश्वास। जैसे अपना ही बेटा है जब तक विश्वास नहीं होगा तो पिता की बात भी नहीं मानेगा। लोक जीवन भी विश्वास से ही सुखी है और अध्यात्म जीवन में इस विश्वास का नाम श्रद्धा है। यह जीव उस आत्मा को आंख से तो देख नहीं सकता। "**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्चयत्। अनाद्यनन्तं महतःपरं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते** ।। (कठोपनिषद् अ. १।३।१५)

यह आत्मा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से रहित है। रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श यह पांच विषय तो इन्द्रियों के द्वारा पकड में आते हैं। पर यह तुम्हारी आत्मा किस यंत्र से पकड मे आएगी। यह आंख तो बल्ब है। पर कितने वॉट का है? आज का विज्ञान बहुत प्रतिशील है पर आज तक उस के पास कोई ऐसी light नहीं है जो यहाँ नेपाल से पटना तक भी प्रकाश कर सके। पर विचार करो

कि तुम्हारे इस बल्व में कितनी शक्ति है। रात को बाहर निकल कर आकाश की ओर देखो। कौडी जितनी आंख ध्रुव तारे को देख रही है। हम लोग सोचते हैं कि हम बहुत बुद्धिमान है। एक पांच वॉट का बल्व भी रोज जलाओ तो हर महिने बिजली का बिल देना पड़ता है। यदि समय पर बिल नहीं दोगे तो light कट जाएगी। पर यह दो बल्व उस परमात्मा ने तुम को दिए पर कभी बिल नहीं मांगा। वो परमात्मा तुम्हारा कितना ध्यान रखता है फिर कहते हैं भगवान हमारे लिए क्या करता है ? दो सुन्दर आंख, बीच में पहाडी जैसी सुन्दर नाक। कितना सुन्दर बनाया है उस ने तुम्हें। यदि एक बल्व खराब भी हो जाए तो दूसरा काम करता है। इतनी बड़ी कृपा कर रहा है और क्या पापड़ वेल कर खिलाएगा तुम्हें। कहीं भगवान भी बिल भेजना शुरू कर देता तो क्या हाल होता तुम्हरा कितना बिल भरते उस का ? वह तो करूणावरुणालय है। इस करुणा के समुद्र की कितनी करूणा है जीव पर।

ऐसी वो तुम्हारी आत्मा है । न उस का रूप है न रंग। वह अनादि है अनन्त है। उस का न आदि है न कहीं अन्त है। जरा आंख बन्द कर के देखो जन्म जन्मान्तर में कितनी मम्मीयों का दूध पिया है। कितनी बार पशु पक्षी बने हैं। इसी लिए उसे अनादि कहा गया है। वह अनादि है अनन्त भी है क्यों कि यह कभी मरा नहीं। यदि इस का अन्त होता तो आज यह नहीं होता। जन्म मरण सब देखने का है। न हम जन्मे न हम मरे। न बुढ्ढे हुए। सदा चिदेकरस हैं यह चेतन आत्मा महत्‌अविद्या से परे है। यह ध्रुव है। "निचाय्यतं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" उस आत्मा का ऐसा निश्चय दृढ कर लोगे तो मृत्यु से बच जाओगे। नहीं तो मृत्यु देवता सदा मुंहा खोल कर बैठा है। पता नहीं कब मुंह बन्द करले और तुम उस काल के गाल में दब जाओं। शेर सोया हुआ है पर मुंह खुला पड़ा है। बताओ उस के मुंह में कोई मक्खी या मच्छर जा सकता है या नहीं। जब उस शेर का मुंह खुला हुआ है मक्खी मच्छर आराम से उड़ सकता हैं। पर ज्यों ही मुंह बन्द हुआ कि गया। इसी तरह यह रात और दिन काल देवता को मुंह है और हम लोग मच्छर मक्खी की तरह उस में उड़ रहे हैं। यह पता ही नहीं चलेगा कि

कब उस ने मुख बन्द कर लिया । इस लिए श्रद्धा के द्वारा तुम उस अन्तरात्मा में पहुंच सकते हो। इस लिए मंत्र कहता है "श्रद्धां जिज्ञासस्व" नारद कहते हैं हे भगवन मैं श्रद्धा की जिज्ञासा तो करता हूं पर मुझे यह समझाओ कि यह श्रद्धा बनेगी कब ? इस मनुष्य में श्रद्धा कब होती है । श्रद्धा का कारण है निष्ठा । किसी के कहने से कब तक श्रद्धा करोगे । मां मन्दिर में जाती है । छोटे बच्चे को कहती है हाथ जोड़ो । वह हाथ जोड लेता है । बच्चे ने मां के कहने से हाथ जोडा पर अभी उस में श्रद्धा नहीं है । न निष्ठा ही है। पर संस्कार पड़ जाता है और आगे चलकर श्रद्धा और निष्ठा भी बन जाती है जिस में ज्ञान है वहीं निष्ठा होती है । अमुक विषयक जो धारणा है वही निष्ठा होती है । निष्ठा के बिना श्रद्धा नहीं होगी । एक मकान को बनाने के लिए कितना ध्यान देना पडता है। तो इस जीवन को बनाने के लिए भी ध्यान देना चाहिए। प्रकृति से बच्चा जन्मा और बडा हो गया । पर मन का क्या होगा । मन से हम बच्चे ही हैं । मन को जब तक निष्ठा में नहीं लाएंगे तब तक श्रद्धा नहीं बनेगी । भगवान सनत्कुमार कहते हैं कि तुम निष्ठा की जिज्ञासा करो । नारद कहते हैं भगवन निष्ठा के लिए क्या करना पड़ेगा । महर्षि बोले निश्चित धारणा करनी होगी । दृढ विश्वास चाहिए । विश्वास से निष्ठा । निष्ठा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य में पहुंच जाओगे । यही क्रम है ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ५१

९।६।८५

"ॐ यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ।।"

(छान्दो. ७।२२।१)

विचार चल रहा है कि इस बुद्धिमान मनुष्य को निष्ठा होनी चाहिए ।

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद को उपदेश करते हुए कहते हैं कि हे नारद जीवन मे मनुष्य जिस वस्तु को पाना चाहता है, जिस की इच्छा करता है उस वस्तु के प्रति निष्ठा होना चाहिए। निष्ठा माने दृढता, विश्वास। यह विश्वास, यह दृढता कब बनेगी। जब वह इन्द्रिय संयम करेगा। एक तत्त्व के प्रति दृढ़ निष्ठा, दृढ़ विश्वास बनाने के लिए इन्द्रियों का संयम आवश्यक है। इस मनुष्य की दास इन्द्रियां हैं जो अपनी २ जगह पर बडी प्रभावशील हैं। इस लिए मनुष्य को इन इन्द्रियों पर ध्यान देना पड़ेगा। नहीं तो कोई इन्द्रियां इधर उधर इसे खींचेगी कोई उधर। तब इस की क्या दशा होगी? कहते है "बहु पत्नियों गृहपतिं लुठन्ति"। बहुत पत्नियां पति को छिन्न भिन्न कर देती हैं। जहां बहु पत्नी प्रथा है, हिन्दुओं में पहले कहीं २ थी, पर अब प्रायः लुप्त हो गई है, वहां पति का हाल क्या होता है। पत्नियां सब अपने २ स्वभाव से चलने वाली है कहते हैं एक विद्वान पंडित की दो ही धर्म पत्नियां थी। दोनों अलग २ रहती थी। एक पत्नी के यहां भोजन किया। हाथ धोने गया दूसरी, जो सामने बैठी थी, बोली "भोजनान्ते शतपदं गच्छेत्" भोजन के उपरान्त सौ कदम चलना चाहिए। दूसरी बोली यदि "शय्या न भवेत् यदि विस्तर न लगा हो तो। पहली फिर बोली "शय्यायां बहुरोगा भवेयुः" अर्थात खाते ही बिस्तर पर लेट जाओ तो कई रोग हो जाते हैं। दूसरी ने उतर दिया "यदि कान्ता न भवेत्" जब सेवा करने वाली पत्नी न हो तो। इस प्रकार वाद प्रतिवाद चलता था इसी प्रकार के किस्से तो सुनते ही रहते हो। एक बाबु की भी दो पत्नियां थी। बाबु जी दोनों का झगडा सुनते २ परेशान थे। एकदिन देर से घर लौटा। सोचा नीचे वाली सो गई होगी। धीरे से ऊपर चढने लगा। ऊपर वाली से ज्यादा दोस्ती थी। नीचे वाली ने झट से पैर पकड़ लिया। ऊपर वाली को पता चला तो वह भी बाहर आ गई उस ने ऊपर से हाथ पकड़ कर खींचना शुरू किया। एक ऊपर खींचते है तो दूसरी नीचे। बाबु जी मथानी की तरह बीच में लटक गये। रात भर खींचां तानी होती रही। एक चोर जो दैवयोग से बाबू जी के घर चोरी करने आया था यह तमाशा देखता रहा। रात भर झगडा चलता रहा। चोर चोरी तो कर नहीं पाया उल्टे पकड़ा गया। जब थानेदार के पास पहूंचा तो डरते २

बोला और चाहे कोई सा भी दंड दे दीजिए पर दो पत्नियां रखने की सजा कभी मत देना। प्रह्लाद भक्त भगवान नृसिंह से प्रार्थना करते हैं कि "जिह्वै कतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता। **शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।। घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।।** श्रीमद् भागवत (स्कंध ७। अ. ९। श्लो० ४०) हे अच्युत भगवान यह कभी न अघाने वाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसों की ओर खींचती है। जननेद्रिन्य सुन्दर स्त्री की ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्श की ओर, कान मधुर संगीत की ओर नासिक सुगन्धि की ओर और ये चचल नेत्र सौंदर्य की ओर मुझे खींचते रहते हैं। ये कर्मेन्द्रियां अपने २ विषयों की ओर ले जाने को लगाती रहती हैं। मेरी दशा तो ऐसी हो गई है जैसी किसी पुरूष की बहुत सी पत्नियां उसे अपने २ शयनगृहों में ले जाने के लिए घसीट रही हों। इस लिए आप ही मेरी रक्षा करो।

महर्षि कहते हैं इस लोक में पांच प्राणी ऐसे हैं जो एक २ इन्द्रिय के प्रभाव में आकर प्राण त्याग देते हैं। तो इस मनुष्य की क्या गति होगी। कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग भृङ्ग और मीन। कुरङ्ग हिरण को कहते हैं हरिण को शब्द विषय का बड़ा मोह होता है। शिकारी जब हरिण को पकडने जाते हैं तो बडी सुन्दर वीणा बजाते हैं। उस के स्वर में हरिण बंध जाता है सांप को तो आप लोगों ने देखा ही होगा। वह भी वीणा के स्वर में बंधा २ चला आता है और सपेरा उसे पकड़ लेता है। मातङ्ग माने हाथी आज कल तो बेचारे हाथी खत्म ही होते जा रहे हैं। पर पुराने जमाने में हाथी राजा महाराजाओं की शान थी। जैसे आज कल जिस के पास दो चार कारें हैं वही बड़ा आदमी है। हाथी स्पर्शेन्द्रिय में मरा जाता है। उसे पकड़ने के लिए एक बड़ा सुन्दर गड्ढा बनाते हैं और कागज की हथिनी बना कर उस में खडा कर देते हैं। बस हाथी उस के पीछे जाता है और गड्ढे में गिर जाता है। पतङ्गा दीपक की ज्योति में फस जाता है। इसे रूप में बडा मोह है। भृङ्ग को गन्ध में बडा मोह होता है। सुन्दर पुष्प गन्ध में बडा मोह होने के कारण वह उसी में फस कर प्राण दे देता है।

भृङ्ग भूं ऊं ऊं कर के पुष्प को प्रसन्न करता है। कहोगे पुष्प को क्या प्रसन्न करेगा ? को देखो जब भंवरा मधुर स्वर में गाता है तो पुष्प की पंखुडियां खिल जाती हैं। धीरे २ वह उन में जा बैठता है जहाँ पराग होता है। ऐसे ही एक भंवरा उडा और गुनगुनाते हुए एक सुन्दर कमल में जा कर बैठ गया। उस की सुन्दर गन्ध में मस्त हो गया सूर्योदय होता है तो कमल खिल हो जाता है। सूर्यास्त होता है तो कमल बन्द हो जाता है। संध्या होने पर कमल बन्द हो गया और भंवरा उस में फंस गया। अगर वह चाहता तो कमल की सुन्दर कोमल पंखुडियों को काट कर बाहर आ सकता था पर ऐसा नहीं करता सोचता है कि जिस की मधुर गन्ध मैं लेता हूं उस की कोमल पंखुडियों को काटना ठीक नहीं। एक विद्वान उस की स्थिति की कल्पना करता है। भंवर सोचता है:-

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः इत्थं विचिन्त्यति कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ।।" चिन्ता की कोई बात नहीं यह रात्रि बीत जाएगी। सुन्दर प्रभात होगा। सूर्य भगवान उदय का होगा। सुन्दर कमल की शोभा पुनः विकसित हो जायगी। "इत्थं विचिन्तयति, कोश गते द्विरेफे" द्विरेफे माने जिसमें दो रकार हो। 'भ्रमर' वहां कमल में बैठा हुआ यही सोच रहा था कि, उधर से एक मस्त हाथी आया और अपनी सूंड मे कमल लपेट लिया। इस तरह भ्रमर भी उस हाथी के पेट मे पहूंच गया। कवि कहता है "हा हन्त नलिनीं गज उज्जहार" जो जीवन की आशा लेकर चल रहा था वह ठंडा हो गया। इसी तरह यह जीवन भी है। इस शरीर को कमल समझो और इस में यह जीवरूपी भ्रमर बैठा है। कल्पना करता है अभीं तो बचपन है। खूब खेलो। मस्ती करो। जवानी आई तो कहता है अभी तो जवान हैं खाने पीने का समय है। मौज मस्ती के दिन हैं। फिर बच्चे हो गये। कहने लगे अभी तो बच्चे छोटे हैं इन का पालन पोषण करना है। जब यह बड़े हो जाएंगे तब कुछ करेंगे। तब तक बुड्ढे हो गये। वो हाथी आ गया। कालरूपी मृत्यु हाथी। कल्पना करते २ ही मर गया। सोचो तो क्या किया ? वासना मे जन्मा, वासना में जीआ और वासना में चल बसा। इस लिए

मुमुक्षु को विचार करना है । इन्द्रिय जय करना है । इन्द्रियाणाम् विचरतां विषयेष्वपहारिषु । सयंमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्'' (मनुस्मृति अ. २। ८८) महाभारत में कथा आती है कि प्राचीन काल में परमात्मा ने सृष्टि की और यह सृष्टि बढ़ती ही गयी । जैसे अपने इस शरीर में ही देखो । शरीर तो कई रंग बदल चुका है । पर जिसने इस शरीर को धारण किया है वह कुछ बदला ? एक शरीर और एक आत्मा, आत्मा कभी मरा नहीं कभी बदला भी नहीं । एक स्मृति बनी रहती है कि यह मेरी मां मैं इस का बेटा । इस से यह मालूम पड़ा कि जिस ने यह अनुभव किया है वह इस स्मृति को पकड कर बैठा है । यह आत्मा अमृत है यह कभी मरा नहीं । किन्तु जिस शरीर ने इस शरीर को जन्म दिया था उस का क्या हाल है ? वह शरीर तो कपूर की तरह उड गया । जिस शरीर ने जन्म लिया था वह भी खंडहर सा हो गया । खंडहर तो जानते हो जैसे पुराना किला हो । राजवंश तो नष्ट हो गया पर किले की दिवारे अभी खड़ी हैं । बुढापे में यह शरीर खडहर जैसे हो जाता है । मान लो अभी वो अन्दर बैठा । पर शरीर का क्या हाल हो जाता है । कभी पेट में पीडा तो कभी कमर टेढी हो गई किले की दिवार की तरह । माने यह शरीर रंग बदलता है । पर आत्मा जैसी तैसे ही है अमर है । Immortal है । अविनाशी है । प्राचीन कल में जब परमात्मा ने सृष्टि की तो यह शरीर भी अमर होता था । मरता नही था । इस लिए सृष्टि बढती ही गई । तब परमात्मा ने सोचा कि प्रजा इस तरह बढती ही जा रही है जैसे जंगल में वृक्ष के साथ वृक्ष सटा हुवा हो । अभी भी देखते हो लोगों के सामने समस्या है कि खाएंगे कहां से ? इस लिए Birth Control करो । उस समय तो मृत्यु की सृष्टि ही नहीं हुई थी । प्रजापति ब्रह्मा भी सोच मे पड गये । उन्हो ने ध्यान किया । एक सुन्दर दिव्य कन्या देवी के रूप ने प्रगट हों गई । बोली पिता जी क्या आज्ञा है ? ब्रह्मा बोले बेटी देखो प्रजा कितनी बढ गई है । चलना फिरना मुश्किल हो गया है । प्राणियों का व्यवहार रुक रहा है । थोडा इन को ठीक करो । भगवती बोली मैं यह काम नहीं करूंगी पिताजी । ब्रह्मा जी पुनः ध्यान करने लगे तो रोगों की सृष्टि हुई । जरा

नाम की कन्या की सृष्टि हुई। बोले पिताजी आज्ञा दिजिए। ब्रह्मा जी ने वही समस्या बताई। रोग बोले हम कैसे किसी के गले पड़े। तब ब्रह्मा जी ने समझाया कि यह मोडल है। मॉडल क्या यह जो शरीर है इसी में जगह देखो। मैंने इस मे दस इन्द्रियां यन्त्र लगाए हैं। इन्द्रियों को बुलाया कि कौन ब्रह्मा जी कीं आज्ञा का पालन करेगा। ध्यान से देखा तो एक तो रसना (जीभ) और दूसरी जननेन्द्रिय पर दृष्टि गई। बस ब्रह्मा जी ने कहा काम बन गया जिह्वा कभी तृप्त नही होगी अटपट खाती जायगी। कितने ही रसाल पदार्थ इस को खिलाते जाओ यह कभी सन्तुष्ट नहीं होगी। बस इस को वश में करो। यह खाएगी और पेट में रोग उत्पन्न करेगी। किन्तु अकेली यह भी क्या करेगी? इस लिए ब्रह्मा जी ने जननेन्द्रिय की ओर देखा। बस इन दो इन्द्रियों को बस में करने से काम हो जाएगा। रोगों से कहा कि जो इन दो इन्द्रियों में प्रमादी होगा बस उस को पकड़ लेना। मृत्यु देवता से कहा कि तुम उस को ले जाना जिस को यह रोग पकड़े। इस तरह यह समस्या सुलझी। आज कल बहुत लोग कहने लगे हैं कि भोग से समाधि हो जाएगी। "मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना" यदि भोग से मोक्ष सम्भव हो तब तो पशु पक्षी सब मुक्त हो जाना चाहिए। वह तो भोग मे तुम से भी अधिक स्वतन्त्र है। भोगों से कभी सन्तुष्टि होने वाली नहीं। यह तो केवल कल्पना है उन लोगों के अन्दर जरा झांक कर देखो वह कितने मुक्त है। यह केवल भोगवाद का ताण्डव है। सब वासना के शिकार हुए हैं। मनुष्य इन इन्द्रियों में संयम करेगा तभी उस के मन में शान्ति आएगी। नही तो कभी नहीं।

इस लिए गीता में कहा है **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा** ।। (गीता० अ० ६ १७)अपना आहार और व्यवहार युक्ति युक्त करो। इस छान्दोग्य उपनिषद में भी आगे यह विचार आने वाला है "आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि -.........."आहार माने अन्दर लेना विहार माने बाहर फेंकना। अन्दर कितना बाहर कितना निकलना। विचार करना पड़ेगा। जरा सा कही ज्यादा भोजन कर लो तो

देखो फिर हंडी मे क्या होता है। हंडी माने पेट । कर्म मे भी युक्तियुक्त चेष्टा करे। "युक्तस्वप्नावबोधस्थ" स्वप्न माने सोना अवबोध माने जागना। युक्ति से सोओ। यह नही कि सोये सोये हीं पड़े है और जागे तो रात २ भर जाग ही रहे हैं। इस का अर्थ है कि अपने जीवन को काम के साथ बांधो। ऐसा नहीं सोचो कि कल हमारी प्रतीक्षा करेगा। जीवन में काल की प्रतिष्ठा करोगे तो कल तुम को सिद्धि देगा । " न प्रतीक्षते कालः" " काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता । युक्तियुक्त व्यवहार यह योग दुख को दूर करने वाला होगा। यह युक्ताहार विहार तुम्हारे शरीर को तुम्हारे मन को स्वस्थ रखेगा। और शरीर और मन जब स्वस्थ हैं तो तुम में निष्ठा आएगी। उस निष्ठा से क्या होगा? भगवान कहते हैं **"यः सर्वात्रानभिस्ने हस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् । नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।"** (गीता अ २।५७)जहां तक शरीर का सम्बन्ध है जो न किसी कीप्रशंसा करता है। न किसी की निन्दा करता है उस की बुद्धि निष्ठा में स्थित है। मन में उद्वेग नहीं आवे। यह मन बड़ा चंचल है। इस में उद्वेग आता है **"दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते"** (गीता अ. २।५६) संसार के जो सुख हैं उन में वांछा, वासना तृष्णा को नहीं बाधे दुख भ उद्विग्न न हो। तीन चीजो से वीत रहे अर्थात् दूर रहे राग भय और क्रोध। तुम्हारे मन को राग बिगाडने वाला है। राग तुम्हें मोहमे फैंक देता है । मन को भय किस बात का सोचो कि करोड़ो बार जन्म ले चुका हो। आत्मा जो अभी तक मरा नहीं। तो वह कभी मर सकता नहीं। सत्य की समीक्षा करो। भय तुम्हारे मन को कमजोर कर देगा। जिन २ शरीरों को लिया था वो चले गये। शरीर चले गये तो उन के बेटा बेटी भीं थे प्रिय अप्रिय भी थे । वह सब भी गायब हो गये। विवेक करो कि तुम्हारा प्रिय कौन? तुम्हारा भाई बन्धु कौन। इस से पहले का रिकार्ड कहां हैं? कौन बेटा कौन बेटी कौन पति कौन पत्नी। कोई रिकर्ड नहीं। यद्यपि रिकार्ड छिपे रूप मे चल रहा है। जैसे वो नहीं रहा यह भी नहीं रहेगा। परन्तु उस का भोग तुम को देना पड़ रहा है। अच्छा सोचो अच्छा समझो अच्छा करो। बस यही जीवन है। तीन चीजे ठीक पकड़े रहो बाकी तो सब यो ही लफडा है। रोने वाली पार्टी में जाओ तो रो लो। हंसने वाली पार्टी में जाओ तो हंस लो। स्बर

में स्वर मिला कर चलो। गतानुगतिको लोको न लोकः परमार्थिकः, संसार जैसा चल रहा है तुम भी चलो। आंधी आती है, बवण्डर चलता है तो उधर पीठ कर के चलने से बच सकते हो। मुंह कर के चलोगे तो उपद्रव होगा। याद रखो उल्टा ही चलना पड़ेगा। बडी सावधानी से चलना पड़ेगा आत्मा अमर है। जिसको भय नहीं क्रोध नहीं वह मुनि है तत्त्व शील है। मननशील है। स्थितधी है। इस की बुद्धि स्थिर है। स्थिरधी का अर्थ है "यदा वै करोति तन्निष्ठति" जो इन्द्रियों का संयम करेगा। वह निष्ठा मे आएगा। ब्रह्म तत्त्व में बुद्धि स्थिर रखो। गीता मे भगवान कहते हैं "इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च, जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।" (गीता अ. १३.८) मुमुक्षु विषयों की ओर यदि वैराग्य पूर्वक जाएगा तो इस के अन्दर मिथ्या मोह नहीं बढ़ेगा। मिथ्या लोभ नहीं बढेगा। जैसे अपना घर में समझो लड़के की शादी हुई। वह ससुराल गया पहली वार तो उस की मां ने समझाया बेटा थोडा नखरे से खाना। यह नहीं कि सासु ने जो दिया तो हफ हफ लगे खाने। बेटा वहां ऐसा ही करता है। सासु ने पूछा बेटा क्या वात है क्या पेट में पीडा है? जो तेरे मन मे हैं बोल देना। सासु भी तीन प्रकार की मान सो। फर्स्ट क्लास सैकिण्ड क्लास और थर्ड क्लास। अब यदि सासु प्रथम दर्जे को हुई तो कहेगा अमेरिका आने जाने खर्चा दे दो या वम्बई में एक सुन्दर सा फ्लैट ले दो। सासु कहेगी वेटी दी है तो फ्लैट भी ले ही दुंगी। पुरानो जमाने में गाय भैंस मांगते थे। आज कल मोटर साईकल मांग लेते है। सैकण्ड क्सास की होगी तो मोटर साईकल और थर्ड क्लास की हुई तो साईकिल ही सही। तो सासु देती है कि नही पर कव देती है जव जमाई ने खाने में नखरा दिखाया। इस का मतलब कि जमाई ने खाने मे वैराग्य दिखाया तो सासु ने दिया। माया भगवती भी सासु की तरह परोस कर बैठा है। यहां मुमुक्षु भी जमाई की तरह ही माया भगवती के सामने नखरा करे। थोडा वैराग्य धारण करे। यदि जमाई लोभी होगा। हरियाणे के जाट की तरह। सासु ने खूब खीर पूड़ी बनाई और माल पूआ। परोस दिया एक दर्जन। जमाई ने चार पांच लपेट लिए एक ही ग्रास में। सासु ने तीन चार बार में टंकी भरने का

प्रयत्न किया। यद्यपि अन्दर से सासु प्रसन्न भी हो रही है लडका जान दार है पर उपर से सिर पीट कर कहेगी हाय मेरी बेटी कब तक बनाती रहेगी इस पेट के लिए। जैसे सासु उस जमाई को बार २ पूछती है जो नखरे से खाता है। ऐसे ही परमात्मा भी उस भक्त की ओर ज्यादा ध्यान देता है जो जीवन मे वैराग्य को धारण कर के इन्द्रिय संयम करता है। खाओ जरूर पर थोडा नखरा कर के खाओ।

इन्द्रियों को संयम में रख कर भोग लो। मुमुक्षु इन्द्रियों के अर्थो मे (विषयों में) वैराग्य को आगे रखे और मन को अंहकार रहित करे। जीवन मे वैराग्य कब अएगा ? जब बुद्धिमान विषयो में दोषदर्शन करेगा। अंहकार मनुष्य को गिरा देता है। इस लिए मन को अंहकार रहित बनाना मुमुक्षु का कर्तव्य है।

"जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम्" बार बार जन्म मृत्यु वृद्धावस्था और रोगों के दुखों का स्मरण करने से विषयों का स्वरूप समझ में आएगा। इस जीवन में दोष दृष्टि करोगे तो वैराग्य की उत्पत्ति होगी। तब सत्य के प्रति निष्ठा। बनेगी। श्रद्धा आएगी। निष्ठा बनती है जहां मनुष्य को सुख प्राप्ति की आशा होती है। यह मनुष्य जो भी किया करता है। सुख प्राप्ति के लिए ही करता है। सुख नहीं मिलेगा तो कर्म ही नहीं करेगा। तब नारद ने पूछा भगवन सुख क्या है ? और किस मे है ? महर्षि कहते हैं कि यह सुख विषयों में नही है। विषयों से आने वाला सुख अल्प होता है बुद्धिमान मनुष्य अल्प सुख से संतुष्ट नहीं होता। यहां से भूमा ब्रह्म का उपदेश शुरू होता है। जिस की चर्चा कल करेंगे।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५२

१० ६।५८

"ॐ यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ।।"

(छान्दो. ७।२३।१)

भगवान सनत्कुमार महर्षि नारद से कहते हैं कि यह जीव कब कुछ करता है ? जब इस में निष्टा होती है तब । निष्ठा नहीं होगी तो कुछ नहीं करेगा । जीवन में जो जो भी कर्म हैं सब निष्ठा के अधीन हैं । निष्ठा होने से यह मनुष्य महान होता है । कुछ करने के लिए इस मनुष्य को सुख चाहिए । जैसे जब हम लोग बच्चे थे माता दोकान पर कुछ लेने के लिए भेजती थी तो हम उस दुकान पर जाते थे जो रुंगा झूंगा देता था । रुंगा झूंगा माने कमीशन । इसी तरह जगत में जीव जो कुछ भी करता है तभी करता है जब उसे उस से सुख मिलने की आशा होगी । दुख के लिए हम कोई धन्धा करते हैं क्या ? कुछ तो लोक जीवन का सुख है । इस में भी कुछ सुख इन्द्रिय के अधीन है । पर यह महान सुख आत्म सुख जो है वह इन्द्रियों के अधीन नहीं है । एक उपाख्यान आता है । एक महान शूरवीर प्रतापी राजा है । बडा बुद्धिमान है । एक दिन बैठ२ इस के मन से आया कि इस जगत में जन्म तो मेरा भी साधारण प्राणियों की तरह ही हुआ है । पर इस समय मैं राजा हूं । मेरे पास महान ऐश्वर्य्य है । यह मेरे पूर्व जन्म के किसी महान पुण्य कर्म का फल है । उस के मन में यह जानने की इच्छ हुई कि वह कौन से पुण्य का फल है । तुम भी अपने पूर्व जन्म के पुण्य को जानो कि ऐसा कौन सा महान पुण्य है ? राजा ने पुरस्कार की घोषणा करवा दी कि जो मुझे मेरे पूर्व जन्म के बारे में बताएगा उसे इतने लाख सोने की मुहरें दूंगा । विद्वान

सोचने लगे कि राजा तो प्रमाण मागेंगा। यदि उसे यूं हीं कुछ वता दिया तो पुरस्कार के वदले जेल में ही डाल देगा। इस लिए डर के मारे कोई सामने नहीं आया। राजा ने समझा कि मेरे पूर्व जन्म के पुण्य को वताने वाला कोई नहीं है। ऐसे ही बहुत दिन बीत गते। उसी राज्य में एक दूढा ब्राह्मण था। उसने सोचा कि यदि भगवती देवी का अनुष्ठान किया जाय। सच्ची आराधना की जाए तो वह जो भी वताएगी ठीक ही होगा ? परन्तु इस में भी शंका हुआ कि यदि पुरस्कार देने के समय राजा ने कह दिया कि यह तो भगवती की कृपा हुई है इस मे तुम्हारा क्या है ? यह इनाम तुम्हारा नहीं। इस लिए पहले चल कर राजा से ही पूछ लिया जाय। वह राजा के पास गया और बोला कि मैं मां भगवती की आराधना करुंगा और वह फिर आप के पूर्व जन्म का वृतान्त बत्ताएगी तो यह इनाम मुझे मिलेगा कि नही। राजा ने कहा कि हमे तो अपने पूर्व जन्म का वृतान्त चाहिए। ब्राह्मण वोला जंगल मे जो भगवती का मन्दिर है उस में अनशन कर के भगवती की आराधना करुंगा औंर जब तक मां प्रसन्न नहीं होगी। आप के पूर्व जन्म का वृतान्त नहीं वताएगी तव तक कुछ नही खाऊंगा। ऐसा दृढ निश्चय कर के दूसरे दिन सवेरे ही जाकर मां के सामने बैठ गया। सातवें दिन देवी प्रगट हुई और बोली वरं ब्रूहि। ब्राह्मण बोला मां तुम तो जानती ही हो कि मैं राजा के पूर्व जन्म का वृतान्त जानना चहता हूं भगवती बोली कि राजा के पास जाकर कहो कि राजधानी के उत्तर में दो मिल की दूरी पर एक गोशाला हैं उस मे एक अन्धा अहीर रहता है वह तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त वताएगा। ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। उसे सूत्र मिल गया घर आकर पहले तो भोजन किया फिर राजा के पास गया और उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा अहीर का पता लगाने चल पडा। जब बहं अहीर के पास पहूंचा और उस मे पूछा तो अहीर रोने लगा और कहा यहां से दो मील और आगे एक सरोवर है उस के किनारे एक पिशाचिनी एक वट वृक्ष के नीचे रहती है वह वताएगी। राजा वहां गया। देखा कि पिशाचिनी वडी सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर के वहां बैठी है। राजा ने पूछा तुम मेरे पूर्व जन्म का वृतान्त जानती हो ? वह स्त्री भी जोर २ से रोने लगीं और बोली मंत्री की एक आठ वर्ष की कन्या है वह बताएगी। राजा मंत्री के

घर पहुंचे और लड़की से पूछना चाहा। मंत्री ने कहा महाराज यह तो आप की ही पुत्री है क्यों नहीं बताएगी। राजा नें कन्या को बुला कर बड़े प्यार से पूछा मैंने सुना है कि तुम मेंरे पूर्व जन्म का इतिहास जानती हो। कन्या कहने लगी राजन् सुनो पूर्व काल मे एक तपस्वी ब्राह्मण उस की पत्नी, बेटा व वहू चार प्राणी एक झोंपडी मे रहतें थे। वह ब्राह्मण बड़ा गरीब था। एक बार बहुत वर्षा हुई। चार दिन लगातार होती रही रुकी ही नही। ब्राह्मण कुछ मांगने कहीं नहीं जा सका। चार दिन तक चारों प्राणी भूखे पड़े रहे। चौथे दिन जब पानी रुका तो बूढा ब्राह्मण गया और कुछ चावल मांग कर लाया। पर वह इतना कम था कि उस का भात दो ही प्राणी खा सकते थे। बुढिना ने भात बनाया और अपना और बेटे का हिस्सा निकाल कर पहले ही रख लिया। शेष बचा हुआ दो थाली लगा दी। यह संसार है जिधर राग अधिक होता है उधर ही जीव ध्यान देता है। ध्यान कम राग कम। यही पाप का कारण है। बुड्ढा बडा दयालु था। बाहर देखा एक और बूढा ब्राह्मण भूखा खडा है। उसे अन्दर ले आया और एक थाली उस के सामने रख दी। वह थाली को साफ कर गया पर उस की आंखे अभी भूखीं थी। तृप्ति नहीं हुई थी। बहु ने कहा पिता जी यह दूसरी थाली भी इसे दे दिजिए। अतिथि भूखा नही रहना चाहिए। हे राजन वह ब्राह्मण तुम हो तुम ने जो पुण्य किया था उसी का फल है। अंहकार से मन शुद्ध नहीं होता छोटा तो होता है पर विशाल नहीं हो सकता। हे राजन् सुन्दर कर्म का फल महान होता है। इस दृष्टान्त से आत्मा के अमरत्व का बोध होता है शरीर तो बदल जाता है पर आत्मा एक ही होने से पूर्व जन्म का अभास मिला। वह अन्धा अहीर तुम्हारा पूर्व जन्म का बेटा है और वह पिशाचिनी तुम्हारे पूर्व जन्म की पत्नी। मां पुत्र के मोह में जो नहीं करना चाहिए था वह करती रही। पुत्र जानते हुए भी अन्धा बना रहा। मां को रोकना चाहिए था। ज्ञान चक्षु मां को देना चाहिए था। विवेक देना चाहिए था। पर नहीं दिया। इस लिए इस जन्म मे अन्धा बना। घर वाली पिशाचिनि बनी हुई है। जो अपने प्राण का ध्यान सब से पहले को दूसरे का प्राण का ध्यान नहीं करे वह पिशाच। अपने प्राणों का ध्यान तो पशु पक्षी कीट पतङ्ग सभी कर रहे हैं। यदि तुम ने भी यही किया

तो क्या किया जीवन में । योग वाशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ राम जी को समझाते हुए कहते है हे राम "येन केन प्रकारेण संतोषं जनयेत्" हे राम जैसे भी बने दूसरे को सन्तुष्ट करो । किसी को असंतोष मत दो । ईश्वर को पूजा का तात्पर्य है कि हृदय में विशालता आए । पूजा तो की पर यदि संकीर्णता बनी रही । दया नहीं आई । विशालता नही आई तो ऐसी पूजा किस काम की ? हे राजन् दया का भी महान फल होता हैं । राजा ने पूछा बेटी मेरी पुत्रवधु कौन है ? कन्या बोली मैं ही आप की पूर्व जन्म की पुत्रवधु हूं । राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला बेटी तुम इस जन्म मे भी मेरी पुत्रवधू बनेगी ।

इस दृष्टान्त से यह मालुम हुआ कि "यदा वै सुखंलभते अथ करोति शुभ कर्म से सुख और अशुभ कर्म से दुख मिलता है । सुन्दर विचार करोगे सुकर्म करोगे तो सुख प्राप्त होगा । श्रुति कहती है ', हिरण्मये परे कोशे **विरजं ब्रह्म निष्कलं । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः** वह सुख कहां हैं ? श्रुति निर्देश करती है कि "हिरण्मये परे कोशे, विज्ञानमय कोष में जो विरज रजोगुण रहित, ब्रह्म है वह तुम्हारी आत्मा है वही सुख रूप है ज्योति स्वभाव है । इस लिए मुमुक्षु बडी श्रद्धा से ब्रह्माकार वृत्ति को जाग्रत करो । ब्रह्म रजोगुण रहित है । उस के सामने रजोगुणी वृत्ति तभी आती है जब जीवभाव आता है । जीवभाव से परे उठ गया फिर रजोगुण नहीं रहता दब जाता है । सत्त्व गुण बन्धन का कारण नहीं । इस से ज्ञान की वृद्धि होती है । ज्ञान तुम्हारे चित्त को प्रसन्न करेगा शान्त करेगा ।

यह मत समझो कि हम बढिया भोजन करते हैं इस लिए जी रहे हैं । यह शरीर जब तक है चेतन के आश्रय में ही जी रहा है । जहां चेतन ने इस को छोडा फिर देखो कोई इस के पास नहीं बैठेगा । यह कितनी बडी शक्ति है जिस ने इतने बड़े २ शरीरों को धारण किआ हुआ है । यह निष्कल है निरवयव है । निराकार है साकार नहीं । साकार पदार्थ अवयवों के समुदाय से बना हुआ होगा । निराकार में कोई अवयव नहीं । कहोगे निराकार काम कैसे करता है । एक रोगी ने कहा पेट में पीडा है । डाक्टर ने गोली दी । रोगी तर्कशील था । पूछता है इस में पीडा दूर करने की

शक्ति कहाँ है ? दीखती तो है नहीं। तो क्या शक्ति है नहीं ? उस पीडा को दूर करने की शक्ति निराकार रूप से वहां बैठी है। विश्वास से गोली खाओ पीडा दूर हो जाएगी। एक गोली में वह शक्ति है। आंख से नहीं दीखेगी। हाथ से पकड में नही आएगी पर बुद्धि में समझ में आती है कि इस में वह महान शक्ति है। ऐसे ही तुम्हारी सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा है। कैसे पकडा हुआ है। इसने इस शरीर को।

मुमुक्षु ऐसी भावना करे। माण्डूक्य श्रुति का आशय है कि यह आत्मा अदृश्य है दृष्ट नहीं। यह सबको देख रहा है। इस को कौन देखेगा ? अव्यवहार्य है। व्यवहार तो साकार से होता है। व्यवहार इन्द्रियों से होता है। यह आत्मा इन्द्रियों की पकड में नहीं इस लिए यह अव्यवहार्य है। "अग्राह्यम्" इस को तुम किसी इन्द्रिय से ग्रहण भी नहीं कर सकते। जिस की कृपा से सब इन्द्रियां काम कर रही हैं। आंख देखती हैं। कान सुनते हैं। वाणी बोलती है। कहोगे कि इन्द्रियां अपने आप करती हैं। पर चेतन के न रहने पर यह सब कार्य क्यों नहीं करती। उस समय तुम्हारी वाणी क्यों नहीं बोलती ? "अलक्षणं" इस आत्मा का कोई लक्षण भी नहीं। लक्षण जो भी होगा इन्द्रियों का विषय होगा। जैसे लम्बे आदमी को बुलाओ। आदमी का लक्षण रहा लम्बाई। इन्द्रियों का लक्षण है। 'अचिन्त्यं' इस आत्मा का किसी रूप किसी आकार में चिंतन भी नहीं कर सकते। आकार तो शरीर का है। कुछ खाया पिया उसी से शरीर का आकार बना गया। दूसरे वर्ष बदल जाएगा। यह तुम्हारा स्वरूप नहीं यह तुम्हारा आकार नहीं। देखते २ बुढ्ढे हो गये। बताओ बुढ्ढे तुम हुए कि तुम्हारा पडोसी हुआ। पडोसी का आकार है। तुम्हारे पास में पडा है तुम इसे खाना दे देते हो। इस लिए पडा है। किन्तु जब तुम चले जाओगे तो सोचो इस पडोसी की क्या दशा होगी। इसे कोई नहीं पूछेगा। इस लिए कहते हैं कि एक मात्र अहं २ यह चेतन मात्र आत्मा ही सार है। "अनिर्देश्य" यहाँ प्रपञ्चका उपशम हो गया। प्रपञ्च का शमन हो गया। "सार" "प्रमाणं" इस आत्मा में यदि कुछ सार है कोई प्रमाण है तो यह आत्म प्रत्यय स्वयं ही है और कोई इस का प्रमाण नहीं। श्रुति कहती है अब यह प्रपञ्च रहित सुख

स्वरूप शिव है। कल्याण स्वरूप है। अद्वैत है। पांच भूतों का लम्बा चौडा विस्तार जो है उस का उपशम हो गया है। जब यह मनुष्य इस को जानने की इच्छा करेगा तभी इसे प्राप्त करेगा। इच्छा कब करेगा ? जब इसे इस में सुख मिलेगा। वह सुख कैसा है ? जो सर्व देश में है सर्व काल में है। अबाधित सुख है। किसी एक आकार में बंधा हुआ सुख तुम्हारा सुख नहीं। तुम्हारा सुख अखंड है। ब्रह्म सुख है। इस लिए महर्षि कहते हैं हे नारद यह तुम्हारी अन्तरात्मा सुख स्वरूप है। तुम उस असली सुख की जिज्ञासा करो। तुम्हें वह सुख मिलेगा। नारद ने कहा भगवान मैं उस सुख स्वरूप आत्मा की जिज्ञासा करता हूं। आप उस का निर्देश कीजिए। महर्षि बोले आज तो तुम ध्यान करो कल उस सुख स्वरूप आत्मा का निर्देश करेंगे।

हरि: ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५३

११।६।८५

"ॐ यो वै भूमा तत्सुखं" "यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ" यत्रान्यत्पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद्विजानाति तदल्पम्"

(छान्दो. ७।२४।१)

कल इस बातका निश्चय किया था कि बुद्धिमान मनुष्य प्राणी कर्म कब करता है, जब इस को सुख मिलता है। सुख नहीं मिलेगा तो यह मनुष्य कुछ नहीं करेगा। "यदा वै सुखं लभते" जब इस जीवन में सुख मिलता है तब कर्म में प्रवृति होती है। सुख की इच्छा से ही सब कुछ हो रहा है।

इस लिए भगवान सनत्कुमार ने नारद से कहा कि तुम उस सुख की इच्छा करो। कैसा है यह सुख ? यह सुख महान सुख है इस लिए उस सुख की महत्ता

को स्पष्ट करते हैं कि यह सुख वैसा नहीं है जैसा हम इस को समझते हैं। इन्द्रियों के द्वारा हम जिस सुख को पकड़ना चाहते हैं वह सुख नहीं दुःख ही है। बंधा हुआ अल्प होने से दुःखरूप है। सुख तो भूमा रूप होना चाहिए। भूमा माने व्यापक होना चाहिए। तो कहोगे कि व्यापक सुख कैसा होता है? इस को अपने जीवन में समझो। अपने को किस प्रकार का सुख चाहिए? प्रकार शब्द का अर्थ होता है विशेषण। सुख जीवन रूप ही है, असली तत्त्व है। प्रकार उस में विशेषण लग जाता है, जैसे काला, पीला, हरा, नीला यह सब विशेषण हैं। लाल रूप का सुख, काले रूप का सुख तो माने सुख तो सब जगह है। विशेषण युक्त जो वस्तु होगी वह अल्प होगी, परिमित होगी। किसी इन्द्रिय प्रकार का जो सुख होगा वह परिमित होगा, वह दुःख रूप ही होगा, वह तृष्णा को बढ़ाने वाला होगा। "अल्पस्य तृष्णावर्धकत्वम्" अल्प जो होता है वह तृष्णा को बढ़ाने वाला होता है। किसी रूप माने किसी आकार का जो सुख होगा। आकार अल्प होने से वह अल्प होगा, उस में समय की विशेषता होगी, समय और आकार अल्प होने से वह सुख अल्प होगी। हम को किसी एक समय में सुख नहीं चाहिए। सर्व समय में सुख चाहिए, सर्व देश में सुख चाहिए, सर्व रूप में सुख चाहिए। ऐसा जो सुख होगा वह भूमा सुख होगा, देश, काल और वस्तु की सीमा से परे होगा।

भूमा सुख अखंड सुख होगा। किसी वस्तु का जो खण्ड भाव होता है वह गुण, क्रिया, जाति और सम्बन्ध से होता है। इन चार से वस्तु खण्ड २ में बंट जाती है, जैसे यह यह फूल है इस में सुन्दर लाल रूप है, जन्म भी है. क्रिया भी हो रही है कल यह कली के रूप में था, खिल रहा है और इस का सम्बन्ध भी है। तो गुण जाति क्रिया सम्बन्ध यह चार जिस में होंगे वह सखंड पदार्थ होगा सखंड पदार्थ यहाँ है तो वहां नहीं, यह अल्प पदार्थ होगा। तुम्हारा यह सुख जो है यह किसी गुण से बंधा हुआ नहीं, किसी क्रिया से बंधा हुआ नहीं, किसी आकार से बंधा हुआ नहीं किसी से बंधा हुआ नहीं। यह गुण से परे है, क्रिया से परे है, आकार सम्बन्ध से परे है यह सम्बन्ध से परे है। जिस सुख का जन्म होगा वह दुःखरूप ही होगा। जैसे लोक में हम जो सुख लेते हैं, इन्द्रियों से जन्मा और दूसरे ही क्षण गया। कहते हैं फूंस का क्या तापना और नादान की

क्या दोस्ती। जाडे में ठंडी लग रही है, लकडियां हैं नहीं, दूसरी कोई चीज है नहीं पास पडा है घास, तो डाल दिया और दिया सिलाई लगादी। गर्मी तो पहुंची पर कितनी देर तापोगे ? दूसरे ही क्षण ठंडा। मित्र भी हो तो समझ दार होना चाहिए। बच्चा या बच्चे की तरह जो मूर्ख है, उसकी क्या दोस्ती !

इस प्रकार जो तुम्हारा सुख होगा वह भूमारूप सुख होना चाहिए। गुण, क्रिया, जाति, सम्बन्ध से परे जो सुख होगा वो भूमा सुख होगा।. अल्प सुख जो इन्द्रियों के सम्बन्ध से होगा। "**एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।**" (कठोपनिषद् अ. १।३।१२) श्रुति कहती है यह आत्मा सम्पूर्ण भूतों में गूढ है। हम लोग देखने में समझते है कि हम बडे चतुर है. पर सोचो तो सही, अपनी आंख से ही बोलो कि हे नैना देवी जरा अपना मुख तो देख जिस में तू लगी है तो कहेगी ना मै उसको नहीं देख सकती। तो शीशा देना पडेगा उसको। शिशे में भी क्या देखा ? असली मुख देखा कि नकली ? तो नकली ही देखा। पर उस नकली से ही संतोष ले रहे हैं कि यह हमारा मुख है। है कुछ भी नहीं केवल छाया है मुख की, किन्तु उसको असली मान लेते हैं। ऐसे ही इन इन्द्रियों के द्वारा जो सुख लोगे, वह असली नहीं होगा। इन्द्रियों के द्वारा मिलने वाला सुख तो आभास मात्र ही होगा। जैसे शीशे में जो अपना मुंह देखा वो आभास मात्र ही है। असली मुंह पश्चिम की ओर है तो शीशे वाला मुंह पूर्व की ओर होगा। इस लिए यह आभास मात्र दर्शन असली नही, मिथ्या दर्शन होगा।

मंत्र कहता है यह आत्मा सम्पूर्ण भूतों में होते हुए भी दीखता नहीं। "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं हम सब के प्रकाश में नहीं आते। मेरा स्वरूप योगमाया से ढका हुआ है। "नाहं प्रकाशः सर्वस्य" हम सब के प्रकाश में नहीं आते। किस के प्रकाश में आते हैं ? जो मुमुक्षु श्रद्धाशील होगा, श्रद्धा से तत्त्व का विचार करेगा। जैसे अपने जीवन में समझो। अहं अहं तो करते हो, पर यह अहं है क्या ? देह इन्द्रियों से बंधा हुआ जो सम्बन्ध है यही योगमाया है। देह इन्द्रियों को तो पकड लेते हैं देह इन्द्रियों के सम्बन्ध सें ही हम जीवन भर घूमते रहते हैं, असली आत्मा से कभी

मिलते ही नहीं। पति पत्नी जीवन भर साथ २ रहते हुए भी आत्मा के असली स्वरूप को पहचानते ही नहीं बस शरीर के सम्वन्ध से ही चले जारहे हैं। इन देहेन्द्रियों के सम्बन्ध से, इन के आकार से ही आत्मा का बोध हो रहा है किन्तु देहेन्द्रियों से परे आत्मा कहाँ देखने में आता है ? इसी लिए यह जीव अज्ञान के घेरे में बंधा हुआ है। श्रुति शास्त्र और गुरू के मुख से इस सत्य की खोजकरो।

गीता में भगवान कहते है **"संमोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।"** (गीता अ. ९।२९) हे अर्जुन सम्पूर्ण भूतों में मैं सम हुं। तो सोचो सम किस रूप में होगा ? अपने रूप से होगा अथवा किसी आकार से होगा ? जैसे मान लो यह आकाश है। यह सम्पूर्ण भूतों में सम है। सम्पूर्ण भूत कौन से ? पृथ्वी जल तेज, वायु में यह आकाश सम है। किस रूप में सम है ? तो अपने रूप में सम है किसी वस्तु के सम्बन्ध से नहीं। अपने स्व स्वरूप में आकाश व्यापक भाव है। किसी वस्तु के सम्बन्ध से होगा, जैसे मान लो घट के सम्बन्ध से घटाकाश, मठ के सम्बन्ध से मठाकाश। इन रूपों के सम्बन्ध से आकाश तो अल्प हो जाएगा। इसी तरह यह सत्चित् आनन्द स्वरूप आत्मा, यह भूमा रूप से, व्यापक रूप से ही सब में सम है। किन्तु कहीं चेतन का मान होता है और कही जड का। तो कहोगे ऐसा क्यो हुआ ? तो कहना पडेगा यह जो महान ब्रह्म है इस महान ब्रह्म मे जड चेतन का भेद नहीं है। यह जड चेतन का भेद तुम्हारी बुद्धि में है पर बुद्धि से परे यह चेतन एक रस है। जहां तक बुद्धि के सम्पर्क में है वही तक यह जड चेतन का भेद है। उस में चेतन नाम रूप से वाधित हो कर भास रहा है। बुद्धि से परे जो एक रस है वो भूमा है वहां जड चेतन भेद नहीं। जड पदार्थो के सम्बन्ध से जडता नजर आई, किन्तु यह बुद्धि अति सूक्ष्म है, अति निर्मल है, इस कें सम्बन्ध से चेतनता नजर आई। जहां चेतनता का भान हुआ वहीं जीव भाव आगया। मोक्ष का प्रयत्न यही से होगा।

सोचो यह कितना है कि इस में चेतनता की प्रसिद्धि हो गई। जैसे यह शरीर इन पांच भूतों से बना है। इस गुलाब के फूल को देखो यह भी पांच भूतों से ही बना है परन्तु यह तुम्हारे शरीर से कितना पीछे है। शरीर रूप में आने

के लिए इस फूल को कितनी दौड लगानी पडेगी ? कोई पूछे तो क्या कहोगे ? तो कहना पडेगा कि इस फूल के रूप में यह भोजन हो गया। इस को हम खा सकते हैं किन्तु इस शरीर के आकार में आने के लिए इस को कितना दौडना पडेगा। अन्दर जाके refined होना पडेगा। अन्दर जाके यह रस रूप हो गया, रस को refine किया तो रक्त, रक्त को refine किया तो मांस, मांस से मेद, अस्थि, मज्जा और तब शुक्र के रूप में पहुचेगा। अब यह शरीर की शक्ल में आएगा। जब यह शुक्र के रूप में पहुंचेगा तब शरीर के रूप में आएगा। यह तुम्हारा पेट क्या है ? इस को कम मत समझो कितनी बडी refinary है यह ? आज का बुद्धिमान भले ही कहे हम बहुत आगे बढ गये हैं पर यदि इस को मांस खाने की इच्छा होगी तो किसी जीवित प्राणी को मार डालेगा। जरा सी खून की जरूरत पडे तो खट कहेगा, भाई जरा खून देना। भगवान की factory में देखो तो कैसे रक्त तैयार हो रहा है, मांस तैयार हो रहा है। फिर कहेंगे हम बडे वैज्ञानिक हैं। तो इस गुलाब के फूल अथवा किसी भी भोज्य पदार्थ को चेतन की शक्ल तक आने के लिए इतना refined होना पडेगा। जब तक यह भोजन के रूप में है तब तक इस में चेतनता नहीं भासेगी। सूक्ष्म बुद्धि में आने पर ही चेतन का आभास आया। आभास युक्त बुद्धि में चेतन की कल्पना में ही जीव भाव है। हम इसी को पकड कर रह गये और बुद्धि तक ही जी कर चले गये। इस से आगे कुछ देखा ही नहीं। यह शरीर तो बुर्का समझो। बुर्के को ओढा और इसी में रह गये, इसी में जी कर चले गये। यह जाना ही नहीं कि इस से आगे भी कोई तत्त्व है।

उपनिषद् विद्या इस तत्त्व की खोज करती है कि यह भूमा सुख है क्या ? यह सत्य क्या है ? यह किसी सीमा में बंधा हुआ नहीं है। जो सीमा में बंधा हुआ होगा वह अल्प होगा। इस लिए वह सुख असली सुख नहीं है यो किसी सीमा में बंधा हुआ है। जो किसी सीमा में बंधा हुआ नहीं, "यो वै भूमा तत्सुखं, न अल्पे सुखमस्ति" वो भूमा ही सुख है। अल्प में तो व्यर्थ की चिन्ता, व्यर्थ की तृष्णा नाना प्रकार के विकार ही बढेंगे। गीता में भगवान कहते है "ये भजन्ति तु मां भक्त्या" भजन्ति शब्द का अर्थ हैं 'ध्यायन्ति', तत्त्व ज्ञान के द्वारा जो ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा मेरा ध्यान करते हैं, मैं उन में हूं और वे

मुझ में है। "मयि ते तेषु चाप्यहम्।" यह ब्रह्माकारवृत्ति ही आवरण भङ्ग कर सकती है। ज्ञानी भक्त और मुझ में भेद नहीं। एक शीशे में अपना मुहं देखने के लिए कितना ध्यान करना पडता है कि इस में कोई गडबड तो नहीं, तो सोचो कि उस परमात्मा का बुद्धि में ध्यान जब करोगे तो श्रम तो करना होगा। भगवान कहते हैं ज्ञानी भक्त और मैं, हम दोनों एक हैं। यहाँ भक्ति से तात्पर्य है 'ध्यायन्ति'। भेद तब तक रहता है जब तक बीच में अविद्या बैठी है। जब तक भेद रहता है तब तक अशान्ति रहेगी, चिन्ता रहेगी, व्याकुलता रहेगी, नाना प्रकार के संशय रहेंगे।

परीक्षित का इतिहास तो आप सब को मालूम है। राजर्षि परीक्षित को जब यह मालूम पड़ा कि आज से सातवें दिन तक्षक आएगा, मुझे काटेगा और मेरी इह लीला समाप्त हो जाएगी। तो सब कुछ छोड़छाड़ कर गंगा किनारे जाकर बैठ गया। शुकताल के नाम से वह स्थान प्रसिद्ध हैं। बड़े २ ऋषि बडे २ ज्ञानी इस के पास पहुंचे। महान तत्त्वज्ञानी शुकदेव भी पहुंचेजो अपने देह भाव से ऊपर उठे हुए थे। देहभाव से उठे हुए का अर्थ जिन को देहाहंकार नहीं। शुकदेव के वहां पहुंचने पर सब ऋषियों ने उठकर उनका सम्मान किया। जब सब ऋषियों ने मान किया तो परीक्षित को तो करनाही था। शुकदेव जी जब बैठ गये तो परीक्षित ने कहा कि हे भगवन मुझे तो ऐसा अभिशाप मिला है, इस लिए मैं यहाँ बैठा हूं। तब महामुनि शुकदेव कहते हैं हे राजन ! तुम सात दिन तक भगवत तत्त्व का श्रवण करो। श्री मद्भावत का जो हम लोग सप्ताह रखते हैं, यह भागवत कोई पुस्तक नहीं, "**भगवतः इदं भागवतम्**" भगवत् तत्त्व का विचार, भगवत् तत्त्व का गुण भगवत् तत्त्व का कर्म, भगवत् तत्त्व का ज्ञान, जिस में यह सब हैं वह भागवत है। तुम इस का श्रवण करो। इस का श्रवण करोगे तो तुम्हारा भय दूर हो जाएगा। तुम्हें जो यह भय है कि तक्षक आएगा मुझे काटेगा और मैं मर जाऊंगा यह भय दूर हो जाएगा। तो परीक्षित ने बड़ी श्रद्धा से कहा कि भगवन सात दिन आप मुझे भय से मुक्त करने की जिम्मेदारी ले रहे हो इस से अधिक और क्या हो सकता है। समय तो कुल सात दिन ही हैं। आप सुनाईए मैं अवश्य सुनूंगा। महामुनि सुनाने लगे और परीक्षित प्रेम से सुनने लगा। सुनते २ छः दिन बीत गये छठे दिन उस ने सोचा कि

मेरा शोक मेरा दुख, मेरा भय तो वैसा ही है इस में कोई कमी नहीं मालूम पड़ती। बड़े नराश पूर्ण वचनों में बोलने लगा कि हे भगवन आपने तो प्रतिज्ञा की है मुझे मुक्त करने की, किन्तु मेरा मन तो अभी वैसा ही घूम रहा है मेरे शोक मोह में कमी नहीं आई। तो महामुनि बोले हे राजन हम तुम को एक कथा सुनाते हैं तुम ध्यान से सुनो। मन लगाकर सुनों।

इक्ष्वाकुवंश में एक प्रतापी राजा हुआ। एक दिन वह शिकार खेलने गया। कभी २ शिकार जब शिकारी के सामने आता है तो वह शिकारी बेहोश सा हो जाता है, उस को यह सब भूल जाता है कि हम कौन हैं, और हमारा कौन है। यह जो राजा था इस के साथ भी ऐसा ही हुआ। इसे एक हरिण दीखा और यह उस के पीछे ऐसे भागा कि इसके सब साथी, सब अनुचर पीछे रह गये। राजा अकेले भटक गया। हरिण भी बड़ा चतुर था। वह झाड़ियों में इधर उधर छिप गया। राजा ढूंढता रहा। सूर्यास्त हो गया। अब राजा सोचने लगा कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। अब राजा अपने प्राणों की चिन्ता में पड़ गया। थोड़ी दूरी पर उसे एक गरीब आदमी की एक झोंपड़ी दीखी। राजा ने सोचा कि यहाँ ही देखो कोई तो होगा। राजा वहाँ गया तो देखा कि सारा शरीर तो सड़ रहा है उस का, आस पास भी गन्दगी का ढेर लगा हुआ है कहीं खून कहीं मांस पड़ा है, दुर्गन्ध आ रही है। पर करे क्या और कोई जगह तो है नहीं। राजा ने उससे कहा कि मुझे रात भर रहना है। गरीब ने देखा तो समझ गया कि यह कोई तेजस्वी राजा है। उस ने राजा से कहा कि महाराज यह जगह आप के रहने लायक तो है नही, पर इस से अच्छी जगह इस जङ्गल में मिलने वाली भी नहीं है। अच्छा तुम रात को यहाँ सोजाओ पर सवेरा होते ही उठ कर चले जाना। राजा ने कहा सवेरे तो चला ही जाऊंगा। रात को राजा सो गया। सवेरा हो गया। सूर्योदय भी हो गया पर राजा उठा ही नहीं। गरीब ने राजा को जगाया तो राजा बोला थोड़ी देर और सो लेने दो। उस ने सोचा कि राजा थका हुआ है थोड़ा सो लेने दो। इस तरह सोते २ फिर अंधेरा हो गया, रात हो गई। दूसरे दिन सवेरे भी राजा नहीं उठा। सोते सोते फिर अंधेरा हो गया, फिर रात हो गई। सवेरे उस गरीब ने राजा को फिर जगाया तो राजा बिगड़ गया और बोला कि यदि मैं तुम को ही बाहर निकाल दूं तो।

शुकदेव इस तरह सुनाते जा रहे हैं तो परीक्षित ने पूछा ऐसा वो कौन सा मूर्ख राजा है जो इतनी गन्दगी में इस तरह सोया ? महामुनि शुकदेव बोले हे राजन वह और कोई नहीं, जो मेरे सामने बैठा हैं वही है जो इस गन्दी झोपड़ी में सोया है और उठने को तैयार ही नहीं। राजा ने कहा मैं कहाँ गन्दी झोंपड़ी में बैठा हूं ? शुकदेव जी बोले हे राजन यह शरीर कौन सा स्वर्ण महल है ? यह गन्दगी से भरा हुआ है। रक्त, मांस, हड्डी, मल मूत्र और न जाने क्या २ इस में भरा है। इस गन्दगी से भरी झोंपड़ी में अहंकार कर के बैठा है वह कौन है ? वही मूर्ख राजा है जो इस शरीर के अहंकार से ऊपर नहीं उठ रहा। तुम इस देहाहंकार से उपर उठो। "**त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि। न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥** (श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अ. ५/२) तुम अभी तक शरीर के अहंकार मे ही हो कि मैं मर जाउँगा यह पशु बुद्धि का अहंकार है कि मैं मर जाऊँगा। तेरा न पहले जन्म था। न अब तेरा जन्म हुआ है। जन्म तो इस शरीर का ही हुआ था। तक्षक सर्प के काटने से इस शरीर की ही मृत्यु है। यह शरीर पांच भूतों से बना है तूं अपने को देहंकार से अलग कर के दे कि 'तू' कौन है ? **घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाश स्याद्यथा पुरा। एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥** (श्रीमद् भागवत स्कंध १२ अ ५/५) जैसे घड़े को तोड़ दिया तो घटाकाश कहां गया? महाकाश में ही समा गया। इसी प्रकार यह जीव भी ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा ब्रह्मभाव में लीन हो जाता है। ऐसा सुनते २ परीक्षित को समाधि लग गई, वह अपनी सत्चित् आनन्द स्वरूप आत्मा को इस शरीर से अलग देखने लगा, अनुभव करने लगा, अनुभव करने लगा। उसने अपने अहंभाव की,जीवभाव की, उस निराकार ब्रह्म में आहूति कर दी। अब तो तक्षक सर्प आ भी गया, उस ने अपनी जिठा भी निकाल ली। पर परीक्षित को अब उस के काटने का भय नहीं रहा क्यों कि वह अभय पद में पहुंच चुका हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि अहं अहं तो करते चले आ रहे हो पर अपने को इस मनुष्य शरीर से हटाकर तो देखो कि यह अहं क्या है ? स्थूल देह से अपने को स्थूल देह से मान रहे हो वहीं तक मनुष्य भाव दीख रहा है। सूक्ष्म शरीर के अहंकार से इस में जीव भाव है। सूक्ष्म शरीर और अविद्या माने कारण शरीर से अपने को हटाकर देखो तो यह जीव भी नहीं। यह भूमा ब्रह्म

ही है। **अहं ब्रह्म परंधाम ब्रह्माहं परमं पदम्। एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले।।** (श्रीमद् भागवत स्कन्ध १२ अ ५।११) अपनी अन्तरात्मा में देखो, मैं ही ब्रह्म हूं "निष्कले" निराकारे, निराकार ब्रह्म में अपने स्वरूप का निश्चय किया। अब वह तक्षक में भी अपने स्वरूप में देखता है इस लिए उस को कोई भय नहीं रहा। ऐसा तत्त्व वोध परीक्षित को हुआ। इस संसार में अगर किसीको सब मे वड़ा भय है तो मृत्यु का ही भय है, यद्यपि अभी तक इस मृत्यु देवता को किसीने आँख से देखा नहीं किन्तु सब उस के भय से भयभीत हो रहे हैं। जो वड़ी सुरक्षा में हैं, वड़े Guns के घेरे में बैठे हैं वह भी भयभीत हैं। जब तक देहंकार है तब तक मृत्यु का भय बनाही रहेगा। ब्रह्म विद्या ही इस भय से मुक्त कर सकती है। सम्पूर्ण भूतों में वह अन्तरात्मा ही समाया हुआ है परन्तु उसे सब देख नहीं सकते क्यों कि "श्रुति कहती है "**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः।** इस तत्त्व को जानने में अति सूक्ष्म बुद्धि ही समर्थ होती है। कोई कहे कि वुद्धि सूक्ष्म कैसे होगी ? स्थूल विषयावगाहिनी वुद्धि इस तत्त्व को पकड़ नहीं सकती। वह शोक मोह में ही काम करती है। यह बुद्धि किसी लकड़ी की बनी हुई नहीं है। यह शुद्ध सत्त्व गुण से बनी है। इसलिए यह स्वभाव से, स्वरूप से शुद्ध है, निर्मल है। परन्तु जिस में राग अधिक जिस में मोह अधिक, जिस में शोक अधिक वह स्थूल बुद्धि और जिस में राग कम, मोह कम, क्रोध कम वह सूक्ष्म बुद्धि। यद्यपि मात्रया तो यह विकार रहें पर मुमुक्षु धीरे २ इन को कम करता है।

गीता में भगवान कहते हैं "**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनि रूच्यते**" जिन की वुद्धि में राग रहीं, भय नहीं वह मुनि हैं मनन शील हैं। शांत बुद्धि वड़ी सुन्दर वुद्धि है ऐस बुद्धि में वह भूमा तत्त्व प्रकाशित होता है। यो वै भूमा तत्सुखं" भूमा निरतिशय है निरतिशय माने न कम न ज्यादा। अति जो कम और ज्यादा होगा वह सातिशय पदार्थ होगा। कम है वहां भी गड़बड़ और ज्यादा है वहां भी गड़वड़। पर यह भूमा निरतिशय है यहां कम भी नहीं अधिक भी नहीं? कम अधिक सापेक्ष पदार्थ में होता है। जैसे यह शरीर है, इस में गर्मी है, पर यह गर्मी कितनी है ? ९८.५ डिग्री जब से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है तब से यह

गर्मी इतनी ही चल रही है। आज तक किसी वैज्ञानिक ने ऐसा नहीं कहा कि यह गर्मी १०० डिग्री होनी चाहिए। जिस परमात्मा ने इस संसार की रचना की है "तेन ईश्वरः ईरितः" कोई उस के कार्य में त्रुटि नहीं निकाल सकता, इसी लिए वह ईश्वर है। वह सर्वज्ञ है। उस का ज्ञान भी सर्वज्ञ है, उस का कर्म भी सर्वज्ञ है, इस लिए उस के कर्म में उस की रचना में कोई कमी नहीं होती। मनुष्य अल्पज्ञ है, इसका ज्ञान भी अल्प है, इस का कर्म भी अल्प है इस लिए इस मनुष्य को कहीं सुख तो कहीं दुख मिलता रहता है। इस लिए इस को खिचड़ी खाने को मिलती है पर सोचो ईश्वर का सुख कैसा है। उस का सुख निरवधि है, असीम है, व्यापक है। उस का स्वरूप ही सुख रूप है। पर जीव का सुख अल्प है सीमा में बंधा हुआ है। इस लिए जीव को सुख को पकड़ने के लिए दस इन्द्रियां दीं परन्तु ईश्वर को इन यन्त्रों की आवश्यकता नहीं। इसलिए कह रहे हैं कि सुख तो भूमा ब्रह्म में ही है। भगवान सनत्कुमार नारद से कहने लगे कि कि तुम भूमा ब्रह्म की जिज्ञासा करो। नारद ने कहा भगवन मैं उसी ब्रह्म की जिज्ञासा कर रहा हूं आप समझाने की कृपा करें।

महर्षि बोले हम क्रम से धीरे २ समझाते जा रहे हैं आगे कल विचार करेंगे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं. ५४

१२।६।८५

"ॐ यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्"

(छान्दो० ७।२४।१)

भगवान सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद, "यो वै भूमा तत्सुखं, न अल्पे सुखमस्ति।" जो व्यापक ब्रह्म है, सत् चित् आनन्द स्वरूप परिपूर्ण जो विश्वात्मा है वह भूमा ब्रह्म है यही सुख रूप है। अल्प में सुख नहीं है। कल इस की

व्याख्या की थी कि थोडा पदार्थ अगर किसी को मिलें तो तृष्णा की वृद्धि होती है। अल्प पदार्थ को पकडते जाओगे तो उस में दुख ही होगा। तृष्णा ही दुख है।

जैसे इस शरीर में ही देखो। इस में जो भी मिलरहा है अल्प ही मिल रहा है। बचपन भी अल्प, कुमारावस्था भी अल्प, युवावस्था भी अल्प और बुढापा तो कहना ही क्या, यद्यपि यह हमें छोडकर नहीं जाएगा हमे ही जाना पडेगा। वो देखो बचपन में भी दु:ख ही था कुमारावस्था में भी दु:ख, युवावस्था में भी दु:ख और बुढापे का तो क्या कहना, वृद्धावस्था तो रोगों की महारानी है, दु:खों की महारानी। महारानी आई तो दास दासियां तो आएंगे ही। इस शरीर की आयु भी अल्प, इस का बल भी थोडा, इसलिए जीव इस से दु:खी है। परन्तु जब यह जीव अपनी आत्मा में प्रवेश कर जाएगा तो सुखी हो जाएगा। तब वह दु:ख से छुट्टी पा जाएगा। जैसे हम लोग रोज निद्रा में जाते है। निद्रा में क्या जाते हैं, इन्द्रियों से उठ कर मन में गये तो स्वप्न में पहुंच गये तो स्थूल दु:ख से छूट गये। और जब सुषुप्ति में पहुंच गये, अविद्या में पहुंच गये, हृदय देश में पहुंच गये, नाम रूप विकार से उठ गये तो सूक्ष्म विकार के दु:ख अर्थात स्वप्न के सुख दुख से भी छूट गये। अब यह सुषुप्ति दो चार घण्टे, जितनी देर भी रहेगी कोई दु:ख नहीं होगा। यद्यपि यहाँ कोई दुख नहीं है, सुषुप्ति में मस्ती से सोया हुआ है किन्तु यहां दुख का कारण जो अविद्या है वह बैठी है। जीव यहाँ अविद्या के घेरे में है। कारण बैठा है इस लिए जाग्रत में आते ही फिर वही चक्र शुरू हो जाता है।

पर जब ब्रह्माहमस्मि वाक्य के द्वारा, ब्रह्माकार वृत्ति से उठ कर जाओगे, अपने स्वस्वरूप में प्रवेश करोगे तो वहाँ मन के विकार, वृत्तियां समाहित हो जाएंगी फिर "न अन्यत् श्रृणोति न अन्यत् पश्यति" मंत्र कहता है 'न अन्यत् श्रृणोति" दुख कहाँ पर है ? जहाँ अन्यत् श्रृणोति जहाँ भेददृष्टि है। अपने से भिन्न सुनता देखता है। अपने से भिन्न सुनता है "अन्योसौ अन्योहमस्मि इति न स वेद पशुरेव स" इस को भेद दृष्टि कहते हैं। कहते हैं यह पशु है, उस को अन्य समझा अपने को अन्य कर दिया। भेद दृष्टि में ही दु:ख है, भय

है, किन्तु जहाँ उसने यह समझ लिया कि "मैं आत्मा हूं" मैं ब्रह्म हूं, ब्रह्माकार वृत्ति में जहाँ चेतन मात्र में स्थिति होगई। वहां न अन्य कुछ देखने को है न अन्य कुछ समझने को है, वहां नाम रूप है कुछ नहीं है। यह भूमा ब्रह्म की स्थिति है, ब्राह्मी स्थिति है। इस स्थिति में भय नहीं।

जैसे जाग्रत अवस्था में आंख देखती है, कान सुनता है किन्तु गाढ निद्रा में चले जाओ तो वहां इन्द्रियों का कोई व्यापार नहीं रहता। सुषुप्ति में सब इन्द्रियों की वृति बन्द हो जाती है, निवृत हो जाती है किन्तु ज्यों ही जाग्रत में आए कि इन्द्रियों के सारे धन्धे फिर शुरू हो जाते हैं। जैसे सुषुप्ति में जाने पर इन्द्रिय व्यापार नहीं रहता इसी प्रकार ब्राह्मी स्थिति में बाह्य जगत का बाध हो जाता है। ऐसा निर्विशेष बोध होगा जिस में कोई भेद नहीं होगा केवल सन्मात्र चिन्मात्र आनन्दमात्र बोध। "ब्रह्मैवाहमस्मि" न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्, हृदा मनीषामनसाभिक्लृप्तोय एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति। कठ श्रुति इस के सदृश कोई है ही नहीं, नेत्र से इस को कोई देख नहीं सकता। आंख जिस की सत्ता से देखती है उस को यह आंख कैसे देख सकती है? मंत्र कहता है "हृदा मनीषा" मनीषा माने मननशील जो बुद्धि है। हृदय के द्वारा मुमुक्षु जब इस तत्त्व का निश्चय करता है और मन बुद्धि के द्वारा इस में प्रवेश करता है तो नह अमृतत्त्व में पहुंच जाता है। तैत्तिरीय श्रुति है **"यदा ह्येवैष एतस्मिन्न दृश्ये ऽनात्म्ये ऽनिरुक्ते ऽनिलयने ऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सो ऽभयं गतो भवति।"** (तैत्तिरीयोपनिषद् २।७)

मंत्र कहता है "यदा ह्येवैष एतस्मिन्" यह जो आत्मा है। जिस को यहाँ भूमा कह रहे हैं, मंत्र इस को अदृश्य कह रहा है। दृश्य नहीं, किसी इन्द्रिय की पकड में नहीं। जो इन्द्रिय की पकड में नहीं। जो इन्द्रिय की पकड में होगा वह विकार होगा, जो विकारी होगा वह दृश्य होगा वह विनाशी होगा जैसे अपने शरीर में ही समझो। हमारा यह शरीर दृश्य है, विकारी है, प्रति क्षण परिणामी है। इस शरीर को तो धर्मशाला ही समझो। धर्मशाला में बैठो तो झाडू बुहारी करना पडता है इसी प्रकार इस शरीर की भी सफाई करते रहो तो ठीक। दो दिन नहाओ नहीं तो देखो क्या कस्तूरा मृग बन जाओगे। इस में

नाना प्रकार के रोग घुस कर इस शरीर को खा जाते हैं, इस की सुन्दरता को खा जाते हैं। इस की आयु को खा जाते हैं। जैसे हम लोग पूरी परौंठा खा जाते हैं। इस लिए मंत्र कहता है यह शरीर 'अनात्म्य' है। आत्म्य और अनात्म्य। आत्म्य आत्मा सम्बन्धी, आत्मा के सम्बन्ध से जो जीए, आत्मा के सम्बन्धी से जो चले, आत्मा के सम्बन्ध से जो खाए पीए वह आत्मा सम्बन्धी। जब तक यह शरीर आत्मा के सम्बन्ध में है तब तक यह चलेगा, खाएगा, बढेगा। पर ज्यों ही आत्मा के करंट से अलग हुआ आत्मा से अलग होते ही मुर्दा हो जाएगा। मुर्दा तो है ही पर जब तक चेतन के करंट में है, यह माया शक्ति इस को मुर्दा देखने नहीं देती। यह माया बडी विचित्र है। जो सत् न होते हुए भी सत् दिखा दे। अमृत न होते हुए भी अमृत दिखादे।

अशुचि में शुचि बुद्धि, अनित्य में नित्य बुद्धि, दुख में सुख बुद्धि उदाहरण के लिए अपने शरीर को ही पकडो। यह नित्य अपना रूप बदलता जा रहा है। जो नित्य बदल रहा है वह नित्य तो है नहीं पर नित्य न होते हुए भी नित्य आत्मा के समीप में, पडोस में रहता है. इस लिए नित्य जैसा दीखता है। जैसे किसी धनी के पडोस में रहने वाला गरीब भी भूखा नहीं रहता। क्यों कि धनी पडोसी दयालु भी है उसको खाने को दे ही देता है। इसी तरह तुम्हारी यह आत्मा है। इस के समीप रहने के कारण यह अनित्य शरीर भी नित्य सा दीखता है। साथ में विशेषण दिया अशुचि। यह आत्मा अति पवित्र है "पवित्राणाम् पवित्रं"। किन्तु यह जो शरीर है इस का जन्म मल मूत्र से ही होता है "इदं शरीरं कृमि जाल संकुलं स्वभाव दुर्गन्धं अशौचं अध्रुवं संजायते मूत्रपुरीषभाजनं, रमन्ति मूढा न रमन्ति पण्डिताः।"

महर्षि कहते हैं "इदं शरीर कृमिजाल संकुलं।" यह शरीर जिस को हम अमृत समझ कर बैठे हैं। इस में करोडों कीडे मरे पडे हैं मोटी भाषा में यह white cells और red cells ही रक्त है। यह क्या है? वो हैं तो शरीर जी रहा है वो मर जाएं तो हरि ॐ तत्सत्। स्वभाव से शरीर दुर्गन्ध युक्त है। यह तो रोज नहाते हो इस लिए ठीक लगता है। कस्तूरा मृग सामने से निकल जाए तो देखो क्या दुर्गन्ध आती है। "अशौचं अध्रुवं" ध्रुव माने सत्य अध्रुव माने

असत्य। नाना प्रकार के रोग इस में विस्तर लगा कर बैठे हैं। एक रोग कमरा खाली करता है तो दूसरा आकर बैठ जाता है। जैसे धर्मशाला में यात्री आते हैं। हम लोग डाक्टर को मनाते रहते हैं। इस प्रकार यह शरीर अनित्य है, अशुचि है, अनात्मा है। जहां यह चेतन के करंट से वाहर हुआ, आत्मा ने इसे छोडा तो देखो इस का क्या रूप है ? दुख में सुख बुद्धि कर बैठे हैं। मनुष्य क्या जीव मात्र इस में सुख बुद्धि कर के बैठा है। अनात्मा में आत्म बुद्धि कर लेना इसी का नाम अविद्या है। नित्य, शुचि, आत्मख्याति, ऐसा बोध कर लेना कि यह शरीर ही सब कुछ है, इस को अविद्या कहते हैं। जो सत्य नहीं उस में सत्य बुद्धि कर लेना। 'अनात्म्य' अनात्म्य वो होगा जो आत्मा नहीं होगा, आत्म सम्बन्धी होगा। तुम्हारी यह अन्तरात्मा आत्मा सम्बन्धी नहीं यह तो स्वयं आत्मा ही हैं, इस लिए 'अनात्म्य' कहा। यह भूमा ब्रह्म है। और यह कैसा है ? सत् चित् आनन्द स्वरूप है। श्रुति कहती है यह 'अनिरूक्त' है। निर्वचन जो भी होगा, निरुक्त किसी सम्बन्ध से, किसी जाति से, किसी गुण और क्रिया से होगा किसी वस्तु का कथन, निर्वचन जाति गुण सम्बन्ध क्रिया से ही होता है जैसे गुलाब का फूल है। इस का नाम है, लाल रंग है वडा सुन्दर है। इस प्रकार इस का वर्णन किया। कथन जो भी होगा साकार पदार्थ का होगा। यह तुम्हारी आत्मा कैसी है, ? इस का कोई आकार नहीं तो इस का किस रूप में वर्णन करेगे। जैसे यह पृथ्वी है जिस के ऊपर हम रहते हैं, समतल भूमि है, हरी भरी भूमि है सुन्दर पहाड हैं। यह भूमि का वर्णन हो गया। कहीं अग्नि दीखी। इस की भी व्याख्या है। यह अग्नि भी मनुष्य का जीवन है। इस अपने शरीर मे ही देखो अग्नि तत्त्व है। यह अग्नि वढ गई या कम हो गई तो गडबड हो जाएगी। वायु है, इस का रूप नहीं पर स्पर्श गुण है। स्पर्श का व्याख्यान कर सकते हो। इस से आगे आकाश है. आकाश व्यापक तत्त्व है। इस का किस रूप में वर्णन करोगे। इस का न रूप है न आकार है। आकाश के विना यद्यपि कोई जी नहीं सकता परन्तु सृष्टि के अन्तर्गत होने से यह आकाश भी विनाशी है। श्रुति कहती है **"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः"** आकाश की सृष्टि पहले हुई। उस से वायु, वायु से अग्नि, जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से यह प्राणी जगत खडा होगया। इस प्रकार जैसे २ सृष्टि आकार

में आई इस का वर्णन होतागया, किन्तु इन सब के पीछे जो अन्तरात्मा है इस का कोई आकार नहीं। अकार नहीं इस लिए उस का कथन भी नहीं, किसी आकार में कथन नहीं। यदि कहीं आकार में कथन भी दिया तो वह "मनोमात्रमिदंद्वैतं" अद्वैत तत्त्व मे द्वैत मनोमात्र है। परमार्थ तत्त्व तो अद्वैत ही है। "**तस्माद्वा एतस्मादात्मनः**" श्रुति उस ब्रह्माण्ड आत्मा और तुम्हारी आत्मा को एक कर के समझा रही है। उस परमात्मा से अथवा इस परमात्मा से आकाश की उत्पत्ति कही।

एक दाने से एक विशाल आम का पेड बन गया। हजारो २ फल लग गये। उस पेड के पत्र पुष्प फल, उस एक दाने का ही सब कुछ है। जो रूप, रस, गन्ध स्वर्श उस एक दाने का है वही इन हजारों में भी है। इस के अन्दर जो अनेकता प्रतीत होती है, वह देखने मात्र की है। माया मात्र है। जैसे हम सब यहाँ बैठे हैं। देखने में यह शरीर जुदा २ हैं, पर इस सारे शरीरों की जो अन्तरात्मा है, उस में क्या भेद है? ऐसा सूक्ष्म बुद्धि मुमुक्षु इस सत्य को पकड लेता है। जिस की बुद्धि सूक्ष्म नहीं होती वह तत्त्व में नहीं पहुंच पाता। कथा कहानी तो सुनते ही रहते हो एक गुरु महाराज को तीन चेले थे। गुरुजी यात्रा पर जानेलगे तो चेलों ने पूछा गुरु जी हमारे लिए क्या आज्ञा है। गुरु जी ने तीनों को एक २ दाना चने का दिया और कहा कि जब तक हम लौट कर आएं इसे सम्भाल कर रखना। चेले श्रद्धाशील तो थे ही। एक ने वह दाना एक बक्से में रख कर सोचा कि यहा सुरक्षित रहेगा। दूसरे ने एक कटोरी मे रख कर दाने को पूजा में रख दिया और कहने लगा कि यहाँ इस की श्रद्धा भक्ति से पूजा भी करता रहूंगा और दाना सुरक्षित भी रखा रहेगा। तीसरे ने सोचा कि क्या किया जाए जिस के द्वारा यह दाना सुरक्षित रहे। उस ने सोच विचार कर उस दाने को एक गमले में बोदिया और बढिया मिट्टी आदि डाल कर उस की देख भाल करने लगा धीरे २ उस में से अंकुर निकला और पौधा बडा हो गया। समय पर उस एक दाने से अनेक दाने उत्पन्न होगये। फिर उन सब को एक क्यारी में डालदिया। खाया भी और एक डेढ किलो बचा भी लिया। उन को खेत में लगा दिया और इस तरह मनों दाने बना लिए। अब

वह land lord बन गया। बारह वर्ष बाद गुरु जी लौट कर आए। पहला चेला गया और बक्सा खोल कर दाना ढूढने लगा, पर दाना तो सड चुका था, मिलता कहां से ? यह काल देवता ऐसा है कि तुम कहीं भी रखों खा जाएगा दूसरा भाग कर पूजा के स्थान पर पहुंचा और देखा कि कटोरी में रखे दाने का भी वही हाल था, वह भी खत्म हो चुका था। तीसरे चेले की तो बोरियां भरी पडी हैं। गुरु जी ने तीसरे चेले की बडी प्रशंसा की कि तुम्हीं सब से अधिक बुद्धिमान हो। तो श्रद्धा तो तीनों तीनों में थी परन्तु अच्छा कौन ? जिस ने विवेक से कात्त लिया। श्रद्धा भी हो पर ज्ञान पूर्वक हो तो वह तुम को अमरत्त्व की ओर खींचेगी। नहीं तो जो श्रद्धा ज्ञान रहित हैं वह तुम्हे क्या देगी ? वह तो जड श्रद्धा है। ऐसी जड श्रद्धा क्या करेगी ? ऐसी स्थिति में श्रद्धाशील जाग्रत मुमुक्षु आत्मा की ओर आगे बढता है।

मंत्र आगे कहता है "**यत्र न अन्यत्पश्यति नान्यच्छ्णोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ**" महर्षि सनत्कुमार कहते हैं भूमा ब्रह्म वह स्थिति है जहाँ न अपने से भिन्न को देखता है, न अपने से भिन्न को सुनता है, न अपने से भिन्न को जानता है। उस स्वरूप चिति में मन चला जाए जहाँ केवल चिन्मात्र स्वरूप है। यह निर्विकल्प ब्रह्माकार वृत्ति है यह मधु प्रतीका भूमि है। पहले समझा कर आए हैं कि मधु. मधुमती ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी जहाँ है वह मधुमती भूमि है। मधु प्रतीका भूमि में त्रिपुटी नहीं रहती। अविद्या समाप्त हो गई। माया समाप्त हो गई।

माया की एक कथा आती है। भगवान कृष्ण का मित्र सुदामा एक दिन कृष्ण से पूछने लगा कि यह माया क्या होती है ? कृष्ण बोले तुम्हें दिखाएं गे किसी दिन। जो है नहीं उस को है कर के दिखा दे, जो सत् नहीं उसे सत् कर के दिखा दे, जो प्यारा नहीं उसे प्यारा कर के दिखा दे, वो माया है। कभी तुम्हें इस का स्वरूप दिखाएं गे। सुदामा बोला अपने अनुभव से कह रहे हो या यों ही सुना रहे हो। कृष्ण ने कहा चलो पहले स्नान कर आएं फिर तुम्हें बताते हैं। दोनों एक बड़ी नदी में स्नान करने गये। सुदामा ने गोता लगाया कृष्ण किनारे पर खड़े हैं। सुदामा क्या देखता है कि सुन्दर नगर है। अपने को क्या

देखा कि एक सुन्दर नवजवान लड़का है। उस नगर की राजकुमारी से उसका विवाह हो गया। धीरे २ पांच सात बच्चे भी हो गये। बस महलों में मौज शौक से रहते २ यह भूल ही गया कि मैं कहाँ से आया था। एक दिन राजकुमारी बीमार हो गई और ऐसी पड़ी कि अन्त में मर ही गई। सुदामा रोने लगा। नगर के लोगों ने कहा कि रोते क्यों हो ? देखो हमारे यहां का नियम है कि पत्नी मर जाती है तो पति को साथ में ही जला देते हैं। यहां सता होने का नियम है सुदामा ने सुना तो और जोर २ से रोना शुरू कर दिया। पहले तो पत्नी के लिए रो रहा था, अब अपने लिए रोने लगा। लोगों के लिए है। परन्तु वे लोग कब मानने वाले थे, उन्हों ने कहा कि जब तुम ने विवाह यहां किया, बच्चे भी हो गये तो यहां की प्रथा तुम्हें माननी ही पड़ेगी। बच्चों ने कहा, हां पिताजी आप को हमारी माता के साथ जाना ही पड़ेगा। अब आप का घर में रहना अमंगल है। तो बेचारा सुदामा क्या बोले ? असहाय हो कर चुप चाप अर्थी के साथ चल पड़ा। लोगों ने उसे अर्थी के साथ बांध दिया। जब नदी के किनारे पहुंचे तो सुदामा बोला, तुम मुझे जला अवश्य देना, पर मेरी एक इच्छा तो पूरी कर दो। मुझे पहले नहाने दो। उस ने सोचा कि ऐसा गोता लगाऊंगा कि ऊपर आऊंगा ही नहीं। जलने की अपेक्षा पानी में डूब कर मरना अच्छा। पानी कम से कम ठण्डा तो होगा। लोगों ने कहा ठीक है नहा लो। सुदामा ने पानी में गोता लगाया और ज्योंही बाहर निकला तो देखा कि कृष्ण वहां खड़े मुस्करा रहे हैं। सुदामा हैरान हो गया कि यह क्या। वे सब कहां गये ? जो मुझे जलाने के लिए यहां लाए थे कृष्ण हंसने लगे और बोले कि यह सब मेरी माया थी। तुम ने कहा था, कि माया क्या है ! और देखना है ? तो हाथ जोड़ने लगा कि बस बाबा हो गया।

तो ऐसी है यह माया भगवती **"अघटित घटना पटीयसी माया"** देखते नहीं हो सोते हो और स्वप्न में कहां पहुंच गये। बम्बई में चौपाटी पर सैर करने लगते हो। जो है नहीं उसे है कर के दिखाती है, जो सत नहीं उसे सत कर के दिखाती है जो नित्य नहीं उसे नित्य कर के दिखाती है। मुमुक्षु ऐसी माया से सावधान रहे, पर सावधान कब रहेगा ? जब अपने मनको इस भूमा ब्रह्म में रखेगा। जब तक शरीर के अहंकार में रहेगा तब तक पशु बुद्धि में ही रहेगा।

घोड़े की तरह घास खाया और सो गया। जब देहाध्यास से ऊपर उठेगा तब इस भूमा ब्रह्म में पहुंचेगा। जो अल्प है वह मर्त्य है **"यदल्पं तन्मर्त्यं"** अल्प जो भी होगा वह विनाशी होगा। उस में तुम ममता तो कर सकते हो पर उस में कुछ है नही। जैसे उदाहरण के लिए समझो तुम्हारा यह शरीर ही है। इस में ममता भले ही करते रहो पर कुछ है नहीं इस में। अच्छा यह बताओ जवानी ने तुम को छोड़ा कि तुम ने जवानी को छोड़ा? पकड़ते तो रहे पर पकड़ में कुछ आया नहीं। ऐसी यह माया की नगरी है।

यहां भगवान सनत्कुमार नारद को समझाते हुए भूमा ब्रह्म का स्वरूप वर्णन करते हैं **"यो वै भूमा तदमृतम्"**। एक मात्र भूमा ही अमृत है। यही सुख रूप है। यही सत् चित् आनन्द चिन्मात्र तुम्हारा स्वरूप है। नारद ने पूछा **"स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति"** वह भूमा किस में प्रतिष्ठित है? महर्षि कहते हैं **"स्वमहिम्नि यदि व न महिम्नीति"** अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित हैं। यहाँ यह मनुष्य अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित हैं। जैसे बड़े कारखाने के मालिक के कहां कोई अतिथि आ गया तो उसे अपने कारखाने दिखाएं गे, अपने बंगले आदि दिखाएं गे। महिमा क्या है? यह विभूति विस्तार है। परन्तु सोचो तो कि यह विभूति कब तक है? बड़े आदमी हैं पर आंख बन्द हो गई तो सब विभूति सब ऐश्वर्य यहीं रह जाता है। परन्तु उस परमात्मा की विभूति सदा रहती है। यह सारा ब्रह्माण्ड ही उस परमात्माका कारखाना है। उस भूमा ब्रह्म में ... ...

न वहां हान है न उपादान है। हान माने त्याग, उपादान माने ग्रहण। भूमा वह स्थिति है जहाँ न ग्रहण है न त्याग है। वहां कोई चिन्ता नहीं, अनात्मा पदार्थ नहीं। ग्रहण त्याग भी भेद स्थिति तक ही है। ऐसा वो भूमा ब्रह्म है। वही अमृत है। वही सुख है५

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५५

१३।६।८४

"ॐ गोश्रश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ।।"

(छान्दो ७।२४।१)

भूमाब्रह्म का विचार चल रहा है । मुमुक्षु माने मोक्षकाम, जो मोक्ष की इच्छा करनेवाला है। जन्म मरण तो श्रनादि काल से चल रहा है । यह एक विलक्षण प्रवाह चल रहा है। इस प्रवाह को कैसे रोकें ? कहां हम विच्छेद करें ? जैसे नदी के प्रवाह को, जो श्रनादि काल से चला श्रा रहा है, श्राज कल देखते नहीं हो लोग इस जल प्रवाह को रोक कर, इन पर डैम बना कर राष्ट्र का जीवन उत्पन्न कर रहे है, राष्ट्र के लिए शक्ति उत्पन्न कर रहें । इसी प्रकार श्रनादि काल से जन्म मरण का जो यह प्रवाह चल रहा है, इस प्रवाह को रोकना, इस पर डेम लगाना, यह श्रात्मा विद्या का काम है। इस प्रवाह को बांध दो । जब यह रुक जाएगा तो शाश्वत सत्य जो जीवन है उस की सिद्धि होगी। वो जीवन मिलेगा, ऐसा दिव्य जीवन मिलेगा जिसके बाद फिर मृत्यु नहीं श्राएगा ।

भगवान सनत्कुमार यहां पर उस भूमाब्रह्म का उपदेश करते हैं उस भूमा ब्रह्म को यह मनुष्य प्राणी जान जाएगा तो मोक्ष की सिद्धि से जाएगा, उसे श्रमृतत्व की सिद्धि हो जाएगी। यह भूमा शब्द ऐसा विलक्षण है जिस को सुन कर ऐसा लगता है कि पता नही यह क्या चीज है। परन्तु शब्द के सुनने से डरने की श्रावश्यकता नहीं। भूमा माने सर्व परिपूर्ण व्यापक जो ब्रह्म है वो भूमा है। जिस के श्रस्तित्व

में सब का अस्तित्व भास रहा है। जैसे अपने शरीर में ही देखो। यह जो अपनी अन्तरात्मा है, इस अस्तित्व में इस शरीर का जीवन चल रहा है। वो चेतन अपने स्वरूप में भूमा है, परन्तु माया के सम्बन्ध से इस मे नानात्व भास रहा है। यह नानात्व इस में कल्पना मात्र है। अपने स्वरूप में यह अखंड है, अद्वैत है। अनन्तानन्त भेद इस चेतन मे भासने लगे। कहीं देव, कहीं यक्ष, कहीं किन्नर, कहीं कहीं मनुष्य और कहीं पशु। इनने स्वरूप भासने पर भी इस चेतन के स्वरूप में कोई भेद आया नहीं। जैसे माला में सैकडो फूल होते हैं। इन भिन्न २ फूलों की रंग बिरंगी माला पहनने वाला एक ही है, उस में कोई भेद नहीं वह अपने स्वरूप में एक ही है। इसी प्रकार की यह माया भगवती उस परमात्मा के प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार माला धारण किए है। यह नाना प्रकार की योनियां मानों भिन्न किस्म के फूल हैं, और वो किसी सूत्र में ओत प्रोत कर दिए हैं। वह सूत्र भूमा ब्रह्म है।

सारे ब्रह्माण्ड में जितनी योनियां तुम को दीख रही हैं वो सब उस एक सत्य में ओत प्रोत है। उस सत्य को गीता में स्पश्ट किया है। **मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥** (गीता अ. ७/७) भगवान कहते हैं धनञ्जय अर्जुन का सम्बोधन किया धनञ्जय, जो धन को जित ले। यहाँ धन से तात्पर्य यह गवर्नमैंट के लम्बे चौडे नोट नहीं, यह ज्ञानरूपी धन है। नोट तो इधर उधर से इकट्ठा करोगे तो कोई न कोई ले भी लेगा। यह धन शोक मोह का हेतु है। इधर से आय, उधर गया। पर यह ज्ञान धन ऐसा है जिसे कोई बांट भी नहीं सकता, और यदि उस को बांटोगे भी तो वह कम नहीं होगा। इस लिए कहते हैं हे अर्जुन यह जो कुछ भी तुम्हें दिखाई दे रहा है मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, मैं ही सत् चित् आनन्द स्वरूप हूं। तुम इस सत्य को समझो। अर्जुन बोला भगवान यह जो दीख रहा है उसे कहते हो कुछ नहीं। यह क्या है? भगवान कहते हैं, जैसे तुम को स्वप्न में सुन्दर २ जंगल दिखाई

देते हैं. बड़े बड़े शहर दीखते हैं उन में हजारो मनुष्य दीखते हैं। यदि दीखंने से ही वस्तु सच्ची हो तो यह दीखने वाला सत्य होना चाहिए तो कहोगे कि सुख दुख भी हो रहा है। स्वप्न में सुख भी होता है दुःख भी होता है। स्वप्न में तुम मस्ती से पड़े हो मान लो स्वप्न में ही किसी बड़े सर्प ने आकर तुम्हें लपेट लिया तो भय होता है कि नही? दुःख होता है कि नहीं? किन्तु यह सब भेद जो स्वप्न में दीख रहे हैं। वे स्वप्न द्रष्टा में ही दीख रहे हैं। उस से भिन्न कुछ भी नहीं, सब कल्पित हैं। और एक युक्ति से इस बात को यों स्पष्ट समझो, जैसे यह शरीर है, इस जाग्रत में ही समझो, जन्म से अभी तक कितने भेद आ चुके हैं इस में। एक दिन यह शरीर जरासा बच्चा था, कुमार हुआ, और बढ़ा तो जवान हो गया और अब वुढ्ढा है। इन सब भेदों से शरीर का नाम और रूप तो बदला, पर तुम्हारे स्वरूप में, चेतन में कोई भेद आया? वही तत्त्व है या इस में कोई परिवर्तन आया? नहीं। किन्तु इस शरीर ने कितने रंग बदले, सारे के सारे रंग आए और गये। सच्चे रंग बदले या झूठे?- वो सब देखने मात्र के थे।

इस लिए बुद्धिमान असली तत्त्व को पकड़ें। मनुष्य जब तक दृष्टि वाहर रखेगा असली सत्य को पकड़ेगा नहीं। इस लिए भगवान ज्ञानी की प्रशंसा करते हैं "**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥** (गीता अ ७।१७) कहते हैं ज्ञानी सदा मुझ से युक्त रहता है। इस का अर्थ है कि ज्ञानी, नाना दीखने वाला जो संसार है, इस नाम रूप जगत को ज्ञानी सच्चा नहीं मानता। अपने अनुभव के लिए ऐसा समझो जैसे हम लोग यहां काठमाडौं में बैठे हैं भगवान सूर्य तो पूरे तेज से आता है। पशुपति नाथ ने बीच २ में बादल का छाता लगा दिया है। यहाँ लाखों २ पेड़ हैं। सब हरे भरे सुन्दर पेड़ है। सब का रूप अलग अलग होते हुए भी रस तो एक ही है। जिस से सब जी रहे है वह जल तत्त्व एक है। रसात्मा एक है। यदि यह रस सूख जाए तो यह पेड़ जीएंगे क्या? हरे भरे रहेंगे क्या? तो कहना पड़ेगा कि जितने भी पेड़ है चाहे वह सुन्दर से सुन्दर हैं और

चाहे रद्दी से रद्दी हो, उस रसात्मा में ही पी रहें हैं। भगवान कहते हैं "रसोऽहमप्सु कौन्तेय" रसों में मैं ही रस रूप हुं । रसात्मा रुप से यह जगत हरा भरा हो रहा है। सब का रंग रूप, फल भिन्न २ होते हुए भी रसात्मा एक ही है। इसी प्रकार समझो नाना, विचित्र रूपों वाला यह जगत, इस में रसों का भी रस, वह विश्वात्मा एक है। वो भूमा है' वो ब्रह्म है। उस में भेद नहीं।

इस लिए कहते हैं "ज्ञानी नित्ययुक्त:" ज्ञानी इस रस से युक्त है। इस से मिला हुवा है। अज्ञानी इन्द्रियों से निल कर नाम रूप से मिला हुवा है। वह शोक मोह को ही इकठ्ठा कर रहा है। इन्द्रियों से मिला हुआ है इस लिए शोक मोह में है। और ज्ञानी शोक मोह से ऊपर है क्यों कि वह असली तत्त्व को देख रहा है। असली तत्त्व अधिष्ठान रूप से सब की अन्तरात्मा है। जिस के लिए मंत्र कह रहा है "यत्र-नान्यत्पश्यति" यत्र माने "यस्मिन् भूम्नि" मन जब भूमा ब्रह्म में पहुंच जाएगा तो भेद दृष्टि नही रहेगी। अल्प कुछ नही देखेगा भूमा से अति-रिक्त कुछ नहीं है एसा मान होगा। इस का अर्थ यह नही समझ लेना कि ज्ञानी होने का अर्थ दिखना बन्द हो जाएगा। आंख ठीक देखेगी, किन्तु देखने वाली जो सत्ता है उस को आंख नहीं देख सकती। कहने का अभि प्राय यह यह है कि ज्ञानी सत्य पर दृष्टि रखता है। रूप नाना होने पर भी वो जो तत्त्व है "Existence is one, life is one" ज्ञानवान उस एक तत्त्व में मन को रख कर जगत के नाना रूपों से खेलता है व्यवहार करता है, इस लिए उस की आंख देखते हुए भी शोक को नहीं पकडती। भय में नहीं जाती। मोह नही करती। अज्ञानी की आंख जुदा २ नाम रूपों को देखती है इस लिए उस में शोक आता है, भय आता है, मोह आता है

श्री मद्भागवत में जड़ भरत की कथा आती है जड़ भरत अपने इस जन्म में, तीसरे जन्म में, जन्म से किसी से वोलता ही नहीं क्यों कि इस से पहले दो जन्मो मे उस ने माया की मार खाई है, और ज्ञानी होने के कारण सूक्ष्मदर्शी बुद्धि में उसे पूर्व जन्म की याद है। तो अब वह काम सब करता है, देखता है, सुनता है' चलता भी है, खाने

को मिलता तो खा लेता है, पर अपनी ओर से किसी से बोलता नही धीरे धीरे बडा होने लगा। पिता ने सोचा कि उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है तो उपनयन संस्कार करवा दिया। यज्ञोपवीत संस्कार किया। गायत्री मंत्र बताया। छ महीना पिता रटवाता रहा, पर इसने शब्द को पकडा ही नहीं। क्यों ? किसी चीज को हम कब पकडते हैं ? जब मन उधर देते हैं। मन जबतक नहीं देंगे वस्तु जहां की तहां ही पडी रहेगी। कुछ समय वाद माता पिता तो स्वर्ग सिधार गये। दूसरे भाई थे नौ। भाईयों ने देखा कि यह भाई तो मूर्ख है। वह नही जानते थे कि यह ज्ञानी है, पुर्व जन्म का महान तपस्वी है। वे उसको मूर्ख ही समझते थे छोकरा तो अच्छा था। इधर उधर की माईयां उससे अपना काम करवा लेती थी। भाईयों ने सोचा कि जब यह दूसरों का काम करता है तो इससे काम तो ले ही सकते हैं। उसको पकड कर खेत मे छोड आए और खेत जोतने को बोल दिया।

अब ज्ञानी यदि मन को कहीं फंसावे तो ज्ञानी ही क्या ? उसका मन तो स्वरूप स्थिति में है भगवान गीता में कहते हैं **"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वास्यामन्तकालेपि ब्रह्मनिर्वाण मृच्छति ।।"** (गीता. अ० २।७२) यदि अन्तकाल में भी, शरीर वियोग काल में भी मन इस में आ जाएगा तो विदेह कैवल्य हो जाएगा, मोक्ष हो जाएगा, ब्रह्म निर्वाण हो जाएगा। जड भरत को घर का याद ही नहीं तो लौट कर क्या आएगा। भाईयों ने जमीन खोदने के लिए कुदाल दे दिया और चौबीस घण्टे में एक बार थोडा खाने को ज्वार बाजेर की मोटी रोटी और जल दे आते हैं। बस यह खा कर वहीं पडा रहता। जमीन खोदने लगे तो कहीं गड्ढा कर दे कहीं मिट्टी का ढेर लगा दे इस को पता नहीं तुम को कैसा खेत चाहिए। वर्षा में, धूप में वहीं खेत में पडा रहता। एक दिन चोरों का एक सरदार देवी की नरबलि देने कही उधर ही जा रहा था। बलि के लिए जो छोकरा लाया था वह कहीं भाग गया। सरदार ने साथी चोरों से कहा कि जा कर किसी को पकड लाओ। खोजने चल पडे। रात की सुन्दर चांदनी थी। यह खेत की मेंढ पर बैठा हुआ मिल गया। चोरों ने देखा कि यह तो बहुत अच्छा है, सुन्दर है। अङ्गहीन की बलि नहीं होती। चोर

खुशी से इसे उठा कर मन्दिर में ले गये। खूब नहलाया धुलाया सुन्दर वस्त्र पहनाए, बढिया खाने को दिया। जड भरत यह सब देखता रहा पर उसे भय शोक कुछ नहीं हुआ, क्यों कि उस का मन बाहर गया ही नहीं। भोजन के बाद भगवती की मूर्ति के सामने बिठाया। पुजारी पूजा करने लगा सरदार तलवार ले कर खडा हो गया। भद्रकाली की मूर्ति को पसीना आ गया। मूर्ति फट गई। देवी प्रगट हो गई और तलवार लेकर सब चोरों का सिर काट दिया। उन कटे हुए सिरों से फुटबाल की तरह खेलने लगी। देवी के सारे गण भी प्रगट हो गये। देवी उन्मत्त हो गई। बाद में जैसे मां बच्चे को प्यार करतीं है ऐसे ही जड भरत को गोद में लेकर प्यार किया और अन्तर्ध्यान हो गई। सोचो यह सब क्यों हुआ? श्रुति कहती है "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म वेत्ता को श्रुति ब्रह्म मानती है। भगवती ब्रह्म की शक्ति है वह कैसे चाहेगीं कि मेरी आत्मा को कोई मार दे। जैसे अच्छी पत्नी अपने पति के लिए अपनी जान भी दे देती है ऐसे ही भगवती ने अपने भक्त की रक्षा के लिए, अपने भगवान के लिए यह सब किया। पर जड भरत ऐसे ज्ञानी संत कि उन्हों ने कुछ पकडा ही नहीं। मरने से भय नहीं और कोइ डर नहीं लगा। डर लगता तो भागते। बढिया खाने को दिया तो भी कुछ नहीं। सरदार मारने लगा तो भी कुछ नहीं भगवती ने प्यार किया तो भी कुछ नहीं। प्रसन्नता भी नहीं प्रगट की, भय भी नहीं। ऐसे ज्ञान की ऊंची भूमि में जब मन पहुंच जाता है तो श्रुति कहती हैं "तत्र को मोहः कः शोकः" जिस काल में आत्म साक्षात्कार कर लेगा "आत्मैवऽहमस्मि" "ब्रह्मैवाऽहमस्मि" ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा स्वरूप अनुभूति काल में मोह क्या होगा? शोक क्या होगा?

शोक मोह भेद में होता है। शोक मोह दूसरे में होता है। अपने से जो भिन्न होगा वह हमारा प्रिय होगा। अपने स्वरूप में मोह नहीं होता। कोई कितना ही सुन्दर से सुन्दर हो अपने में मोह नहीं होता। यह तत्त्व ज्ञानी तो ज्ञानवान है। यहां भेद तो है ही नहीं। यहां दूसरा तो कोई है ही नहीं। केवल एक मात्र सत् चित् आनन्द स्वरूप है। आत्म स्वरूप में शोक मोह कहां से आएगा? ऐसी वो तुम्हारी अन्तरात्मा है। वो अखंड है। भूमा है। इस भूमा ब्रह्म में मुमुक्षु मन को देवे। मन जब इस में देगा तो माया निवृत्त हो जाएगी।

इसी छान्दोग्य उपनिषद के छठे अध्याय में महर्षि उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म का उपदेश देते हुए कहते हैं **"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो"**। यही सत् चित् आनन्द सर्वान्तरात्मा ब्रह्म है। यही सत्य है। यही सर्वान्तरात्मा ब्रह्म तू है। श्वेतकेतु कहता है दृष्टान्त से समझाओ। महर्षि को बोलने में आलस्य तो है नहीं। उन्होंने कहा यह सामने जो न्यग्रोध का वृक्ष है, जैसे बर या पीपल का वृक्ष होता है, इस का एक फल ले आओ। श्वेतकेतु गया और फल ले आया। महर्षि ने कहा **"भिन्द्धीति"** इसे तोडो। तोडा तो अन्दर छोटे २ दाने निकले। महर्षि ने फिर कहा **"आसामङ्गकां भिन्द्धीति"** श्वेतकेतु ने दाना पीसा। महर्षि ने पूछा **"किमत्र पश्यसीति"** श्वेतकेतु बोला "न किञ्जन भगव" इस में तो कुछ भी नहीं दीख रहा, महर्षि कहने लगे **"सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व"** अभी तू कुछ देख नहीं रहा है, पर बेटा इसी एक दाने में ही यह महान न्यग्रोध वृक्ष है। हे सोम्य श्रद्धा कर। बुद्धिमान श्रद्धा करे तो तत्त्व को पकडेगा, अन्यथा तर्क मुमुक्षु को निश्चय नहीं करने देता। उस को संशय में फैंक देता है।

इस लिए श्रद्धा करो। विश्वास करोगे तो सत्य में पहुंच जाओगे। निश्चय करो कि सत्य रूप बीज के बिना यह महान संसार वृक्ष हो नहीं सकता, पर यह दीखेगा तब जब श्रद्धा करोगे। इसी प्रकार तुम्हारी आत्मा भूमा ब्रह्म आंख से दीखेगा नहीं। यह संसार वृक्ष उस बीज में है जिस को भूमा कह रहे हैं। श्रद्धा से मुमुक्षु अपनी उस अन्तरात्मा में प्रवेश पाजाता है। "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया"। इस प्रकार सामवेदीय महावाक्य के द्वारा महर्षि उद्दालक ने श्वेतकेतु को तत्त्व का उपदेश किया।

वो सूक्ष्म हैं, अणु है, वही सत्य है, वही आत्मा है, वो आत्मा तुम हो। जैसे देखने को तो यह शरीर सत्य जैसा दीखता है पर यदि इस में चेतन नहीं है "If there is no soul behind of this body" तो कुछ भी नहीं है। वो ही इस सारे ब्रह्माण्ड की आत्मा है। वो आत्मा तुम हो। 'तत्' माने वो आत्मा त्वं माने तुम। जगत की जो आत्मा है वही तुम्हारी आत्मा है, तुम इस को समझो। तुम अपने को इस शरीर के घेरे में छोटा समझ रहे हो। इस शरीर से बाहर निकालो तो सत्य में पहुंच जाओगे। इस सत्य को प्रगट करने के लिए

भूमा ब्रह्म का उपदेश कर रहे हैं। एक बात और समझो। अपने को द्रष्टा समझेगा या अपने से भिन्न भूमा ब्रह्म है। भूमा ब्रह्म अलग और मैं द्रष्टा अलग, यदि ऐसा समझ लेगा तो यह भेद दृष्टि हो जायगी। अपने को द्रष्टा मान लेगा और भूमा ब्रह्म को दृश्य। यह भूमा दर्शन नहीं होगा। यह सम्यक् दर्शन नहीं। नाम रूप प्रपञ्च से विलक्षण यह भूमा तत्त्व है।

ज्ञानवान की स्थिति जब भूमा ब्रह्म में हो जाएगी, ब्रह्माकार वृत्ति में जब उस का मन स्थित हो जाएगा। उस समय नाम रूप का बाध हो जाएगा। केवल चिन्मात्र अपना स्वरूप ही वहां पर भासेगा। जैसे निद्रा में चले जाते हो तो यह शरीर, यह इन्द्रियां निवृत्त हो जाती हैं। इन का भान वहां गाढ निद्रा में नहीं रहता। नाम रूप निवृत्ति, इन्द्रिय निवृत्ति हो जाती है। पर वहां अविद्या Ignorance जो है वह घेर कर बैठी है। निद्रा से जगे और दिन भर इधर उधर किया। रात को फिर सो गये। आगे पीछे करते २ काले से सफेद हुए और चल दिए। क्या जीए और क्या मरे कुछ पता नहीं। इस लिए कहते हैं कि बुद्धिमान जीवन के अच्छे समय में इस सत्य को पकडे। इस को पाने की इच्छा करे। "**एकत्वमक्षरं प्राहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते**" एकत्व दर्शन ही अविनाशी दर्शन है। नानात्व दर्शन अदर्शन है। भेद दृष्टि विनाशी है। जैसे सोना है उस से हार कंकण अंगूठी आदि नाना प्रकार के गहने बनाए तो इन नाना आकारों में सार भूत तत्त्व तो सोना ही है। देखने में तो हजारों प्रकार के गहने दीखते है पर तत्त्व तो सोना ही है। उन को लेने बाजार गये तो सुनार सोने के दाम भी लेगा और आकार का दाम भी लेगा। पर बेचने जाओ तो केवल सोने का दाम देगा। उस की दृष्टि में आकार की कोई कीमत नहीं। आकार मिथ्या है। तुम्हारी दृष्टि में चूडी हार, कीमती था, परन्तु सुनार की दृष्टि में इन आकारों का कोई मूल्य नहीं। स्वर्ण ही सार है।

ऐसे ही अज्ञानी की दृष्टि में जगत कीमती है क्यों कि अज्ञानी सदा नाम रूप में खेलता है। ज्ञानी नाम रूप में नहीं खेलता। यद्यपि वह व्यवहार तो करता है किन्तु इन को मिथ्या मान कर करता है। इस लिए ज्ञानी शोक मोह से परे हो जाता है। पतञ्जलि ऋषि कहते हैं

"शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" शब्द से ज्ञान हुआ। ज्ञान से वस्तु प्रतीत दुई परन्तु है वहां कुछ भी नहीं। जैसे सुनार सोने को ही तत्त्व समझता है। इसी प्रकार ज्ञानी इस भूमा ब्रह्म को ही सब जगत की अन्तरात्मा और अपनी आत्मा जानता है। जो सब की आत्मा है। वही मैं हूं। वह भूमा ब्रह्म ही सत्य है, वही भूमा ब्रह्म सत्य स्वरूप मैं हूं। ऐसा मुमुक्षु इस जीवन में निश्चय करे कि एक मात्र भूमा ही वो सत्य है जिस में दूसरे पदार्थ का अभाव है। इस भूमा ब्रह्म में अन्य पदार्थ की कोई सत्ता नहीं है। द्वैत का व्यवहार वहां नहीं है। द्वैत से विलक्षण भूमा है। मुमुक्षु इस सत्य को पकडे।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५६

१४।६।८५

"ॐ कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति"

(छान्दो० ७।२४।१)

विचार चल रहा है, प्रश्न आया कि यह भूमा ब्रह्म कहाँ प्रतिष्ठित है? यह जो महान भूमा ब्रह्म सर्वान्तरात्मा है, जो विश्वात्मा ब्रह्म है, जिसे भूमा शब्द से कह रहे हैं यह परिपूर्ण ब्रह्म "कस्मिन् प्रतिष्ठित" कहां प्रतिष्ठित है। कहते है "स्वे महिम्नि" अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित है। फिर मंत्र कहता है "यदि वा न महिम्नीति" अपनी महिमा में भी यह प्रतिष्ठित नहीं। क्यो? अपनी महिमा में भी वह प्रतिष्ठित होगा जो अल्प होगा, परिमित होगा। जो असीम है, अपरिमित है, वह अपनी महिमा में भी कैसे प्रतिष्ठित होगा? वो भूमा ब्रह्म महान विलक्षण है **"सएवाधस्तात्सउपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वम्"**(छान्दोग्योपनिषद् ७।२५।१)नीचे भी है, ऊपर

भी है, आगे भी है, पीछे भी है, दक्षिण उत्तर पूर्व पश्चिम सब जगह व्याप्त है। सब जगह ओत प्रोत है यह भूमा ब्रह्म। कोई जगह खाली तो है ही नहीं जहां यह भूमा रहेगा। एक बात और ध्यान देने की है। भूमा के विषय में यह ऊपर नीचे आगे पीछे जो कह रहे हैं यह भी जीवदृष्टि ही है। जीव की दृष्टि में कुछ ऊपर है, जीव कुछ ऊपर मानता है। किन्तु परिपूर्ण परमेश्वर जो है उस की दृष्टि में क्या ऊपर क्या नीचे। यह तो जो अल्प होगा, परिच्छिन्न होगा उस के लिए कुछ ऊपर होगा कुछ नीचे होगा। पर जो परिपूर्ण होगा उसके लिए कौन उपर कौन नीचे। मंत्र कहता है **"एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञः, सर्वेषाम् ईश्वरः सर्वेश्वरः"** यह जो परमात्मा है यह सब भूतों का ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है। जब यह सर्वेश्वर है तो कोई जगह ऐसी नहीं जहां वह ईश्वर नहीं। जब वह सब जगह है तो कौन ऊपर कौन नीचे। यह तो उसी की दृष्टि में होगा जो परिछिन्न पदार्थ की भावना में रहेगा। वह संसार में सुखी भी होगा, दुःखी भी होगा। किन्तु जो सर्वान्तरात्मभावना में आगया उस को कौन सा दुःख होगा। संसार का दुःख तब होता है जब कोई वस्तु मिले कोई वस्तु न मिले। जीवदृष्टि में कुछ मिलता है और कुछ नहीं मिलता। जो सर्वभाव में आ गया, भूमा दृष्टि में आ गया, दृष्टि माने भाव समझो, उस के लिए क्या मिलना और क्या न मिलना। उस की दृष्टि में इस भूमा से अतिरिक्त कोई सत्य वस्तु है ही नहीं। कुछ हो तो मिले। यह शरीर ही है। इस को अपने लोग मिलना कहें कि न मिलना कहें। लोकदृष्टि में तो मिलना है यही कहना पडेगा। इस लिए इस शरीर की कोई मां भी है कोई पिता भी है, बेटा बेटी इस शरीर के सब सम्बन्ध चल रहे हैं। किन्तु फिर भी यह अपनी दृष्टि में सच्चा नहीं, मिथ्या है। जब भूमा भाव में जाओगे तो यह देह भाव सच्चा नहीं प्रतीत होगा। इस लिए विवेक शील मुमुक्षु इस देहंकार से ऊपर उठे। अच्छा थोडी देर के लिए अगर इस शरीर के अहंकार को पकड भी ले तो २४ घण्टे में कितनी देर, कितने घण्टे पकडे रहोगे। सोने का समय चहिए कि नहीं? कम से कम छ घण्टे मानलो सौ वर्ष की आयु है तो जीवन के कितने वर्ष आप इस शरीर से अलग रहे? २५ वर्ष आप इस शरीर अहं से जुदा रहे। तो यह २५ वर्ष आप को इस शरीर का कोई ज्ञान नहीं रहा। इतने समय में न इस शरीर के दुःख से आप

का कोई मतलब न इसके सुख से ही आप का कोई मतलब रहा। इतने समय तक आप विरक्त रहे, अज्ञात वास समझो यह २५ वर्ष का समय और शेष आयु के ७५ वर्ष में आप अधिक सुखी कहां रहे ? तो कहना पडेगा कि सुषुप्ति में ही अधिक सुखी रहे। आज तक कोर्ट में कहीं सुषुप्ति का कोई केस गया क्या ? कोई झगडा हुआ ? किसी ने मारा पिटा ? कोई भी दुःख नहीं हुआ। ऐसी वो सुन्दर मधुर मीठा अवस्था सुषुप्ति है जहाँ कोई दुःख नहीं रहा। बस इतना ही रहा कि वहां तुम कुछ जान नहीं सके, कुछ समझ नहीं सके। इस लिए जाग्रत में आने पर "गाढो मूढोऽहं न किंचिदवेदिषम्" बडी गाढ निद्रा में सोये, बडे मूढ रहे. कुछ नहीं समझे। 'कुछ नहीं समझे' यह समझे।

ऐसी इन अवस्थाओं में विचरण करने वाली तुम्हारी यह अन्तरात्मा जिस समय जीवभाव से ऊपर उठ जाता है उस समय उस में ऊपर नीचे का कुछ अहंकार नहीं रहता। जब तक जीवभाव है तभी तक अहंकार है और तब तक जीवन के कर्म भी करना पडेगा। कर्म का जो अल्प फल है वो भी इस को भोगना पडता है। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं, बृहदारण्यक श्रुति है **"योवाएतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथय एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः।"** हे गार्गि, गार्गि जो अपने समय की महान विदुषी थी, ब्रह्मवादिनी थी, उस को उपदेश करते हुए कहते हैं कि "अक्षरं" न क्षरति इति अक्षरं आत्मा जिसका क्षर न हो, वो आत्मा ब्रह्म है, वो ब्रह्म भूमा है वो अक्षर है। जिस आत्मा के बिना तेरी आंख देखती नहीं। वाणी बोलती नहीं। हाथ हिलता डुलता नहीं। शरीर काम नही करता। उस आत्मा को न जान कर जो बडा भक्त बन के और बडा कर्मी बन के, बडे २ कर्म करते हैं **"लोके जुहोति यजति तपस्ताप्यते बहूनि वर्षसहस्राणि"** बडे २ यज्ञ करता है। बडे २ देव पूजन करता है। बडे २ तप करता है। एक दिन दो दिन नहीं कहते हैं हजारों वर्ष तक तप करता है, यज्ञ करता है। आज कल शंका होती है कि इतना लम्बा तो जीवन ही नहीं, इतनी आयु ही नहीं तो यज्ञ कैसे करोगे ? तप कैसे करोगे ? तो इस में शंका करने की जरूरत नहीं। जैमिनी ऋषि "वर्षपदेन अहः संख्यानाम्" अहर माने दिन, वर्ष शब्द का अर्थ दिन किया जाता है। हजार

वर्ष का मतलब हजार दिन हुआ। तो हजार दिन तो तप कर सकते हैं। अब हजार वर्ष तक तप करने में क्या गडबड है। यह शास्त्र की मीमांसा है। देखना पडेगा कि शास्त्र क्या कह रहा है। कहते हैं राम ने छत्तीस हजार वर्ष राज्य किया। लोग सुन कर आश्चर्य में पड गये। अब यदि सीधा अर्थ करो तो छत्तीस हजार वर्ष का मतलब छत्तीस हजार दिन राज्य किया तब तो कोई गडबड नहीं होगी।

यहाँ महर्षि कहते हैं हे गार्गी इस महान अक्षर ब्रह्म को जो नहीं जानता और इस लोक में हजारो २ वर्ष तप का करते रहते हैं। यज्ञ करते रहते हैं। तो इस यज्ञ का, इस तप का जो भी फल होगा वह अन्तवाला ही होगा। क्यों? कर्म का फल अनन्त नहीं हो सकता। इस लिए जो इस अक्षर ब्रह्म को नहीं समझेगा और यहां से चल पडेगा, वह कृपण है। कृपण: पणे कृत: कृपण:। संस्कृत में 'पण' शब्द का अर्थ है रूपया पैसा। हम एक व्यक्ति को मोल ले लेते हैं। उसे रूपया देकर घर में नौकर रख लेते हैं। यह नौकर कृपण हो गया। क्यों? इस की आयु मालिक की हो गई। इस की बुद्धि मालिक की हो गई। यह अपनी बुद्धि को बेच चुका है। यह बतलाओ कि इस नौकर ने काम अपनी बुद्धि से करना है कि मालिक की बुद्धि से? इस की अपनी बुद्धि अब कुछ महत्त्व नही रखती। अब यह दास वृत्ति का प्राणी है। इस का इस सब कुछ अब मालिक का है। यह अब स्वतंत्र नहीं रहा स्वतंत्र बोलने में नहीं, स्वतंत्र करने में नहीं, स्वतंत्र सोचने में नहीं। यह तो लोक भाषा में लोक दृष्टि में दास शब्द की व्याख्या है। किन्तु असल में दास कौन हैं? जो इस अहं को, इस आत्मा को नहीं जाने और शरीर के अहं को पकडे २ घूमे, हड्डी मांस के थैले को उठाए २ घूम रहे हैं, चले जा रहे हैं। समय २ पर खाया पिया और सो गये। और क्या किया? शरीर के पीछे इन्द्रियां लगी हैं। इन्द्रियों ने जैसा कहा तुम ने वैसा किया? इन्द्रियों के पंजे में फंसे २ चल रहे हैं। बुद्धि का कभी उपयोग ही नहीं किया। इस लिए महर्षि कहते हैं हे गार्गी जो इस अपनी आत्मा को, इस अक्षर ब्रह्म को, इस भूमा ब्रह्म को नहीं समझा और यहां से चल पडा, वही कृपण है। क्यों कि इस की जो बुद्धि है वह दास बुद्धि है। इस ने अपनी बुद्धि से कुछ नहीं सोचा। इस की बुद्धि इस की इन्द्रियां पराधीन हैं, भोगों के वश में हैं। इन्द्रियां

भोगों के वश में तो बुद्धि भोगों के वश में, बुद्धि भोगों के वश में तो शरीर भोगों के वश में घुमेगा। इस तरह यह भोगों का, इन्द्रियों का शरीर का दास बना रहा और इसी तरह चला रहा है। इतना ही समझ कर जीया और इसी में मरा तो इस ने क्या किया ? इस आत्मा ब्रह्म को कुछ नहीं जाना इस लिए हे गार्गी यह कृपण है। इस की बुद्धि उस नौकर की तरह पराधीन है। किस जन्म में इसे स्वतंत्र बुद्धि मिलेगी किस जन्म में स्वाधीन होग ? कुछ पता नहीं।

कहते हैं ब्राह्मण कौन है ? ब्राह्मण शब्द का अर्थ शरीर से ब्राह्मण होना नहीं। ब्रह्म देव कौन है ? ब्रह्म को जाने वह ब्राह्मण। "यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लेकात्प्रैति स ब्राह्मण।" महर्षि कहते हैं हे गार्गी जो इस अक्षर ब्रह्म को जान कर यहाँ से जाएगा वह ब्राह्मण है। लोकदृष्टि से शरीर से ब्राह्मण होना भी ठीक है। कोई पूर्व जन्म के पुण्प के प्रभाव से ब्राह्मण शरीर मिला। लोक सम्मान मिलता है। पर यदि असल में ब्राह्मण नहीं बना तो बाहर का ही ब्राह्मण रहा। जो इस अपनी अन्तरात्मा अक्षर ब्रह्मा को समझ कर, जान कर यहां से चला वह ब्राह्मण। वह तत्त्ववेत्ता हो गया। ज्ञानी हो गया। उस का मोक्ष हो गया।

यह जो ज्ञानी है, इस बात को समझता है "ईशावास्यमिदं सर्वम्" यह कुछ भी है, नाम रूप जगत, यह सब का सब उस परमात्मा से परिपूर्ण है, व्याप्त है। उदाहरण के लिए अपने शरीर को ही पकडो। इस शरीर के एक रोम को पकड कर खींचो तो झट से फोन आएगा कि क्या कर रहे हो वह सारे शरीर में व्याप्त हो कर बैठा है। ऐसा मत समझो कि वह हृदय में बैठा है, या खोपडी में है। पर तुम्हारे रोम २ में व्याप्त है। इसी तरह इस सम्पूर्ण जगत का जो कण २ है, उस की सत्ता से पूर्ण है, व्याप्त है। उस के अस्तित्त्व से परिपूर्ण है इस लिए जीवित है। जीवन से पूर्ण है। life से पूर्ण है।

विचार आया, महाभारत की कथा है कि एक बार राजर्षि जनक, अपने समय के विदेह ज्ञानी कहलाते थे, उन जनक के यहां अत्रि महर्षि चातुर्मास कर रहे थे। प्राचीन काल का विधान है कि ज्ञानी संत कही एक स्थान में रह कर चातुर्मास करे। वर्षा में नदियों के कारण, पुल नहीं होते थे, आने जाने के

साधन नहीं थे। इस लिए भी यह विधान था और वहां की जनता को भी लाभ मिलता था। विरक्त महात्मा जगह २ रह कर स्वाध्याय प्रवचन करते जिस से जन हित भी होता था। तो राजर्षि जनक के यहाँ अत्रि महर्षि सत्सङ्ग करते हैं। राजा जनक भी श्रद्धा से समय से जाकर सत्सङ्ग सुनता है। ज्ञानी होने से उसे परिमार्जन करना चाहिए। बर्तन सोने का भी होगा तो भी यो ही रखा रहेगा तो मैला हो जाएगा। मांजते रहो तो स्वच्छ रहेगा। ज्ञानवान होने पर भी सत्सङ्ग करना चाहिए। चाहे वह सब समझ चुका है फिर भी सत्सङ्ग को छोडना नही चाहिए।

राजर्षिजनक अपने समय से सत्संग से चूकते नहीं थे। किन्तु महा-किन्तु महाराजा भी हैं राजकार्य के कारण कभी कभी पांच दश मिनट लेट भी हो जाते थे। तो ऋषि देखतेकि राजा नही पहुंचा तो वह भी प्रवचन शुरू नही करते। कीर्तनादि करवाते रहते हैं। यद्यपि जनता का मन कीर्तन मे भी लगा हुवा है परन्तु फिर भी इतना तो समझते हैं कि महर्षि का ध्यान राजा के ऊपर है इस लिए प्रवचन शुरु नहीं कर रहे। लोगों के मन में आया कि कोई लोभ वृत्ति है। इधर उधर महर्षि भी समझ गये इस भावना को। हृदय भी हृदय से बोल देता है। श्रुति का व्याख्यान चल रहा है **"सर्व खल्विदं ब्रह्म तजज्जलानिति शान्त उपसीत।"** यह सब ब्रह्म ही है। यह सब जगत उस परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है, उसी मे जी रहा है, उसी में लीन हो रहा है। मुमुक्षु बड़ी शान्त बुद्धि से श्रद्धाशील होकर ऐसी उपासना करे। इस तरह अत्रि ऋषि प्रवचन कर रहे हैं और राजर्षि जनक तन्मय हो कर ध्यान से सुन रहे हैं। महर्षि ने संकल्प किया। जो सिद्ध हृदय का होता है उस में बडी शक्ति होती है। वह जो भी संकल्प करेगा वह पूरा हो जाएगा। इस लिए कहते हैं **"ऋषिणां पुनराद्यानां अर्थो वाच मनुधावति"** आद्य ऋषि हैं जैसा संकल्प करेंगे, पूरा हो जाएगा। जैसी उन की वाणी होगी वैसा उस का अर्थ हो जाएगा। ऋषि ने संकल्प किया और राजधानी के उत्तर में आग लग गई। सुनते ही बड़े बड़े श्रोता उठकर भाग गये। हमारा घर तो उधर ही है। अग्नि बढती जा रही थी। बड़ा हल्ला हो गया। पर साथ में चमत्कार यह कि जहां अग्नि लगे, लोग जब वहां पहुंचे तो अग्नि बुझ जाए, अग्नि गायब हो जाए। लोग आश्चर्य में पड गये और अग्नि

बढ़ती जा रही है। जहाँ अत्रि ऋषि प्रवचन कर रहे थे वहां भी अग्नि आ गई। ऋषि के चेले भी भाग खडे हुए कोई कहता है मेरी धोती पड़ी है, मेरा कमण्डलु पड़ा है। पर राजर्षि जनक जैसे के तैसे बैठे ध्यान पूर्वक सुनते रहे। जब उन से कहा गया तो बोले "मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किंचन दह्यति।" मिथलानाथ कहते हैं कि मिथला तो जल रही है पर मेरा तो कुछ नहीं जल रहा। इस का अभिप्राय यह है कि जब ध्यान की स्थिति में दृढता आती है तो शोक मोह नहीं होता जीवन का व्यबहार तो होगा पर शोक मोह नहीं होगा।

जब तत्त्वनिष्ठा हो जाती है कि जब यह नाम रूप बच्चा नहीं तो इस का रहना न रहना क्या महत्त्व रखता है! और यह नाम रुप बना भी रहे तो हम क्या करते? अपने शरीर में ही देखो एक दिन यह शरीर बच्चा था। अच्छा यदि यह शरीर बच्चा ही बना रहे। एक वर्ष मे भी बच्चा, दूसरे वर्ष - में भी बच्चा, तीसरे वर्ष में भी बच्चा जब देखो तब बच्चा ही रहे, अंगूठा ही चूसता रहे, तो सोचो कौन मां इसे पालेगी। किसी मां के हृदय में दम नहीं कि वह ऐसे बचे को पाले। बच्चा तो तभी अच्छा लगता है जब एक महीने में कुछ, दूसरे महीने में कुछ, तीसरे महीने में हंसने लगे, चौथे पांचवे महीने में बैठने लगे। कुछ महीने बाद उठ कर चलने लगे अच्छा लगता है तभी प्यार होता है। जब देखो तब पत्थर की तरह पड़ा है तो कौन मां प्यार करेगी। तो बताओ कि इस नाम रूप का परिवर्तन अच्छा लगता है कि परिबर्तन न होना अच्छा लगता है! यह तो परिवर्तन होता रहता है इसी लिए अच्छा लगता है। देखते २ बच्चा २० वर्ष में जवान हो गया तो मां Body guard भी ले आएगी। अंग रक्षक भी चाहिए इस को। इस लिए नाम रूप में परिवर्तन ही इष्ट है। किन्तु इस नाम रूप का जो द्रष्टा है वह अमर है इस का परिवर्तन नहीं। मुमुक्षु इस चेतन आत्मा के अमरत्व को पकडे. परिवर्तन को पकडता जाए और अमरत्व को पकडे नहीं तो गड़ बड़ है।

राजर्षि जनक इस अपरिवर्तनशील आत्मतत्त्व का पकड कर बैठें है। अन्य श्रोतागण नाम रूपको पकड़ कर बैठे हैं। इस लिए लोग घबड़ा

कर भाग गए। और यह निश्चल बैठा रहा। यह जानता है कि अग्नि सच्ची नही मायिक अग्नि लगी है। क्व मुमुक्षु: ! अनिर्वंचनीयवादी।" मुमुक्षु कौन ? जो जगत को अनीर्वचनीय मानता है। इस अनिर्वचनीय जगत में मुमुक्षु कहाँ ममत्व करे ! न यह सत् न असत् न सत् असत् उभय। यह विलक्षण है। ऐसी वो तुम्हारी आत्मा है। ऋषि ने इस चमत्कार के द्वारा लोगों के इस भ्रम को दूर कर दिया कि वह राजा का पक्ष करता है। योग्य अधिकारी की निष्ठा को देख कर उस के लिए थोड़ा देना जरुरी है। यह उपेक्षा नहीं। सब को संतोष हो गया। आगे मंत्र कहता है। यह तुम्हारी आत्मा "स एव इदं सर्वम्" भूमा है। यह ऊपर है। यही नीचे है, यही पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण मे है। पर शंका हुई कि यह व्याख्यान करने वाला शायद भूमा से भिन्न होगा। श्रुति इस शंका को दूर करना चाहती है अथात आत्मादेश आत्मैवेंद सर्वमिति।" यहाँ मंत्र स्पष्ट करता है कि जीवभाव भूमा से बाहर कुछ नहीं। द्रष्टा, श्रोता मन्ता, बोद्धा सब भाव इस भूमा में ही हैं। यद्यपि अपने इस अन्त:करण के सम्बन्ध से जीवभाव की कल्पना में भी है किन्तु यहां इस ने अपने अहं को भूमा में मिला दिया है। कहता है मैं ही नीचे हूं, मैं ही उपर हूं। मैं ही पूर्व हूं मैं ही पश्चिम हूं। अंहरूप से सब जगह अपने स्वरूप को कह रहे हैं। मैं अहं रूप से भूमा ही हूं। सत् चित् आनन्द स्वरूप से भूमा ब्रह्म मैं सब सब जगत् हूं। मुझ से बाहर कुछ नहीं। श्रुति भूमा के स्वरूप को स्पष्ट कर रही है। यह जो कुछ भी दीखता है, यह नाम रूपात्मक जगत जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, "इदं सर्वं" जो कुछ भी भास रहा है यह भूमा ब्रह्म रूप हीं हूं। यह भूमा ही सब कुछ है यह ही जगदात्मा है। मुमुक्षु धीरे२ इस में मन लगाता रहे। आगे इस का व्याख्यान करने वाले हैं।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५७ १५।६।८५

"ॐ स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरति-रात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।"

(छान्दो० ७।२५।२)

विचार चलता है भगवान सनत्कुमार ब्रह्म का व्याख्यान करते आ रहे हैं। कहते हैं हे नारद यह जो आत्मा है यह भूमा ब्रह्म है। भूमा ब्रह्म माने सर्वात्मा जो इस जगत की अन्तरात्मा है। ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किंचित् जगत्याम् जगत्। "इदं सर्व" मंत्र कहता है, बेटा देख, यह सर्व रूप में जो कुछ भी भास रहा है, जो कुछ भी प्रतीति में आ रहा है। इस का अर्थ क्या हुआ ? कि इन्द्रियो का विषय यह नाम रूप जो भास रहा है। यह इन्द्रियों के द्वारा प्रतीत होने वाले जितने भी विषय हैं, साकार रूप में भासने वाले पदार्थ इन्द्रियों के विषय हैं। इन पर ठीक से विचार करो तो उस सत्य के बिना कुछ भी नहीं भासेगा। यह सब उस सत्य आत्मा के बिना कुछ नहीं। जैसे यह शरीर इस सत्य आत्मा के बिना न किसी का बेटा न बेटी। चेतन के करंट में जब तक यह शरीर है तभी तक इस के सब सम्बन्ध है। मुर्दे को कोई बेटा बेटी नहीं मानेगा। इस का मतलब यह हुआ कि इन सब के पीछे वह सत्य छिपा हुआ है। वह जो असली सत्य तत्त्व है वह सामान्य दृष्टि से ऊपर २ ही देखने तो दीखेगा नहीं। ऊपर २ से देखते रहोगे तो तुम्हें शोक मोह ही मिलेगा। अन्दर की चीज तो वह आत्मा है। आत्मा का भान होगा तो शोक मोह नहीं होगा। किन्तु जब तक आत्मतत्त्व का भान नहीं होगा तब तक ऊपर ही ऊपर दीखता रहेगा और ऊपर

की वस्तु मे कहीं तुम्हे राग होगा कहीं द्वेष होगा। मन यदि सत्य में पहुंच गया तो राग नहीं होगा, मोह नही होगा शोक नहीं होगा। इस लिए मुमुक्षु इस असली तत्त्व की ओर ध्यान देवे। "**इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः** ॥ (गीता अ. १३।१) यहाँ आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहा। क्षेत्रं जानाति इति क्षेत्रज्ञः। जो क्षेत्र का ज्ञाता है क्षेत्र का द्रष्टा है उस को कहते हैं क्षेत्रज्ञ। कहते हैं कि प्रकृति के गुणों से संयुक्त होने पर "संयुक्तः प्रकृतेर्गुणैः" यह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। किन्तु जब यह प्रकृति के गुणों से जुदा हो जाएगा तो परमात्मा कहलाएगा। वह परमात्मा जो सर्वान्तरात्मा होने से तुम्हारी भी आत्मा है उस को यहां भूमा ब्रह्म कहा। इस भूमा ब्रह्म का अहं शब्द से निर्देश किया। किस से निर्देश किया ? अहं शब्द से। किस का निर्देश किया ? भूमा ब्रह्म का। किन्तु साथ में शंका हो गई। लोक दृष्टि से इस शरीर को भी अहं कहा जाता है। कहीं आप इस शरीर को तो अहं शब्द से नहीं पकड रहे। इस लिए आचार्य ने शंका किया। भाष्य में कहा "देहादिसंघातोपि" जो अविवेकी हैं, अविवेकी का मतलब जिन के अन्दर सत् असत् का विवेक उत्पन्न नहीं हुआ। सत् माने आत्मा। आत्मा का विवेक जिन के हृदय में जाग्रत नहीं हुआ, वह केवल शरीर को ही, माने शरीर तक ही अपने जीवन का विश्राम समझते हैं। वह शरीर की अवस्था से ही अपने को देखते हैं। कभी बच्चा देखते हैं, कभी कुमार देखते हैं, कभी जवान देखते हैं। और आगे की जब घाटी आती है, पहले तो पहाड पर चढे तब तक तो ठीक था। पर उतरते समय तो सारे शरीर का Balance देखना पडेगा। चढते समय ज्यादा कष्ट होता है कि उतरते समय ? उतरते समय। जवान होने में तो कोई दिक्कत नहीं थी, पर जब नीचे उतरने लगे तो सारे guest पहुंच जाते हैं। यहां तो हम दरवजा बन्द कर रहे हैं और अतिथि बिस्तर ले कर आजाते हें तो मुश्किल होती है। इस लिए कहते हैं कि अविवेकी, जिन के अन्दर यह विवेक उत्पन्न हुआ ही नहीं कि यह क्या हो रहा है, वो इस शरीर को ही 'अहं' शब्द से पकड कर बैठ जाते हैं।

जब इस शरीर को ही 'अहं' मान कर बैठ जाएंगे तो उन के अन्दर ऐसा विश्वास बन जाएगा कि यह शरीर ही मालूम पडता है भूमा ब्रह्म है। तो उन के इस भ्रम को दूर करने के लिए आत्मा का आदेश करते हैं "अथात आत्मादेश"

आत्मा आदिश्यते उपदिश्यते आत्मतत्त्व का, आत्मा के स्वरूप का उपदेश कहते हैं। जिस के पहलें अहं शब्द से कहा उसे अब आतमा शब्द से कह रहे हैं। इस का मतलब यह हुआ कि 'अहं' शब्द देहाहंकारवाला अहं नहीं। एक बात और समझो। अहं अहं से सामान्य प्रतीति हो रही है। यहां पर अविद्या बुद्धि और चिदाभास तीन चीजें हो गई। और यह चिदाभास जिसका है वह कूटस्थ आत्मा अधिष्ठान हुआ। इतना मिलकर 'अहं अहं' हुआ। अविद्या सहित साभास बुद्धि और इस का अधिष्ठान चेतन। यह जीव हुआ। अविद्या सहित आभास युक्त बुद्धि के द्वारा इस कूटस्थ चेतन में जीवभाव का आरोप हुआ। जैसे इस स्थूल शरीर के सम्बन्ध से, इस के द्वारा तुम्हारे अन्दर मनुष्य भाव आया। इस शरीर को जुदा करो तो इस अहं की क्या जाति हैं। यह 'अहं' फिर मनुष्य है कि स्त्री है कि पशु है कि पक्षी है? स्थूल शरीर के बिना क्या सम्बन्ध रहेगा? शरीर सम्बन्ध रहेगा तो अहं में यह आरोप रहेगा। अब शरीर बच्चा है तो अपने को बच्चा कहेगा, शरीर जवान है तो अपने को जवान कहेगा। शरीर बुढ्ढा तो अपने में वृद्धावस्था का आरोप करलेगा। शरीर को हटा दिया तो न बच्चा, न कुमार, न जवान और न बुढ्ढा। शरीर का कोई विकार नहीं। ऐसा यह जो 'अहं' है, यह अविद्या सहित आभास युक्त बुद्धि से जीव बन गया।

इस अहं के दो अंश समझो। विशेष्य अंश और विशेषण अंश। अविद्या सहित साभास बुद्धि विशेषण अंश और कूटस्थ चेतन विशेष्य अंश है। तो इस विशेष्य अंश में, अविद्या सहित साभास बुद्धि लेने से जीव भाव प्रगट हो गया। साभास बुद्धि के सम्बन्ध से अपने को जीव मानता है। मैं जीव हूं, मैं संसारी हूं, मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं। शरीर के साथ अहं का सम्बन्ध हुआ तो मैं मनुष्य हूं मैं स्त्री हूं मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं। जैसा शरीर वैसा ही अहंकार अपने में करने लगता है। यह शरीर तभी तक सुन्दर है जब तक इस में चेतन आत्मा का तेज व्याप्त रहा है। गाढ निद्रा में शरीर का कोई बोध नहीं रहता। उस अवस्था में शरीर अथवा शरीर का कोई विकार नहीं रहता। यह तुम्हारी आत्मा शरीर और शरीर के विकार से जुदा है। ऐसी तुम्हार जो अन्तरात्मा है उस को यहां भूमा कह रहे हैं। उस भूमा ब्रह्म स्वरूप आतमा का यहां आदेश कर रहे हैं मुमुक्षु जो पहले अहं रूप से अपने शरीर को ही पकडता था। अब समझ गया

कि इस 'अहं' शब्द से दो रूप दिखे। अविद्या सहित साभास बुद्धि और इस का अधिष्ठान कूटस्थ चेतन। अविद्या सहित सभास बुद्धि के सम्बन्ध से कुटस्थ चेतन में जो जीवभाव आया था। वह मिथ्या है। मिथ्या माने जैसा दीखे वैसा हो नहीं। उदाहरण के लिए समझो जैसे ड्रामा में किसी लडके को लडकी जैसे ड्रैस पहनाया। उसे लडकी जैसा बना दिया। किन्तु क्या वह सचमुच में लडकी हो गया ? तो कहना पडेगा कि लडकीपने का आरोप मात्र है। यह मिथ्या है। जो उस लडके को जानता है वह समझता है कि लडकीपना मिथ्या है। पर जिस ने उसे पहले कभी देखा नहीं वह समझता है कि लड़की सच्ची है। गीता के पन्द्रहवे अध्याय में भगवान कहते हैं "**न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्ग शस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥**" (गीता अ. २५।३) हे अर्जुन यह जगत का स्वरूप जैसा दीखता है वैसा है नहीं। वैसे स्वरूप को पकडने जाओ तो पकड में कुछ भी नहीं आता अपने इस शरीर पर ही सारी दुनियां को समझते चलो। इस शरीर का बचपन एक दिन बडा सुन्दर रूप दीखता रहा। पर हमारे देखते २ चला गया वह बचपन, गायब हो गया। देखते २ जवानी आई और आकर चली गई। तो जो आकर गायब हो रहा है, यह क्या है सब ? यह जगत क्या है ? इस लिए भगवान कहते है "न रूपमस्येह तथोपलभ्यते" जैसा इस का स्वरूप दीखता है वैसा है नहीं। इस लिए इसे मिथ्या कहा इसी को मिथ्या कहते हैं।

श्रुति कहती है कि इस चेतन को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। प्राकृत गुणों से युक्त होने पर यह आत्मा क्षेत्रज्ञ कहलाया। परन्तु जब इन गुणों जुदा हो जाते है तो यही परमात्मभाव में पहुंच जाता है।

यह नाना प्रकार के भेद खडा करनेवाला अज्ञान है। मान लो रस्सी है। अंधेरे में पड़ी है। किसी ने उसे सर्प समझा। किसी ने सोचा टेढ़ी मेढी लकडी पडी है। किसी ने दरार देखी। तो देखो भ्रम कितने प्रकार का हो गया। यह नाना प्रकार का जो भ्रम हुआ, यह अज्ञान हुआ, इस कारण क्या है ? अज्ञान क्यों जड पकड गया ? अन्धेरा होने से। इसी तरह यह जो तुम्हारी अन्तरात्मा है यहां पर भी ऐसे ही हालत है। आत्मा के असली स्वरूप का स्पष्ट बोध न होने से इस में जीवभाव की कल्पना चल पढी। आचार्य कहते हैं-

जीव ब्रह्म का जो भेद है नहीं, उस भेद को कौन खडा करेगा ? वह भेद कैसे खडा हो जाएगा। यह केवल अज्ञानकृत भेद है। अज्ञान से जो भेद दीखेगा वह ज्ञान से नष्ट हो जाएगा। जैसे रस्सी में सर्प दीखा। किन्तु जिस समय रस्सी स्वरूप का ज्ञान हो गया तो उस समय सर्प का भ्रम रहेगा क्या ?

दो मित्र कहीं जा रहे थे। जाते अंधेरा हो गया। रास्ता भी जंगली था। एक कहता है कही जंगल में भूत प्रेत तो नहीं। भूत प्रेत की कल्पना उस के दिमाग में आई तो, था तो सूखा वृक्ष, सूखा ठूंठ, प्रेत का भ्रम हो गया। एक कहता है भूत खडा है। हिलता डुलता भी दिखने लगा। इस की बाहें भी वडी लम्बी २ हैं। यह सब उन को भासने लगा दोनो कहने लगे कि यदि भागेंगे तो यह भूत हमको पकड लेगा क्यों कि इस में हम से ज्यादा शक्ति है। तो एक मित्र कहता है भागने से लाभ नहीं तुम हनुमान चालिसा का पाठ करो और मैं पत्थर इकट्ठे करता हूं। इस को मारने के लिए। पाठ है न "भूत पिशाच निकट नहिं आवहिं महावीर जब नाम सुनावहि" कहते हैं बेटा भूत निकट नहीं आवेगा। तो वह जोर २ से पाठ करने लगा और पत्थर पर पत्थर फैंकने लगा। काफी समय हो गया इधर आकाश में चन्द्रमा निकल आया। प्रकाश में साफ दीखने लगा कि यह तो ठूंठ है। भूत की कल्पना गायव हो गई। वस्तु दीखने पर अवस्तु गायव हो जाती है। जब असली वस्तु का वोध होगा तो जो वस्तु नहीं है वह निवृत हो जायगी। वस्तु शब्द का अर्थ हमारी बोल चाल की भाषा में पदार्थ है परन्तु "वसन्ति भूतानि यस्मिन् इति वस्तु।" जिस के अन्दर यह सम्पूर्ण भूत प्राणी जी रहे हैं। वह वस्तु है। यह शास्त्र की परिभाषा है।

अपने इस शरीर से ही पूछो कि तेरो को हम इतने सुन्दर २ पदार्थ खिलाते हैं पर मिठू भाई तू हमको जानता है, जिस में तू जी रहा है उस को जानता है ? तो कहेगा घर में जी रहा हूं, बेटे वेटियों के बीच में जी रहा हूं। परन्तु जरा से हाथ पाव ठंडे होने लगे, जरा सा इन चेतन के करंट से अलग होने लगे मो बेटे झट कहेंगे कहां ले चलो भला ? आर्य घाट में ले जाएंगे। किस की कृपा से जी रहे हो, घर में रहे हो ? उस को हम लोग समझते ही नहीं। इस चेतन आत्मा का नाम ही वस्तु है जिस

में यह शरीर रह रहा है, जी रहा है। आत्मा को बिना सब अवस्तु है। जिस में सब जीएं वह वस्तु। ऐसी है वह आत्मा। तो उन लोगों को जब बोध हो गया कि भूत वूत कुछ नहीं तो उन को भय रहेगा क्या ? भूत भी नहीं भूत का भय भी नहीं। भ्रम भी नहीं। तत्त्व का ठीक बोध होने से ही भय की निवृत्ति होगी। जब तक तत्त्व का ठीक बोध नहीं होगा भय जाएगा नहीं।

भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं "**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स में प्रियः।**" (गीता अ० १२।१७) मेरा प्यारा कौन हे ? इस जगत में सब अपने २ प्यारे का तो ध्यान रखते ही हैं। "यो न हृष्यति न द्वेष्टि" इस जगत में रहता तो है। रहना तो पडेगा इस जगत में। पर कहते हैं यह चोरो की नगरी है। बडी होशियारी से रहना पडेगा यहा देखते २ यहां चोरी हो जाती है। यह माया की नगरी है। इस लिए कहते हैं "न हृष्यति न द्वेष्टि, नशोचति न कांक्षति" न तो हर्ष को प्राप्त होता है, प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता। 'न द्वेष्टि' कभी होता है कि प्रिय वस्तु मिल गई तो उस में हर्ष होता है और चली गई तो शोक होने लगता है, वस्तु प्रिय न हुई तो द्वेष होने लगता है। उस में न हर्ष है, न आकांक्षा है और न शोक है। "शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स में प्रियः"जो शुभअशुभ से ऊपर उठा हुआ है। ऐसी ब्राह्मी वृत्ति है जिस की वह मुझे प्रिय है। "भक्तिमान्यः" भक्ति का अर्थ यहां तत्त्वज्ञान से है। जिस ब्राह्मी वृत्ति के द्वारा वह सत्य को देख रहा है। सत्य तो आवृत है। ब्राह्मी वृत्ति वाला मुमुक्षु उस सत्य को देखता है। संसारी जो मिल रहा है उस में हर्ष, जो जा रहा है उस में शोक कर के बैठ जाता है। मुमुक्षु में उस सत्य को ग्रहण करने वाली वृत्ति उत्पन्न होनी चाहिए।

आगे कहते हें "**संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चय :। मय्यर्पित मनो-बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।**"(गीता१२।१४)ऐसा जो योगी है। योगी शब्द का अर्थ कान फटे योगी नहीं। योगी शब्द का अर्थ योगः ब्रह्माकार वृत्ति का नाम है। "आत्मैवाहमस्मि" ब्रह्मैवाहमस्मि जो इस वृत्ति को पकड कर चल रहा है वह योगी है। जो भोगों में मन लगावे वह भोगी। योगी शब्द का छोटा गुरु भाई

भोगी। भोगी का मतलव क्या होता है ? जो अपने मन को दूसरे के घर में रख के बैठा है वह भोगी, और जो अपने मन को अपने में रख के बैठा है वह योगी। यह सब विषय जो है इन में तुम्हारा क्या है ? माया की नगरी है यह। यहां मन को फंसा कर जो जीना चाहे तो उसे शोक मोह नहीं होंगा तो क्या होगा ? जब अपने मन को अपने में ले आओगे तो तुम्हें शोक मोहादि नहीं होंगे। इस लिए योगी "सततं: सतुष्ट:" सदा संतुष्ट है। "यस्य वशीकृतः आत्मा" आत्मा माने यहां मन है। इस का मन वश में है और इस का निश्चय दृढ है। क्या निश्चय है ? "मैं आत्मा हूं" "मैं ब्रह्म हूं" यह दृढ निश्चय है। "नाहमस्मि देहादिसंघात:" यह देह तो कर्म का फल है। मैं देहादिसंघात नहीं हूं। संघात माने इन्द्रियसमुदाय। श्रुति से, शास्त्र से, बुद्धिमान आचार्य के द्वारा पूर्ण रूप से समझो "ब्रह्मैवाहमस्मि" आत्मैवाहमस्मि ऐसा दृढ निश्चय वाला जो मुमुक्षु है "मय्यर्पितमनोबुद्धि" उस का मन और बुद्धि मुझ में है। उस का मन और बुद्धि स्वभाव से ही मुझ में अर्पित है, लगा है।

जैसे अपने लोक जीवन में समझो जिस को हम ठीक से समझ जाते हैं कि यह हमार प्यारा है, हितैषी है, तो मन स्वभाव से ही उधर जाता है। जैसे एक बेटी ससुराल जाती है। वहां उस की सासु है, ससुर है, जेठ है, देवर है। सब की सेवा करती है। सब से प्यार भी करती है परन्तु अन्दर से दृष्टि पति की ओर ही है। जो वहां जो वहां खिला हुआ गुलाब का फूल है, जिस के लिए वह भंवरा बन कर आई है, मन उस का उधर ही है। हां साथ में जो छोटे २ फूल हैं उन के साथ भी घूम-लेती है उन से प्यार भी कर लेती है, परन्तु असली प्यार उधर नकली प्यार इधर इसी तरह इस शरीर को पकडो, इस के सम्बन्ध को पकडो, इन्द्रियों को पकडो पर इन सब में नकली प्यार करो। असली प्यार आत्मा में रखो। "आत्मैवाहमस्मि" ब्रह्मैवाहमस्मि इस वृत्ति को बार २ जाग्रत करो। यह असली प्यार की वृत्ति है। तब तुम्हारे अन्दर शोक मोह नहीं आएगा। अब वहां शोक मोह का विषय ही नहीं।

भगवान कहते है ज्ञानवान मुमुक्षु का जीवन कैसा होना चाहिए ? उस की चर्चा क्या है "अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्" वह सम्पूर्ण भूतो से अद्वेष्टा है। किसी

से उस का द्वेष नहीं। क्यों नही ? उस की दृष्टि नाम रूप में नहीं, आत्मा में है। अपना असली स्वरूप आत्मा ही है। सब अपना ही स्वरूप है। मंत्र कहता है ऊपर, नीचे, आगे, पीछे सब मेरी ही आत्मा है। मेरा ही स्वरूप है तो राग किस में करे और द्वेष किस से करे? एक बात और समझो। राग किस में होता है ? 'मेरे' में होता है कि 'मैं' में होता है ? मैं तो होता नहीं। तो जब सर्व रूप में मैं ही हूं तो राग कहां होगा ? मेरे से अलग क्या है जहां राग करने जाएंगे। द्वेष करने जाएंगे। मेरा भी नहीं, तेरा भी नहीं, मैं ही मैं हूं तो राग द्वेष किस में होगा ?

जैसे सूर्य है। कहते है सूर्य सब जगत का मित्र है। ब्रह्माण्ड में यह इतना दूर होते हुए भी सारे जगत को ताप दे रहा है। इस के ताप से तुम्हारा खाना दाना भी तैयार हो रहा है। तुम्हारा शरीर भी ठीक है। तुम को थोडी गर्मी भी चाहिए। यह सब किस के द्वारा हो रहा है ? सूर्य के द्वारा। फिर भी यह तुम से कुछ मांगता नहीं। इसी प्रकार यह ज्ञानी जगत का मित्र होता है ''अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करूण एव च'' करूणाशील होता है। श्री मद्भागवत में भगवान कृष्ण उद्धव को तत्त्व का उपदेश करते हैं ''देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद् यथोत्थितः। अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा। (श्रीमद् भागवत अ० ११।११।८) भगवान किस को ज्ञान देते हैं ? जो उन का अति प्रिय होता है। जो उत्तम होता है उस को ज्ञान देते हैं। मध्यम को तो धनादि से ही संतुष्ट कर देते हैं। जब तुम सावधान रहोगे, अपने स्वरूप में मन दोगे तो भगवान के प्यारे बन जाओगे। ज्ञानी शरीर में रहते हुए भी शरीर में नहीं है। हम तभी तक शरीर के पंजे में हैं बन्धन में हैं जब तक तत्त्वबोध नहीं होता। दृष्टान्त देते है स्वप्न का। कहते हैं हे उद्धव देख कभी २ स्वप्न में क्या होता है। समुद्र में सजी हुई नौका चल रही है। उस में खूब खाना दाना चल रहा है। Singer party भी है। संगीत चल रहा है। नौका लहरों से टकराती हुई चली जा रही है। सामने से एक ह्वेल मछली आई और नौका उस से टकरा कर उलट गई। अब हम लोग कहां निकलेंगे ? समुद्र में कि घर में ? बुद्धि कुसंस्कार के संयोग में आई तो कुमति हो गई। उस संस्कार ने तुम्हें समुद्र में नौका घुमा दिया। पर वहां न समुद्र है। न नौका है। न ह्वेल मछली है।

आंख खुली तो देखा अपने को बिस्तर पर' इस लिए भगवान कहते है देहस्थो पिनदेहस्थो इस का अर्थ जाग्रत में आना पडेगा। सावधानी में आना पडेगा।

ज्ञानी की दृष्टि में भेद नहीं रहता। इस लिए "निर्ममो निरहंकारः सम दुःखसुखः क्षमी" वह निर्मम निरहंकार होता है। ममता भी दूसरे में होती है। जब स्वरूप बोध नहीं होगा तो ममत्व दीखेगा। जब असली स्वरूप दीखा तो ममत्व भी नहीं रहा। यह तेरी आत्मा ही ब्रह्माण्डात्मा है। यह भूमा ब्रह्म है श्रुति कहती है "एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीडः" जो इस भूमा ब्रह्म को अपने आत्म स्वरूप से जान लेता है वह आत्मरति आत्मक्रीड हो जाता है। वह इस तत्त्व को समझ लेता है कि मेरी आत्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इस लिए उस का सारा प्यार अपनी आत्मा में ही हो जाता है यह सारा जगत उस को अपना ही स्वरूप दीखता है, इस लिए वह उस में खेलता है, क्रीडा करता है।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

१३।६।८५

प्रवचन सं० ५८

"ॐ तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मस्ततेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावा-वात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मत-श्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतोवागात्मतो नामात्मतो मंत्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदं सर्वमिति।"

(छान्दो. ७।२६।१)

"अथातआत्मादेशः" भगवान सनत्कुमार नारद को निमित्त बनाकर बुद्धि मान मनुष्य प्राणी के लिए मार्गदर्शन करते हैं। जिज्ञासु मुमुक्षु इस आत्मा को, इस सत्य तत्त्व को सीधा तो पकडेगा नहीं। सब से बडी समस्या यह है कि इस जीव का कल्याण कैसे हो? यह अपनी आत्मा को कैसे जानेगा? यह मनुष्य

जब तक अपनी दृष्टि को सीधा नहीं करेगा तब तक सत्य को समझेगा नहीं। दृष्टि सिधी होगी तो तत्त्व में पहुंचेगी। इस लिए यहां आत्मा शब्द को पकडते हैं। पहले कहा कि यह भूमा ब्रह्म ही सब कुछ है। परन्तु इस से संतोष नहीं हुआ इस लिए यहां उसी भूमा को आत्मा शब्द से पकडा। क्यों कि वह जानते हैं कि प्राणी मात्र को अपनी आत्मा सब से प्रिय है। आत्मा से ही प्यार करते हैं, पर अपनी इस आत्मा को समझते नहीं। यह माया इस जीव को कुछ समझने नहीं देती। केवल शरीर तक ही अपने को समझ कर चला जाएगा। शरीर के आकार में ही बंधे २ जीए और इस में ही चले गये। सत्य को पकडा ही नहीं। इस लिए आत्मा शब्द को लेकर कह रहे हैं।

आत्मा शब्द का अर्थ "आप्नोति इदं सर्व" श्रुति कहती है "इदं सर्व" यह नाम रूप जगत जो भी दीख रहा है। इस सब को जो अपने से व्याप्त कर के रखे वह आत्मा। जैसे इस सम्पूर्ण शरीर को यह चेतन आत्मा अपनी सत्ता में रखता हैं। इस लिए कहते है "सर्वमाप्नोति"। तीन चीजे मनुष्य के शरीर में हो रही हैं। यह मनुष्य प्राणी ज्ञानेन्द्रियों से विषयो को व्याप्त करता है। कर्मेन्द्रियों से विषयों को पकडता है और मन के सम्बन्ध से भोक्ता बना हुआ हैं। ऋषि कहते हैं **"यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्तितः।"** आदत्ते माने ग्रहण करता है आंख से देखता है। आंख ने रूप को देखा पर रूप को छिना तो नहीं। आंख केवल रूप को देख कर अपने अन्दर पकड लेती है। रूप जहां का तहां ही रहा उस का कोई हिस्सा उस ने काट कर खींचा नहीं। गन्ध को नाक से सुघा पर गन्ध मे कुछ कमी नहीं आई। जितना गन्ध का वहीं था वहीं पडा रहा। इस लिए कहा ज्ञानेन्द्रियां विषयों को व्याप्त करती हैं। कर्मेन्द्रियां विषयों को पकडती हैं। किन्तु इन ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के पिछे जो मन है वह इन सब विषयों का भोक्ता बना हुआ है। कहोगे मन कैसे भोक्ता बन जाता है। जैसे तुम्हारा शरीर है इस की हंडी में दाल भात साग रोटी सब भर देते हो तो कैसे अन्दर चला जाता है? आत्मा के चेतन के सम्बन्ध से। ऐसे ही यह मन आत्मा के चिदाभास से विषयो का भोक्ता बन जाता है। अर्थात् सुख दुःख का भोक्ता बन जाता है। आत्मा के चिदाभाससे यह शरीर परिपूर्ण होने से ही भोक्ता बन जाता है।

इस लिए श्रुति कहती है "इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयां स्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।" (कटोपनिषद् अ. १।३।४) आत्मा जब शरीर मन और इन्द्रियों से युक्त होता है तब मनीषी माने विवेकी इसे भोक्ता कहते हैं। बडे २ लोग जब टेबुल पर खाने बैठते हैं तो छुरी कांटे चमच का उपयोग करते हैं कहते हैं खाने को हाथ नहीं लगाना चाहिएं। इसी प्रकार यह तुम्हारी आत्मा मन एवं इन्द्रियों के द्वारा भोक्ता बन गया। इस शरीर को तो टेबुल समझो। अपनी २ जगह पर कहीं छुरी पडी है कहीं कांटा और कहीं चमच। यह इन्द्रियां क्या हैं ?

आज के किसी बुद्धिमान से कहो कि आत्मा की आंख को बन्द कर के रूप का स्वाद लो। कौन से चमचे से लेगा भला? यह आंख रूपी चमचा बना है इस के लिए। परमात्मा के कान बन्द करके शब्द का स्वाद लो। स्वाद क्या ? यही सब तो स्वाद है दुनियां में। तुम गन्ध का स्वाद लो परमात्मा की नाक को बन्द कर के। तुम को सुन्दर रूप देखने को नहीं मिले, सुन्दर गन्ध सूंघने को नहीं मिले, सुन्दर स्पर्श छुने को नहीं मिले तो क्या life है तुम्हारी ? मान लो तुम को सारी दुनियां का बादशाह बना दिया जाए। और यह यन्त्र जो परमात्मा के दिए हुए हैं इन को बन्द कर दिया जाए। तो क्या है तुम्हारा जीवन ? जैसे रेगिस्तान है ऐसा जीवन बन जाएगा तुम्हारा। इस लिए परमात्मा के दिए हुए जो साधन हैं उन को ठीक रखो। यह मत समझो कि हम ने जो आविष्कार किए हैं उन से हमें तृप्ति मिलती है। कोई भी तृप्ति नहीं। इस लिए मंत्र कहता है कि ज्ञानेन्द्रियों और मन के सम्बन्ध से जो भोक्ता बना हुआ है किन्तु यह सब होते हुए भी इन सब से न्यारा हो कर वह आत्मा अपनी सत्ता में ही है।

उदाहरण के लिए समझो जाग्रत अवस्था में हमलोग ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों और मन का उपयोग करते हैं। कहते हैं इन के द्वारा सब व्यवहार हो रहा है। यह खाना पीना रोना गाना सब उस की सत्ता में हो रहा है। पर जब सुषुप्ति में चले जाते हैं उस समय न तुम्हारी कर्मेन्द्रियां काम करती हैं, न ज्ञानेन्द्रियां और न मन ही काम करता है। अब बताओ किस बात का दुःख है तुम्हें वहां ? कितना सुख है तुम को वहां ? दो तीन चार घण्टे जो गाढ निद्रा है, सुषुप्ति है, उस में तुम्हें कोई दुःख नहीं। वहां आनन्द की एकाकार वृत्ति बह रही है।

इस सुषुप्ति के बिना तुम्हारा जीवन ही ठंडा हो जाए। इस लिए अपनी इस सुषुप्ति की रक्षा करो। बुद्धिमान कर्म तो करे, किन्तु इस बात का सदा ध्यान रखे कि जाग्रत में यदि कर्म में गडबड करेगा तो निद्रा नहीं आएगी। सुषुप्ति खरब हो जाएगी। तुम्हारे कर्म ने तुम्हारी निद्रा ही छीन ली तो बताओ हाल क्य होगा तुम्हारा ? इस लिए विवेक से चलने की जरूरत है। कर्म भी करना है, किन्तु उस कर्म के साथ में अन्तःकरण के विकारों को नही मिलाना। मिलावट तो करनी पडती है पर अधिक मिश्रण मत करो। ज्यादा काम का मिश्रण मत करो। ज्यादा क्रोध का मिश्रण मत करो। ज्यादा लोभ का मिश्रण मत करो। ज्यादा द्वेष का मिश्रण मत करो। नहीं तो तुम्हारा कर्म बिगड जाएगा।

महर्षि पातञ्जलि कर्म की व्याख्या करते हैं **"कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।।"** (योगदर्शन ४।७) कौन से कर्म सुखी करते हैं ? कौन से कर्म दुखी करते हैं और कौन से कर्म मोक्ष की ओर ले जाते हैं ? यह जानना भी जरूरी है नही तो जन्मों और मरो। यह भी कोई जीवन है ? पक्षी कितने है? अण्डे दिए, उन में से बच्चे निकले, उडे मर गये। यह जीवन नहीं है। जीवन सत्य है। इस सत्य को पकडो। सोचो तो सही "कोनोहमस्मि" मैं कौन हूँ ? महर्षि कहते हैं योगी मुमुक्षु वह है जिस का मन आत्मा के स्वरूप में विलीन होता है। भोगों में हो पशु का मन भी जाता है। निद्रा में तो पशु का मन भी जाता है। यदि तुम्हारा मन भी केवल भोगों तक ही केवल निद्रा तक ही जावे तो कोई वात नहीं बनी। क्या जीवन है तुम्हारा। तुम्हारे मन में आत्मा का स्वरूप आना चाहिए। जिस चेतन के बिना तूम एक क्षण भी जी नहीं सकते। यदि जी लो तो इस आत्मा की बात करना ही बन्द कर दें। किन्तु यह स्वभाव नहीं। सोचो तो तुम्हारा जीवन कितना महान है। इस लिए ब्रह्म है। 'अस्ति'।

महर्षि कहते है योगी का कर्म अशुल्क, अकृष्ण कर्म होता है। कर्म तीन होते हैं शुक्ल कर्म, कृष्ण कर्म, शुक्लकृष्ण मिश्रित कर्म। अशुक्लअकृष्ण कर्म माने जिस कर्म के साथ कोई वासना न हो। कोई कामना नहीं होती। यह वासना रहित कर्म निर्वासन कर्म हुआ। यह वासना रहित कर्म क्या करे गा ? तुह्मारे

अन्त:करण को पवित्र कर देगा । एक राजा के पास दो कलाकार पहुंचे और राजा से प्रार्थना की कि हमें कुछ काम दीजिए हम आप के देश के नागरिक हैं हमारे खाने पीनेका प्रबन्ध कीजिए । राजा ने पूछा तुम लोग कला क्या जानते हो ? दोनों बोले हम कलाकार हैं । हमें कोई विशाल महल दीजिए हम चित्र-कारी करें गे । राजा ने कहा ठीक है तुह्मारे खाने पीने का प्रबन्ध हो जाएगा । दोनों को एक राजमहल में लगा दिया । दोनों आमने सामने की दीवार पर पालिश करने लगे । बीच में पर्दा लगा दिया । बारह वर्ष के बाद राजा देखने आया । देखा एक दीवार पर बडी सुन्दर चित्रकारी की हुई है । बडे सुन्दर चित्र बने हुए हैं । देख कर राजा प्रसन्न हो गया । दूसरी ओर जा कर देखा तो वहां कुछ भी नहीं । केवल पालिश ही हो रही है । दीवार की घिसाई हो रही है । राजा ने देखा तो कहा कि तुम ने तो कुछ भी काम नहीं किया । देखो तुह्मारे साथी ने कितनी सुन्दर चित्रकारी की है । तब वह चित्रकार बोला महाराज यह बीच का पर्दा हटवा दीजिए । पर्दा हटाया गया तो सामने की दीवार की सारी चित्रकारी इस दीवार में ऐसे दीखने लगी जैसे शीशे के अन्दर ही सारे चित्र बने हुए हों । उस के चित्र तो दीवार के ऊपर दीख रहे थे और इस के दीवार के भीतर दीखने लगे । दोनों बुद्धिमान है पर अच्छी कलाकारी किस की हुई ? तो जीवन के बारे में ऐसे ही कलाकार बनो ।

योगी अपने जीवन के बारे में सुन्दर कलाकार होता है । इस लिए वह कर्म के साथ वासना को नहीं मिलाता । इस प्रकार उस के द्वारा जो कर्म हुआ वह अशुक्ल कर्म हुआ । सामान्य मनुष्य कर्म के साथ वासना की पालिश कर देता है । इस लिए उस का कर्म शुक्ल कर्म कृष्ण कर्म हो जाता है । वासना युक्त कर्म सकाम कर्म कहलाता है । इस सकाम कर्म के द्वारा तुम ऊंचे से ऊंचे लोक प्राप्त कर सकते हो, ब्रह्म लोक तक भी जा सकते हो । शुक्ल कर्म तो तुम को ऊंचे दिव्य भोगों में ले जाएगा । किन्तु कृष्ण कर्म, कृष्ण कर्म माने पाप कर्म तुह्में नीचे की ओर ले जाएगा । जैसे लोहा बांध कर नदी में तैरने लगो तो लोहा क्या काम करेगा ? नीचे खींचेगा कि नहीं ? और सूखी लकडी का टुकडा बांध लो और तैरने लगो । वो तुह्में ऊपर उठाए रखेगा । नीचे नहीं गिरने देगा। बस इसी को शुक्ल और कृष्ण कर्म का व्याख्यान समझो । शुक्ल कर्म तुम को

ऊपर उठाएगा और कृष्ण कर्म तुम को नीचे की योनि में ले जाएगा। जब शुक्ल और कृष्ण कर्म समान मात्रा में मिल जाते है तो मनुष्य योनि के कारण बनते हैं। इन को धर्माधर्म भी कहते हैं। जब यह समान कक्षा में होते है तो जीव मनुष्य योनि में आता है। अब जिस के पुण्य कर्म होंगे तो जीवन में कभी विमार नहीं पडता। कभी कान भी गर्म नहीं होता। जब देखो तब मस्त रहता है। किन्तु काम प्रधान कर्म रोगोंवाला जीवन देते हैं। हर समय डाक्टर की खाने दाने की जगह बनी रहती है। डाक्टरों को भी खाना दाना तो चाहिए ही। हल तो चलाएगा नहीं वह। यह शरीर उस के लिए सुन्दर खेत हैं चलते फिरते। इन में खेती करने वाला डाक्टर भी किसान की तरह ही समझो। दोनों कर्म बराबर होंगे तो सुख दुख बराबर आएगा। छान्दोग्य श्रुति है "तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते"

कर्म से जिस लोक का चयन किया। कर्म से जिस लोक को तुम ने प्राप्त किया। 'क्षीयते' पुण्य कर्म क्षीण हो जाएंगे। अपने शरीर का ही दृष्टान्त समझो। हम लोंग शरीर के कमजोर होने का धन्धा करते हैं या बलवान होने का ? बलवान होने का। किन्तु हो रहा है कमजोर। इस का मतलब यह हुआ कि इस ने तो कमजोर होना ही है। ठीक है हम संयम से चलेंगे, 'युक्ताहार विहार' रखेंगे तो रोग कम आए गा। दीर्घ आयु तक जीओ गे। पर बूढें तो काल के अनुसार हो ही जाओ गे। यदि तुम कहो कि बूढें हों ही नहीं तो यह कैसे होगा ? यह मनुष्य शरीर आगे जा रहा है। काल इस के पीछे पडा हुआ है। यह सब वस्तुओं को क्षीण कर रहा है, तो सोचो कि यहां से छूटने के बाद कहाँ जाएगा ?

आज कल के बुद्धिवाली जिन को अर्द्ध विक्षिप्त भी कहा जाए तो अतिवाद नही होगा। उनका कहना है कि मनुष्य बन गया तो फिर मनुष्य ही बनेगा। यह विकासवाद है। यह फिर पशु नहीं बनेगा पक्षी नहीं बनेगा। कीट पतङ्ग नहीं बनेगा। जैसे बुढ्ढे को बच्चा नहीं बना सकते। बच्चे से कुमार, कुमार से जवान, जवान से बुढ्ढा। इसी प्रकार एक बार मनुष्य बन गया तो फिर पशु पक्षी नहीं बन सकता। इस का क्या प्रभाव है ? कहोगे कि यह इतना उन्नत हो गया है तो आगे भी उन्नत ही होगा। इस का कोई प्रमाण नहीं। यदि ऐसा

होगा तो पाप पुण्य की व्याख्या क्या होगी ? एक ने तो महान पुण्य किया है और कर रहा है। और दूसरा महान पाप कर रहा है तो पुण्य कर्मा तो महान गति में जा रहा है और यदि पाप करने वाला भी ऊंची गति में जाएगा तो, पुण्य की क्या व्याख्या होगी। पुण्य का मतलब क्या होगा ? तो कहता है व्याख्या नहीं होती तो मत होवे पर जो मनुष्य बन गया है वह मनुष्य ही बनेगा ।

अपने मन में ही सोचो कि तुम्हारे अन्दर सत्य कर्म के लिए, पुण्य के लिए पश्चात्ताप होता है या पाप कर्म के लिए? चोर की छाती पर हाथ रख कर पूछो कि चोरी करना अच्छा है क्या? तो वह क्या कहेगा ? चोर भी चोरी को अच्छा नहीं कहेगा। जिस कर्म को वह कर रहा है उस को स्वयं भी अच्छा नहीं मानता तो यह पाप कर्म है। जिस कर्म की स्वयं भी प्रशंसा करें वह पुण्य कर्म है। अब यदि दोनों का फल एक जैसा ही हो, फल में अन्तर न हो तो हाल हो गया टके सेर खाजा टके सेर भाजा। एक सुन्दर नगर में गुरू चेला दोनों घूमते २ पहुंच गये। खाने का समय हुआ तो बाजार पहुंचे और पूछा यह क्या है ? खाजा है। कैसे है ? कहते हैं दो पैसे सेर। पालक की भाजी भी दो पैसे सेर । बादाम पिस्ता भी दो पैसे सेर। चेले ने कहा गुरू जी यह देश तो बहुत अच्छा है, यहीं रहो। गुरू जी बोले यहां रहना ठीक नहीं बेटा । जिस देश में वस्तुका मूल्य ठीक न हो वहां रहना खतरनाक है। यहाँ बुद्धि का प्रयोग नहीं हो रहा । इस लिए यहां रहना ठीक नहीं। किसी दूसरे गांव में चलो। वहां रहेंगे। चेले ने कहा मैं तो यहीं रहूंगा गुरू जी आप चले जाईए। भला इस से बढिया खाने को कहां मिलेगा। गुरू जी बोले अच्छा, मैं तो जा रहा हूं। फलां गांव में ठहरूंगा कभी मुसीबत आए तो पहुंच जाना । कभी बडा दुख आ जाए तो मुझे याद कर लेना। गुरू जी अन्यत्र चले गये। चेला वहीं रह गया। अब चेला रोज बादाम और पिस्ता खाकर खूब मोटा हो गया। एक बार वहां इतने जोर की वर्षा हुई कि एक सेठ का मकान गिर गया। वह राजा के पास पहुंचा और शिकायत की कि मैं ने तो अभी नया घर बनवाया है पर वर्षा से गिर गया। राजा ने कहा कारीगर को बुलाओ। कारीगर को बुलाया गया। कारीगर बोला महाराज मैं ने तो अच्छी तरह से बनाया था कही शायद मसाले मे पानी ज्यादा पड गया होगा तो कोई गडबड हो गई होगी। कहा मसालि बाले को पकडो। माशकी

बुलाया गया। उस ने कहा मेरा क्या दोष। पशु ही इतने बडे २ हो गये हैं, उन को बढिया २ घास मिलती है। घास खाने से पशु बडे हो गये। किसान को बुलाया गया और आज्ञा दी कि इस को फांसी दे दी जाए। यही अपराधी है। फांसी का फंदा जब लाया गया तो हुआ यह कि किसान का गला छोटा है इस में यह फंदा नहीं लग सकता। तो राजा ने आज्ञा दी कि किसी मोटे गलेवाले को पकड कर ले आओ और फांसी पर चढा दो। राजा के नौकर गये तो चेला जी उन की पकड में आ गये। अब उस को गुरुजी की याद आई और उस ने राजा से प्रार्थना की कि ठीक है आप का नियम है तो मुझे फांसी पर लटका दो परन्तु पास के गांव में मेरे गुरु जी हैं आप उन को बुलवा दीजिए। मुझें उन के दर्शन करना है। गुरु जी को बुलवाया गया। गुरु जी आए तो चेला धीरे से उन के कान में बोला कि यह मुसीवत है। गुरु जी ने कहा चिन्ता मत करो। युक्ति से काम लेना पडेगा।

देखो जब तुम्हें फांसी लगाने लगेंगे तब हम दोनों लडने लगेंगें। मैं कहूंगा कि मुझे फांसी चढने दो और तुम कहना नहीं मुझे चढने दो। फिर मैं सम्भाल लूंगा। जब दोनों लढने लगे तो पूछा गया कि क्या बात है? गुरु जी बोले कि इस समय स्वर्ग का दरवाजा खुला हुआ है। जो भी इस घडी में मरेगा वह सीधा स्वर्ग जाएगा। इतना शुभ मुहूर्त्त है इस लिए मैं चाहता हूं कि मैं मरूं और चेला चाहता है कि मैं मरूं। राजा को बुलाया गया। राजा ने जब ऐसा सुना तो बोला तुम दोनों मत लडो। मुझे ही फांसी चढा दो। मुझे ही मरने दो। तुम लोग तो महात्मा हो अपने तप ध्यान से भी स्वर्ग पहुंच सकते हो पर मेरे लिए ऐसा शुभ अवसर मुश्किल है। तो इस प्रकार वहां से गुरु चेला जान बचा कर भागे।

कहने का तात्पर्य यह है कि यह संसार बडा विचित्र है। सत्य को जब तक नहीं समझोगे कहीं न कहीं फंस जाओगे इस लिए विकासवाद के विषय में भी विचार करना पडेगा। यह मनुष्य तो बन गया पर कैसे बना? यह मिश्रित कर्म से बना है। आगे भी ऐसा सुन्दर कर्म होगा तभी ऊंची योनि मिलेगी अन्यथा नीचे ही जाना पडेगा। और कर्म के पीछे ज्ञान बैठा है। आत्मा परमा-

त्मा का ज्ञान। ज्ञान नहीं होगा तो श्रद्धा नहीं होगी। श्रद्धा के विना, ज्ञान के विना कर्म ठीक नहीं होगा। ग्रात्मा परमात्मा के ज्ञान से ही परलोक के ग्रस्तित्व में श्रद्धा वन जाती है। यह श्रद्धा हमारे कर्म को शुद्ध करेगा। इस लिए यह मानना पडेगा कि यह गलत धारणा है कि मनुष्य बन कर फिर मनुष्य ही बनेगा यह केवल वितण्डा वाद है। इस के पीछे ज्ञान नहीं है। इस लिए कहना पडेगा कि जीव का ज्ञान जितना उन्नत होगा, कर्म जितना उन्नत होगा उतनी ही ऊंची योनि में वह जाएगा। ग्रब यदि कर्म विशेष होगा तो यह जीव भोग योनियों में जाता रहेगा। स्वर्ग में भी चला जाएगा। कर्म हैं तो तुच्छ, तामस योनियों में चला जाता है। यदि पाप कम ग्रौर पुण्य ग्रधिक होगा तो मनुष्य बनेगा। सुन्दर ब्राह्मण कुल में, क्षत्रिय कुल में जन्म लेगा।

इस लिए कहते हैं वेदों का सिद्धान्त ग्रकाट्य है। बुद्धि में सुन्दर ज्ञान भरो। सुन्दर विचार भरो। बुद्धि की वैग (Bag) मत समझो जो मिला सो भरते गये। जैसे पागल को रास्ते में जो भी मिलता है भरता जाता है। हमारी यह बुद्धि बडी सुन्दर है। यदि इस में कूडा कचरा भरते जाग्रोगे तो इसे खाली करना मुश्किल हो जाएगा। बुद्धि में सुन्दर विचार भरोगे तो यह बुद्धि तुम को ऊपर उठाएगी। नहीं तो बुद्धि तामस होती जाएगी। नीचे दव जाएगी। इस लिए बुद्धिमान मुमुक्षु सत्य की खोज करता है ग्रौर इस सत्य के द्वारा वह ग्रागे बढता है। भगवान कहते हैं **"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते॥"** (गीता ग्र. १०।१०) जो मेरे भक्त सतत मुझ में युक्त हैं उन्हें हम बुद्धियोग देते हैं। यहां भगवान सनत्कुमार नारद को भूमा ब्रह्म का ग्रात्मा शब्द से ग्रादेश करते हैं। "यदाप्नोति यदादत्ते" ग्रहं २ रूप से सत्ता रूप से भासने वाली ग्रात्मा ही भूमा है। इस को समझो। जो इस सत्यं को समझ जाएगा "स स्वराड् भवति" वह स्वराट हो जाएगा ग्रात्मा का ग्रानन्द लेगा। 'स्वराड्' माने उस के ऊपर किसी का शासन नहीं रहेगा। ग्रागे इस की ग्रौर व्याख्या करेंगें।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

प्रवचन सं० ५९

१७।६।८५

"ॐ अथात आत्मादेश:" "तदेष श्लोको न पश्यो मृत्यु पश्यति न रोगं नोत दु:खतां सर्वं ह पश्यः पश्यति"

(छान्दो ७।२६।२)

भगवान सनत्कुमार कुमार कहते हैं हे नारद पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण का जो भेद है यह भी जीव दृष्टि में है। उस परिपूर्ण ब्रह्म में विश्वात्मा में भेद दृष्टि है ही नहीं। वो आत्मा अखंड है। अद्वैत है। एक रस है। यह जो भी आकार प्रकार है तुह्मारे शरीर तक ही है। इस से आगे वह स्वमहिमा में रहने वाला सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा ही है इस लिए श्रुति कहती है **अनेजदेकं "मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वादधाति।** (ईशावास्योपनिषद् - ४) वो जो तत्त्व है वो एक है। उस में क्रिया नहीं। देखने में तो ऐसा लगता है कि वहाँ क्रिया नहीं है। मंत्र कहता है, मानो मंत्र भगवान से बात कर रहा है कि हे भगवन तुम्हारी शकल देख कर ऐसा मालूम पडता है कि तुम मन से भी अधिक शक्तिशाली हो, गतिशील हो, अद्वैत दीखने पर भी, जहां २ मन जाता है तुम वहाँ पहले ही पहुंचे हुए होते हो। "मनसो जवीयो।" इस का अर्थ यह नहीं कि मन दौडता रहता है। तुह्मारी सृष्टि का सर्वाधिक गतिशील यन्त्र मन दौडे २ घूमता है पर तुम्हारी सत्ता का अन्त नहीं पा रहा। 'नैनद्देवा" जब मन ही पार नहीं पा सकता तो इन्द्रियों की तो बात ही क्या करें। यह जो देव हैं, देव माने इन्द्रियां, यह इन्द्रियां तो मन के पीछे चलने वाली हैं। जहां २ मन जाता है तुम तो पहले ही वहां बैठे हो। इस प्रकार मंत्र मुमुक्षु के सुबोध के लिए आत्मा की परिपूर्णता का व्याख्यान करता है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद तू अपनी इस आत्मा को देह परिच्छिन्न मत मान। इस आत्मा को देह परिच्छेद से बाहर कर।

तुम ने इस को देहाकार मान लिया है इस लिए मृत्यु से डर रहा है। अगर इस आत्मा को व्यापक रूप से स्वीकार करोगे तो मृत्यु का क्या स्वरूप होगा ? मृत्यु के रूप में भी तो वही आत्मा ही है।

मुमुक्षु को घबराना नहीं चाहिए "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।" 'एकत्वं" अद्वितीयं। अद्वितीय ही चिदात्मा है। उस को मृत्यु से कोई भय नहीं। मृत्यु उन को डराता है जिनको मृत्यु चोर समझता है। चोर ही तो पुलिस से डरता है। जिस ने चोरी ही नहीं की, उस को पुलिस से क्या भय है ? कहीं से शोक को चुराया, कहीं से मोह को चुराया, कहीं से राग को चुराया और कहीं से द्वेषको चुराया। अब गठर बांध कर सारे भय के इधर उधर घूमता फिरता है। मृत्यु से नहीं डरेगा तो क्या करेगा ? पर मुमुक्षु इस से नहीं घबराता, चिन्ता नहीं करता। "आत्मैवेदं सर्वं" यह सब आत्मा ही है यह सब मैं ही हूं। जिस को हम अन्तरात्मा कह रहे हैं विश्वात्मा कह रहे हैं। उसे अपने हृदय में स्थित देखता है। "एवंपश्यन्" इस प्रकार आत्म दर्शन कर रहा है। 'एवं विजानन् आत्मरति र्भवति' यह विद्वान आत्मरति होगा। रति माने जहां श्रद्धा, प्रेम, स्नेह और राग इकट्ठे हों वहां रति शब्द का प्रयोग किया जाता है। रति का मतलब कोई अन्धा प्यार नहीं। लोक में पति की पत्नी में रति होती है। विवाह के समय सप्तपदी होती है। पहले तीन पग में स्त्री आगे चलती है पर चौथे में पुरुष आगे हो जाता है। इस का तात्पर्य कि माया अधिष्ठान में पहुंच गई। पुरूष माया का अधिष्ठान है। पुरूष माने परमात्मा प्रकृति माने उस की माया शक्ति त्रिगुणा प्रकृति। यह भारतीय विवाह कोई लडका लडकी का विवाह नहीं यह प्रकृति पुरूष का सम्बन्ध है। पहले यह स्वतंत्र थी चौथे पद में इस ने आत्म समर्पण कर दिया। अब पुरूष प्रधान हो गया और माया आश्रित हो गई। आश्रय बडा होता है आश्रित छोटा होता है। इस लिए पति पत्नी से स्नेह भी करता है। उस के बराबर भी है इस लिए पति पत्नी से प्रेम भी करता है। राग माने रक्षा भी करनी पडती है इस लिए राग भी करता है और श्रद्धा भी है क्यों कि वह जानता है कि यह मेरे वंश की वृद्धि करने वाली है। महान आत्मा को जन्म देने वाली है। इस प्रकार पति की पत्नी में रति होती है। यही पारिवारिक जीवन का सुख भी है। किन्तु सोचो इस रति

में जीते जीते, जैसे हापुस आम को चूसते २ गुठली और छिलका रह गया, बस यही रह जाता है । इस लिए बुद्धिमान दृष्टि ऊपर रखे । पति पत्नी यदि दोनों ब्रह्म वादी हों तो लोक जीवन में इन का जीवन भोग तपोमय जीवन हो जाएगा । उस में तप भी आएगा । उस में त्याग भी आएगा और नहीं तो आसुरी वृत्ति का भोग ही रहेगा । कुछ भी यहां से लेकर नहीं जांएगे । खाली जाएंगे ।

इस लिए मुमुक्षु आत्मा की ओर चले । इस लोक में ऐसे शरीर साधना में रहे तो आत्मरति है । शरीर को साधन मान कर चलो । विद्वान इस से ऊपर कर आत्मा में पहुंच जाता है । जो शरीर को लेकर चला वो शरीर रति है । परस्पर रति है । क्रीडा माने खेल किसी दूसरे की अपेक्षा से खेल होता है । किन्तु विद्वान जो ज्ञानी है वो अपनी आत्मा से खेलता है । विद्वान अपने से आप ही खेलता है । उस को किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं । वह खेलने के लिए किसी दूसरे को नहीं बुलाता । क्यों कि वह दूसरे को मिथ्या समझता है ।

जैसे स्वप्न में पुत्र हुआ । खुश भी हुआ । पेडे भी बांटे । धक्का लगा और पेडे का थाल गिर गया । जागे तो खाट पर । न वहां पुत्र और न पेडे का थाल । यह माया ऐसी है । ज्ञान वान की दृष्टि में यह सब माया मात्र है । जैसे स्वप्न का प्रपञ्च, आंख खुली तो कुछ भी नहीं । यहां आंख खुलने पर कुछ नहीं और वहां आंख बन्द होने पर कुछ नहीं । जाग्रत में आंख बन्द हो जाने पर कुछ नहीं । पर इधर से आंख बन्द हुई और उधर से खुल गई । यह जीव बडी सावधानी से इस सत्य को स्वीकार करे । मुमुक्षु श्रुति से, शास्त्र से, बुद्धिमान आचार्य से ब्रह्मभाव को समझे । यद्यपि सुनते २ समझ तो जाता है पर उस की निष्ठा नहीं ले पाती । क्यों कि दो चीज की कमी रह जाती है । एक तो वैराग्य की कमी । पदार्थ सामने आने पर यह पिघल जाता है, उस के मोह में फंस जाता है । श्रद्धा तो बनी हुई है पर मोह के कारण ब्रह्मवेत्ता होने पर भी शोक जाता नहीं । विक्षेप बना रहता है । जब भोग के सामने हम फिसल गये तो भोग ने हम को पकड लिया । परन्तु जो आत्मवेत्ता है जो जगत के भोगों में वैराग्य रखता है । शुरू से ही उस के मन में वैराग्य है तप भी है । अब यदि ब्रह्माकारवृत्ति का अभ्यास भी होगा तो वह आगे बढ जाएगा । अन्तर्मुखी वृत्ति

में अभ्यास की कमी और वैराग्य की कमी मुमुक्षु को आगे नहीं बढने देती।

सोचो हमारे राग करने से भी क्या होगा। इच्छा भी करो तो ज्ञान पूर्वक करो। अन्धी इच्छा मत करो। इस से कुछ लाभ नहीं होगा। तुम्हारा मन फंस जाएगा। अभ्यास और वैराग्य दोनों साधनों को जो पकड कर चलेगा वह ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ होगा। जिज्ञासु तो सब हैं। सभी साधन कर रहे हैं। पढाई कर रहे हैं। किन्तु पुरस्कार का भागी वही होगा जो श्रेष्ठ होगा। ऐसे ही ब्रह्म वेत्ता तो है पर वरिष्ठ वही होगा जो आत्मा परमात्मा का बोध धारण करेगा। "स स्वराट भवति" "स कामचारो भवति" ऐसा जो ज्ञानी होता है वह स्वराट् हो जाता है। वह सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छा चारी हो जाता है माने अपनी इच्छा से जा सकता है। इस को कोई रोकने वाला नहीं। जैसे जो सम्राट है, जो राजा है, वह अपने देश में जहां चाहे घूम सकता है। ऐसे ही यह ज्ञानी इस माया के साम्राज्य में घूम सकता है। तात्पर्य यह है कि फिर यह माया उस को तंग नहीं करती। परन्तु जो इतनी ऊंची स्थिति में नहीं पहुंचा उस के लिए कहते हैं "अन्यथा तो विदुः अन्यराजान:"जिन का राजा दूसरा है। जैसे हम यहां रहते हैं मानलो हमारा शासक दूसरा है। उस ने कहा वाणी को बन्द करो तो हम को बोलना बन्द करना पडेगा। तो माने राष्ट्र के अन्दर जो भी व्यक्ति होगा उस को वहां के प्रधान का शासन मानना पडेगा। ऐसे ही यह जीव जब तक आत्मा के स्वराज्य में नहीं पहुंचेगा तब तक यह कर्म के अधीन है। जहां जाएगा यह जीव परतंत्र रहेगा और जब तक परतंत्र है तब तक इस के पीछे भय भी है। इस को रोगों का भय है, मृत्यु का भय है। किन्तु जहां यह आत्मा के स्वराज्य में पहुंच गया तो "सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति" यह स्वतंत्र हो जाएगा। इस लिए मंत्र कहता है "स स्वराट् भवति" वह स्वराट् हो जाएगा। किन्तु अज्ञानी के लिए कहा "ते क्षय्यलोका: भवन्ति" वह क्षय्य लोकों को प्राप्त होता है।

जैसे गरीब जहां भी जाएगा फूंस की झोपडी ही बनाएगा। और गर्मी के दिनों ने जरा सी दिया सिलाई लग गई तो क्या हाल होगा। इसी तरह यह अज्ञानी जहां भी जाएगा इस के वह लोक क्षय्य होंगे। नष्ट होने वाले होंगे। अब लोक शब्द का अर्थ स्वर्ग लोक या अन्य कोई लोक नहीं। तत् तत् शरीर

ही लोक हैं। "लोक्यते भुज्यते इति लोकः" जिस योनि का भोगलेने के लिए जो आकार धारण करेगा, जो शरीर धारण करेगा वही इस का लोक होगा। जैसे अपने इस शरीर को ही देखो यह कौन सा लोक है ? यह पृथ्वी लोक नहीं। इसी का नाम मनुष्य लोक है। इस शरीर को अमर वनाने के लिए हम कितना प्रयत्न करते हैं। कितनी इस पर पालिश कर रहे हैं। कितना सुन्दर २ भोजन इस को दे रहे हैं। किन्तु फिर भी यह अमर हुआ क्या ? इस मूर्ख के लिए हम काला पीला भी कर लेते हैं। क्या धीरे २ अपना रंग वदलता जा रहा है। एक दिन यह कितना सुन्दर था, सुडौल था। कितना कसा हुआ था। पर अब कैसा ढीला होता जा रहा है। वढिया पापड की तरह, हड्डियां कुट्‌कुट्‌ करती हैं। जैसे यह मनुष्य लोक धीरे २ अपने आप ही क्षीण हो रहा है। हम लोग इस को क्षीण नहीं कर रहे। हम तो इस की रक्षा में ही लगे हुए हैं किन्तु यह फिर भी क्षीण होता जारहा है। क्यों ? यह पापड की तरह सिक रहा है। इस के जो वेटा वेटी हैं जो इस शरीर से निकले हैं, कहते हैं पिता जी आप चुपचाप बैठे रहो हम सव सम्भाल लेंगे। तो क्या करोगे ? बैठना ही पडेगा। इसी प्रकार देव लोक में गया तो देव शरीर मिला। जो जो भी शरीर मिलेगा वह क्षय्य ही होगा। जब शरीर भाव को छोडेगा तब अमरत्व में आएगा। कौन सा शरीर छोडना है ? स्थूल शरीर तो गधा भी छोडता है। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर को छोड़ना है। इन दो शरीरों को छोडने का नाम 'विदेह कैवल्य' है। स्थूल शरीर को तो पशु पक्षी भी छोडेंगे तो क्या फर्क पडेगा। किन्तु यह जो ब्रह्मविद्या है इस के द्वारा जो फल होगा उस से अविद्या के चक्कर से बाहर हो जाएगा। अविद्या माने कारण शरीर से छूट जाएगा। सूक्ष्म शरीर से छूट जाएगा। सूक्ष्म शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां पंच प्राण मन और वुद्धि सत्रह तत्त्व हैं। यह जाल है, नैट (net) इस जाल के अन्दर यह जी जीव है, मैं और मेरा मेरा करता जारहा है। न यहां मैं निकला न मेरा। इस जाल से वाहर हो जाने का नाम है विदेह कैवल्य।

इस जगत का जो प्रकाश है, जीवन है, इस अन्तरात्मा से ही है। यदि आत्मा का प्रकाश नहीं मिलेगा, तो कोई चीज प्रकाश में आएगी ही नहीं। जैसे अपने शरीर को ही देखो। यह शरीर जब तक चेतन के करंट में है तभी तक

प्रकाश मान है। यदि चेतन के करंट से दूर हो गया तो कोई भी प्रकाश इसे प्रकाशित नहीं कर सकता। मंत्र है "**न तत्र सूर्योभाति, न चन्द्रतारकं। नेमा विद्युतो भान्ति, कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्यभासा सर्वमिदं विभाति**" (श्वेताश्वतर उपनिषद अ० ६।१४) इस आत्मा को सूर्य चन्द्र, तारे विद्युत कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता। यह सब का प्रकाशक स्वयं प्रकाश रूप है। जो कुछ भी जगत में भासमान हो रहा है सब इस आत्मज्योति चेतन ज्योति के प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है यह सारा ब्रह्माण्ड भी एक शरीर ही है जिस का यह सारा ब्रह्माण्ड शरीर है वो विश्वात्मा है। जो सारे ब्रह्माण्ड की आत्मा है वही तुम्हारे शरीर की भी आत्मा है। जैसे जो सारे ब्रह्माण्ड का आकाश वो ही हमारे घर का आकाश। हां हम ने उन दीवारों को बनाया हैं जिस के द्वारा वो हमारे घर का आकाश है। वह आकाश हमारा हो गया हम चाहें तो किसी को अन्दर आने दें। यह लोक जीवन है। जैसे उस आकाश के बिना तुम्हारे घर का आकाश नहीं ऐसे ही उस विश्वात्मा से भिन्न तुम्हारी आत्मा नहीं। बुद्धिमान मुमुक्षु अपनी अन्तरात्मा में उस विश्वात्मा की भावना करे और इसी में मन को लगावे। मन को उस इस आत्मा से टकराओ। मन यदि वहां पहुंच गया। मन यदि उस में मिल गया तो हमारी यात्रा समझो पूरी हो गई। नहीं तो यह यात्रा ऐसे ही चलती रहेगी। "**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनं। इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया पारे पाहि मुरारे। भज गोविंदम्**" 'पाहि मुरारे' हे मुरारे रक्षा करो।

इस लिए भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद तुम शब्द से अर्थ में प्रवेश करो। अर्थ में प्रवेश करोगे तो व्यापक ब्रह्म जिस को भूमा शब्द से कह रहे हैं उस भूमा रूप ब्रह्म का अपनी आत्मा में व्यापक रूप से अनुभव करोगे। तभी शोक मोह से बाहर हो सकोगे। इस जन्म मरण के भय से छुट्टी पाने का एक मात्र साधन यह उपनिषद विद्या ही है। जिस को ब्रह्मविद्या कहते हैं। इस को यहां मन्त्र स्पष्ट करता है "**न पश्यो मृत्युः पश्यति न रोगं नोत दुखतां सर्वं ह पश्यः पश्यति**" यह जीव जब ब्रह्मविद्या के द्वारा ब्रह्मभाव में पहुचता है तो इस नाम रूप जगत को ब्रह्म के बाहर कुछ नहीं समझता, जब व्यापक भाव में प्रवेश कर गया तो 'अभय पद' में पहुंच गया। "तत्र को मोहः का शोकः"

जैसे लकड़ी को कीड़ा खा रहा है ऐसे ही काल रुपी कीड़ा इस शरीरको खा रहा है। इस लिए यह तो निश्चय करना है कि यह जीवन असली जीवन नहीं। एक दिन इस जीवन से ऊपर उठना तो पड़ेगा। तो जीवन के अच्छे दिनों में विचार को पकड़ो। और धीरे धीरे आगे बढ़ो। यह प्रकाश सन्यास आश्रम का ज्ञान सत्र जो प्रति वर्ष इन्हीं दिनों में चलता है। जो चीज शुरु होती है, बन्द भी होती है। यहां हम विश्राम की बात करते हैं बन्द की बात नहीं करते। तो कल हम इसका विश्राम करेंगे किन्तु प्रवचनहम परसों भी करेंगे। परसों इस छान्दोग्य उपनिषद के सातवें अध्याय का जो सार है, उसको समझाने का प्रयत्न करें गे। अब सीधे हो के बैंठो और मन को आत्मा में ले आओ।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

१८।६।८५

प्रवचन सं० ६०

"ॐ सर्वमाप्नोति सर्वश इति स एकधाभवति त्रिधाभवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्व-शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदिकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते।"

(छान्दो० ७।२६।२)

छान्दोग्य उपनिषद का यह सातवां अध्याय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस में भगवान सनत्कुमार ने नारद महर्षि को भूमा ब्रह्म का उपदेश किया है। विचार चल रहा है। भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद जीव के अन्दर स्वभाव से अल्पदृष्टि है, अज्ञान भरी दृष्टि है। जब तक यह जीव इस अज्ञान भरी दृष्टि

में रहेगा, कुछ नहीं सझझेगा। और जो समझेगा वह ठीक नहीं समझेगा। इस लिए इसका जन्म मरण का चक्कर चल रहा है। इस जन्म मरण के चक्कर के लिए कोई ब्रेक है नहीं सिवाय आत्मज्ञान के। आत्मविद्या के बिना इस चक्कर को रोकने वाला कोई अन्य उपाय है नहीं। कोई सिद्ध से सिद्ध भी क्यों न हो कोई इस को रोक नहीं सकता? मोक्ष तत्त्वज्ञान से ही होगा। इस लिए वेदों ने निश्चय किया **ज्ञानादेव तु कैवल्यं, ऋते ज्ञानान् नमोक्षः।** (बृहदारण्यकोपनिषत्) कैवल्य शब्द का अर्थ है यह जो शरीर बन्ध है, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर, यही बन्ध है। इन्हों से छुटना कैवल्य है। जैसे जाल में मछली फंसती है ऐसे ही यह जीव इस सूक्ष्म और कारण शरीर रूपी जाल में फंस कर मछली की तरह तड़फ रहा है। कारण शरीर यह अविद्या Ignorance है। इस कारण और सूक्ष्म शरीर से रहित हो जाता ही कैवल्य है। फिर तुम को कोई दुख नहीं बांधेगा हालत ऐसी समझो जैसे घरों में चूहे बहुत बढ जाते हैं तो उन्हें पकड़ने के लिए चूहेदानी लगाते हैं। बस वह इधर से निकला और उस में फंस गया। अब क्या करे बेचरा उस का ब्लड प्रैशर भी बढ जाता है, हार्ट अटैक भी हो जाता है, पर अब छुट्टी नहीं पा सकता इसी प्रकार यह जीव भी चूहे की तरह एक चूहेदानी में से निकला और उस में फंस गया। अब दूसरे शरीर से भी जल्दी छूटने वाला नहीं। जब काल देवता आएगा तो इस को निकालेगा। यह मूसेदानी खाली हो जाएगी। मर गया, मर गया कहने लगते हैं क्या मरा क्या जीआ कुछ पता नहीं। यह तो ऋषियों का ज्ञान अच्छा रहा कि इस खाली शरीर को जल्दी अग्नि के अर्पण कर देते हैं। समाप्त हो गया। देखने में तो लगा कि समाप्त हो गया पर आगे फिर मूसादानी रखी है। उस मे घुस गया। जब तक यह इस का चूहापन जाए गा नहीं, चूहापना माने जीवपना (अविद्या) जब तक यह अविद्या नहीं छूटेगी तब तक इसी तरह फंसता रहेगा।

ऋषि महान थे, दयाशील थे। उन्हों ने सोचा कि इस को कैसे इस अविद्या के पंजे से मुक्त करें? इस को मुक्त करने का क्या उपाय करें तो उन्हों ने विचार किया कि इस को अपने स्वरूप को समझ जाएगा तब इस जन्म मरण के चक्कर से छुट्टी पा जाएगा। जैसे स्वप्न देखने वाला स्वप्न में भयंकर शत्रु को देखकर भयभीत होता है, डरता है, चिल्लाता है। तो उस का भय कैसे दूर

होगा ? उस का कोई पक्का मित्र भी होगा तो उस का भय कैसे दूर होगा ? उस का कोई पक्का मित्र भी होगा तो उस स्वप्न के शत्रु को कौन सी बन्दूक से मारेगा ? उस के लिए तुम्हारा कोई भी हथियार काम नहीं करेगा ? केवल उस मित्र को जगाना पड़ेगा। जाग जाएगा तो स्वप्न का भयंकर शत्रु कुछ भी नहीं कर सकेगा इसी प्रकार यह जीवन भी एक लम्बी निन्द्रा ही है। यह जाग्रत का स्वप्न है। अहं अहं करते जा रहे हो। मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरा पति, यह मेरा, यह तेरा, करते जा रहे हो। मंत्र कहता है **''अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ।।** (मांडूक्यकारिका १।१६) कहते हैं यह जीव अनादि काल से माया निद्रा में सोया पड़ा है। सोने का क्या अर्थ है ? सोने का अर्थ कुछ नहीं समझना उल्टा समझना। जैसे सुषुप्ति में जाते हो तो कुछ नहीं समझते और अदि अर्ध निद्रा में हुए तो स्वप्न में गये तो उल्टा समझने लगे। इसी प्रकार यहां भी अनादि माया की निद्रा में जीव सोया पड़ा है। अहं अहं करता जा रहा है। या तो कुछ समझता ही नहीं। या जो समझता है उल्टा समझता है। जो है नहीं उस को समझता है और जो है उस को नहीं समझता। उस अनादि निद्रा में पड़ा २ स्वप्न देख रहा है। मैं पुत्र हूं। यह मेरे पिता हैं। यह मेरी पत्नी है। मैं इसका पति हूं। यह मेरा भाई है। इसी तरह स्वप्न की कल्पना में पड़ा है जैसे ही आंख खुल गई, आंख खुल जाने का मतलब इस माया की निद्रा से उठ जाना ही है। आचार्य कहते हैं। कि जीवन में सब से बड़ा पुरूषार्थ यही है। यही धर्म है। जो इस माया की निद्रा से उठाने वाला बुद्धिमान आचार्य है वो महान पुण्य कर रहा है। वह परम कारूणिक महान करूणाशील है। वह इस आत्मा के स्वरूप का व्याख्यान करता है। वेदान्त के गूढ रहस्य को समझाता है कि बेटा उठो, इस माया निद्रा से जागो। **''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।** (कठोपनिषद् अ २।३।२४) इस प्रकार आचार्य जब उसको स्वरूप बोध देगा तो यह समझेगा। **''अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा''** जीव जब स्वरूप बोध में आएगा तो अपने को अज समझेगा। अरे मेरा तो जन्म कभी हुआ ही नहीं। यों भी समझो मानलो कोई हमारे पिता बन गये कोई मां बन गई। परन्तु माता पिता कब बने ? तुम थे

तब बने ? कि तुम नहीं थे तब बने ? रही बात कि तुम को रहने के लिए खोली ही चाहिए थी। वह किराये पर मिल गई। इस शरीर को एक खोली ही समझो। छोटा सा room समझो। बड़े २ शहरों में बड़ी जगह मिलनी तो मुश्किल होती है चलो एक छोटा सा रूम ही हमें दे दो। जब तुम रहते हो तुम्हारा जन्म क्या हुआ ? यह जो तुम्हारा room है कौन भला ? यह शरीर। इस शरीर का जन्म हुआ। किन्तु इसका जन्म भी तब हुआ जब तुम वहां बैठे रहे। यदि तुम कहीं खिसक जाते तब ? तब होता जन्म ? यदि वह जीव ही खिसक जाए किस का शरीर बनेगा ? इस लिए कहा कहा यह आत्मा 'अज' है। और अनिद्रं कहा। निद्रा माने अविद्या निद्रा नहीं अविद्या नहीं। और अविद्या की छोटी बहिन स्वप्नावस्था वह भी नहीं। तब तो "अद्वैतं बुध्यते तदा" इस आत्मा के अद्वैत स्वरूप को समझ जाता है।

एक बेटा था। बडा अच्छा था। बाप उस से भी अच्छा था। उस ने सोचा कि मैं कब तक जीऊंगा। पता नहीं यह प्राण कब ठंडा हो जाए और यह सारा धन जो मैं ने इतनी मेहनत से कमाया है। बेटे के हाथ में आएगा और यह तो इस धन को उडा देगा। सोच विचार कर उस ने दस पन्द्रह मन सोना खरीदा। पुराने जमाने में सोना ही धन होता था। यह कागज के नोट नहीं थे। उस सोने का एक संन्दूक सा बनवा लिया और ऊपर से काली पालिश कर दिया। उस बक्से को दस बीस हाथ जमीन के नीचे गाढ दिया। और बही में लिख दिया कि अमुक कमरे के अमुक कोने में जमीन में बीस हाथ नीचे बक्से में सोना चांदी रखा है। कभी आपत्ति आवे तो निकाल लेना। समय आने पर सेठ तो मर गया। और बेटा पक्का सेठ बन गया। मस्ती से घूमने लगा कभी लंदन तो कभी अमेरिका। लक्ष्मी किस के पास रहती है। लक्ष्मी को विष्णु हजार आंख से देखता है तब उस के पंजे में रहती है। तुम दो आंख से देखोगे तो फिसल जाएगी। कहोगे महाराज हजार आंख कहां से लावें ? अरे यह हजार प्रकार की वृत्तियां क्या हैं यह सब आंखे ही हैं तुम्हारी। बुरी वृत्तियों को काटो, दबाओ और अच्छी वृत्तियों से रक्षा करो लक्ष्मी की। तो इस प्रकार धीरे २ उस की सम्पत्ति नष्ट हो गई। और बुरी हालत हो गई। तब मुनीम से कहा कि बही में खोजो कहीं लेना देना। मुनीम ने खोज की तो एक बही में वह लिखा हुआ मिल

गया कि अमुक कमरे में अमुक कोने में बक्से में सोना रखा है। खुदाई करवाई तो बक्सा तो मिल गया। पर सोने तो मिला नहीं। लडका दुखी हो रहा था कि कि इतने में ही पिता के एक मित्र आ गये। उस से सब बात की कि बक्सा तो है पर उस में सोना वोना कुछ नहीं। उस ने कहा कहां है? दिखाओ। बूढे ने ध्यान से देखा बक्से को एक जगह से घिसा तो सोना दीख गया। बस उस ने लडके को समझाया कि बक्से के अन्दर सोना नहीं है यह बक्सा ही सोना है। बही में भी यह तो नहीं लिखा कि बक्से के अन्दर सोना रखा है बल्कि यह लिखा है कि बक्से में सोना है। इस प्रकार उसे धन मिल गया और अब वह समझदार भी हो गया। इसी प्रकार यह शरीर ही वह बक्सा है इस में सत्‌चित्‌ आनन्द स्वरूप भर कर रखा है।

श्रुति कहती है यह आत्मा ही आनन्द स्वरूप है। मुमुक्षु इस की खोज करे। आनन्द की खोज बाहर मत करो। जीव बाहर ही भटकता रहता है। जब बाहर ही भटकता रहेगा तो सुख कहाँ पायेगा। अन्दर प्रवेश ही नहीं करता तो वो आनन्द इस को कहाँ से मिलेगा। श्री मद्‌भागवत में नवधा भक्ति में शरणागति भी बताया है। मुमुक्षु शरणागति भी प्राप्त करे। श्वेताश्वेतर उपनिषद का मंत्र भी इसे स्पष्ट करता है "**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥**" श्वेताश्वतरोपनिषद् अ– ६।१८) तं ह आत्मदेवं वो जो आत्मदेव है जिस ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया। महान वेदों की रचना की और इस के हाथ में दिया कि इन का प्रचार करो। कैसा है वो आत्मदेव 'बुद्धि प्रकाशं' बुद्धि को प्रकाश देने वाला है। ऋषि प्रतिज्ञा करता है "मुमुक्षुर्वै" भगवान हम मुमुक्षु हो गये हैं मुमुक्षु बन कर आप की शरण में आए हैं। मनुष्य में तीन चीजे आना चाहिए। ज्ञान आना चाहिए ध्यान आना चाहिए और कर्म आना चाहिए। ध्यान माने उपासना। प्रजा के अन्दर जब ज्ञान ठीक होगा ध्यान ठीक होगा, कर्म ठीक होगा तो तुम्हें किस बात की चिन्ता होगी? चिन्ता तब आती है जब मनुष्य ज्ञान को बिगाड देता है। ध्यान को बिगाड देता है, कर्म को बिगाड देता है। और यह चिन्ता हिमालय जैसी विशाल बन कर आती है। इस से हम बच नहीं सकते। इस लिए

सत्सङ्ग, शास्त्र और बुद्धिमान आचार्य ज्ञान दाता जो गुरू है उस के द्वारा चित्त के अन्दर निर्मल तत्वज्ञान को धारण करे। ध्यान को ठीक करे। कर्म को ठीक करे।

मुमुक्षु और बुभुक्षु। मुमुक्षु माने मोक्ष की इच्छा वाला। बुभुक्षु माने भोग की इच्छा वाला। जो भाग्य के भोग में संतुष्ट रहने वाला है, जो सहज आ रहा है उस में संतुष्ट है, उस का नाम मुमुक्षु है सारी दुनियां के भोग हमारे लिए नहीं हैं। हम पकडेंगे भी तो कहाँ तक? अपने शरीर को ही देखो, कितना प्यार से पकडे हैं हम किन्तु यह अपना पल्ला छुडा रहा है कि नहीं। छोड भाई मुझको, छोड भाई मुझको। बचपन आया इस का, छूट गया। कुमारावस्था इस की छूट गई। और जवानी? धीरे २ छूट रही है। बुढापा आया। इस शरीर ने पकड लिया। तो वह पल्ला छुडा कर चला गया। कहने लगे मर गया। क्या मरा और क्या जीआ? इस लिए विवेकशील मुमुक्षु इस आत्मा के स्वरूप को समझे। यहाँ भगवान सनत्कुमार नारद को इस आत्मतत्त्व का उपदेश कर रहे है। कहते हैं यह आत्मा 'भूमा' है। इस भूमा ब्रह्म को समझो। आत्मा ही प्राण है। आशा भी आत्मा से ही है। यह स्मृति भी इस चेतन से ही है। इस स्मृति के बारे में पहले भी व्याख्यान कर के आए हैं। यह स्मृति ही लोक जीवन है। लोक जीवन के सारे सम्बन्ध, यह पिता है, यह पति है, स्मृति से ही है। कहते हैं, हे नारद यह स्मर आत्मा से ही है। आत्मा से ही आकाश है। आत्मा से ही तेज है। जो सब पहले कह आये हैं उसी का सूत्र रूप से व्याख्यान कर रहे हैं। आत्मा से ही अन्न हुआ। आत्मा से ही बल है। आत्मा से ही विज्ञान है। आत्मा से ही ध्यान है। आत्मा से ही चित्त है। आत्मा से ही नाना प्रकार के संकल्प हो रहे हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि यह सब कुछ आत्मा की सत्ता में ही भास रहा है।

हे नारद वो आत्मा भूमा ब्रह्म है। इसे देह परिछिन्न मत समझो। यह मत समझो कि यह आत्मा इस चमडे के बैग में बन्द है। नारद ने पहले अपनी विद्याओं की list दिया था। कहते हैं तुम ने केवल शब्द को पकडा है। एक मां बडी चतुर थी। बेटे ने कहा मुझे दूध पिलाओ। मां ने झट से गौ का स्तन उस के हाथ में पकडा दिया। कहा पीले बच्चा छोटा था। दूध निकालना तो जानता

नहीं। कैसे पीयेगा ? इसी तरह यह वाक्धेनु है। विद्वान इस वाणी से जो चाहे निकाल सकता है। यह काम धेनु है। यह वाणी भोग भी देती है और मोक्ष भी देती है। किन्तु मोक्ष में जाने के लिए उस रूप में वाणी को पकडो। शब्द में मंत्र है। यह मंत्र भी आत्मा से ही है। कर्म भी आत्मा से ही है। यह जो कुछ नाम रूप भास रहा है इस आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। ''वो आत्मा ब्रह्म मैं हूं''। यह तत्त्व है। इस तत्त्व में मन को डुबाओ। इस लोक जीवन में भी जहां मन को देते हो वहीं से कुछ पाते हो। जहाँ २ मन दिया वहीं से कुछ पकड कर ले आए। इस प्रकार निर्लेप नहीं रह सकते। यहाँ कहीं से शोक ले आए। कहीं से मोह ले आए। कुछ न कुछ लेप करते रहते हो इस लिए निर्लेप नहीं रह सकते। इस लिए मुमुक्षु सावधानी से अपने जीवन का फैसला करे। फैसला तो करना ही है। जब तक जीना तब तक सीना। यह कर्म गोदडा है। एक रजाई बन रही है जिस को हम जन्म जन्मान्तर तक ओढेंगे। इस लिए मुमुक्षु सावधान रहे।

मंत्र इस विद्या की प्रशंसा में कहना चाहता है ''न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखतां'' 'पश्यति इति पश्य' पश्य जीव को कह रहे हैं। जो देहाभिमानी जीव है वह पश्य है। श्रुति इस जीव को यहां पश्य कह रही है। जो इस आत्मा को ऐसा व्यापक तत्व देखेगा वह मृत्यु को नहीं देखेगा, रोग को नहीं देखेगा। दुख को नहीं देखेगा। सारे के सारे प्राणी मृत्यु से परेशान हैं। मृत्यु का भय सब को लगा हुआ है। तो यहां पर कहते हैं यह जो अमृत विद्या है यह मृत्यु के भय से इस को मुक्त कर देगी। 'न रोगं' किसी रोग को भी नहीं आने देगी। इस का अर्थ यह है कि प्रारब्ध का रोग तो आएगा। ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी। ज्ञानी होने का मतलब यह नहीं कि प्रारब्ध कर्म तुम्हे छोड देगा। घिसाई तो करनी पडेगी। यह प्रारब्ध कर्म क्या है ? इसे कूचा समझो। जैसे सोने का बर्तन बाप दादा के जमाने का रखा हो। तो उसे साफ करने के लिए उसे कूचे से रगड कर साफ करना पडता है। ऐसे ही यह प्रारब्ध भी तुम्हे ऐसे ही घिस कर साफ करता है। ज्ञानी कहता है कि तू अपना काम कर तेरा विषय तो ब्रह्म है। कर्म भोग से उसमे कोई कमी नहीं पडने वाली। इस लिए रोग शोकादि से ज्ञानी घबराता नहीं। कहता है तुम भी पडे रहो।

दृष्टान्त है कि एक संत थे। एक राजा उन का शिष्य था। एक दिन वह राजा संत से मिलने आया। संत को मलेरिया बुखार आ रहा था। राजा गुरू के दर्शन करने आया। और गुरू महाराज को बुखार आ रहा था। संत ने सोचा कि इतने दिनों में भक्त आया है उस से बात चीत तो करनी चाहिए। बुखार को रजाई में रख दिया। ज्ञानी संकल्प शक्ति से सब कुछ कर सकता है। उस में इतनी सामर्थ्य हो जाती है। संत बाहर आकर राजा से बातचीत करने लगे। उधर रजाई फट् फट् कर रही है। बुखार उस के अन्दर कूद रहा है। राजा हैरान हो रहा है। सोचता है पूछूं कैसे? राजा ने पूछ ही लिया कि महाराज रजाई में क्या रखा है? संत बोले रजाई में बुखार रखा है। बुखार शरीर में था। तुम मिलने आए। मैंने सोचा तुम से ठीक से बात कर सकूं। इस लिए बुखार को इस में रख दिया। श्रुति कहती है "स सर्वोभवति" ज्ञानी में इतनी शक्ति आ जाती है। वह रोग शोकादि से कहता है तुम भी पडे रहो। क्यों कि उस का दृढ निश्चय हो जाता है "असङ्गो ह्ययं पुरूषः।" यह पुरूष असङ्ग है। यह ज्ञान सारे शोक मोह को खा जाता है। इस प्रकार यह दुखों से मुक्ति पा जाता है।

इस सत्र में यह ज्ञान चर्चा चली। आप सब ने बडी श्रद्धा से सुना। हमारा आशीर्वाद तो आप सब के लिए है ही। ऐसे ही श्रद्धा से आप लोग आगे बढते रहो। यहां आश्रम में हमारा विचार है आप सब लोग सप्ताह में एक दिन इकट्ठे होकर सत्सङ्ग करते रहे। मंगलवार या शनिवार जो भी चाहो आप लोग निश्चय कर लें। हमारे प्रिय शास्त्री जी आप सब को मार्गदर्शन करते रहेंगे। इति

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

१९।६।८५

प्रवचन सं० ६१

"ॐ तदेष श्लोको... ... . इत्याचक्षते"

(छान्दो० ७।२६।२)

श्लोको मंत्रः यह मंत्र इस बात की व्याख्या करता है। "पश्यः जीवः पश्यति विविधान् अर्थान्" जो नाना प्रकार के अर्थों को देखता है। इन अर्थों में कहीं शोक उत्पन्न होता है, कहीं मोह उत्पन्न होता है। यह नाना प्रकार की

वृत्तियों को धारण करने वाला जीव पश्य कहलाता है। अनादि अनन्त काल से इस पश्य का जन्म मरण दीख रहा है। जरा आंख बन्द कर के देखो तो कहना पडेगा कि जितना पुराना यह संसार है, हमारा जन्म मरण भी उतना ही पुराना है। कभी महान पुण्यों के द्वारा महान लोकों की, स्वर्गादि दिव्य लोकों की प्राप्ति हुई और कभी तामस भोगों के द्वारा यह पशु पक्षी और नरक में भी गया। मोक्ष में तो गया नहीं। क्यों कि यदि मोक्ष में गया होता तो श्रुति कहती हैं न स पुनरावर्तते 'न स पुनरावर्तते' मोक्ष में जाने के बाद पुनः लौट कर नहीं आता। गीता में भी कहा "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"। गत्वा शव्द का अर्थ कहीं जा कर के आना नहीं। गत्वा माने ज्ञात्वा। जब यह इस तत्त्व को समझ लेता है "न निवर्तन्ते" तो पुनः जन्म नहीं लेना पडता। पुनः इस संसार में नहीं आएगा। "तद्धाम परमं मम" भगवान कहते हैं यही हमारा परमधाम है, परम स्वरूप है। धाम शव्द का अर्थ यहां स्वरूप समझो। यह जन्म मरण का प्रवाह बन्द होने का एक मात्र साधन यह उपनिषद् विद्या है। जिस विद्या को ब्रह्म विद्या, आत्म विद्या कहते हैं। और कोई विद्या नहीं जिस के द्वारा इस जन्म मरण को ब्रेक लगावें। इस लिए मंत्र स्पष्ट करता हैं "न पश्यो मृत्युं पश्यति" ब्रह्मविद्या के द्वारा जब यह जीव सर्वभाव में आ जाएगा तो मृत्यु के भय से मुक्त हो जाएगा। भूमा भाव में पहुंच कर अपने को सर्वात्म भाव में जान लेता है। वह भूमा जगदात्मा है। वह एक ही रूप है। जैसे महाकाश है इस महाकाश में यह वायु तेज जल पृथ्वी समीभूत नाच रहे हैं। और इनके अन्दर हमारा खाना दाना तयार हो रहा है। किन्तु यह महाकाश अपने स्वरूप में एक ही है। इसी प्रकार यह चेतन भी, जो असली तत्त्व है एक ही है। वही सव का जीवन है।

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" एक ही देव, परमात्मा सब की अन्तरात्मा है। उपनिषद का यह मंत्र इस वात की स्पष्ट करता है, कि ज्ञानवान् सत्सङ्गी अपनी इस आत्मा से प्यार करता है और यह प्यार अपना स्वरूप हो जाता है। जिस स्थूल शरीरके अंहकारको पकड कर अपने को भक्त समझता है इस शरीर अहंकार के हटते ही वह भगवान हो जाता है। उपाधिका भेद हटते ही वह सर्वरूप हो जाएगा। अविद्या सहित वुद्धि ही दीवार है। इस

अविद्या सहित बुद्धि के अन्दर चेतन का आभास आते ही अहं अहं करने लगा। अब यदि श्रद्धादि गुण होंगे तो भक्त बन जाएगा और यदि श्रद्धादि गुण युक्त बुद्धि नहीं है तो नास्तिक भाव में चला जाएगा। कहेगा भगवान को किस ने देखा है। व्यर्थ में लोग भगवान भगवान चिल्ला रहे हैं। **"महापापवते राजन् ज्ञानयज्ञो न रुच्यते"** ऋषि कहते हैं हे राजन जब जीव के अन्दर महान पाप होते हैं तो "ज्ञानयज्ञो न रुच्यते।" हम यह विचार जो कर रहे हैं यह ज्ञान यज्ञ है। एक यज्ञ अग्नि का होता है जिस में घृत तिल जौ चावल आदि की आहुति दी जाती है। यह भूत यज्ञ होता है। ज्ञान यज्ञ में चित्त के शोक मोह की आहुति दी जाती है। जीव के अन्दर जो अनावश्यक विकार हैं इन की आहुति दी जाती है। काम बहुत बुरा है लोभ बहुत बुरा है। क्रोध बहुत बुरा है। परन्तु ऐसा भी मत समझो कि यह सब विकार बुरे ही हैं। लोभ मोहादि अमुक मात्रा में रहें तो बहुत अच्छे भी हैं पर मात्रा से अधिक बढ जाने से यह खराब हैं। जैसे शरीर की गर्मी, ताप, ९८.४° आवश्यक है। यदि यह कम या अधिक बढ जाए तो गडबड है। यह ताप जब कम हो जाए तो भी मृत्यु का भय और बढ जाए तो भी भय है। ठीक मात्रा की heat तुम्हारा जीवन है। इस मृत्यु रूपी heat को दूर करो।

इस मनुष्य प्राणी को हर चीज मीटर में बध हुई चाहिए। इस लिए चित्त के जो विकार हैं काम क्रोध लोभ मोहादि इन सब को मीटर में रखो। थोडा सा क्रोध जीवन में जरूरी है। जैसे बासी दाल आदि को छौंक लगा कर बढिया ताजा कर लेते हो ऐसे ही यह क्रोध भी जीवन में छौंक है इस से जीवन ताजा हो जाता है। देखते नहीं पति पत्नी कभी परस्पर टकरा जाते है। क्यों ? प्यार थोडा कम हो गया, मलिन हो गया तो उस को सान पर चढा कर स्वच्छ कर दिया। ज्यादा नहीं लडे। थोडा लडने में कोई दिक्कत नहीं। जैसे ज्यादा गर्मी भी ठीक नहीं। विकार को मीटर में रखो। थोडा मोह भी चाहिए। अरे बेटा बेटी हैं तुम्हारे तो तुम उन्हें प्यार नहीं करोगे तो कौन करेगा ? पडोसी करेगा क्या ? ऐसा मत सोचो कि परमात्मा ने भांग पी लिया था और अन्धाधुन्ध इन विकारों की रचना, सृष्टि कर डाली और हम उस जंगल में फंस गये। और दुःखी हो रहें हैं। यह सब अपनी जगह ठीक हैं। बस हम जरा बुद्धू हो गये।

इस लिए हम ने विचार ही करना वन्द कर दिया। जब जीवन के वारे में हम बिचार ही नहीं करेंगे। भोगों को तो हजार ग्राँख से देखोगे ग्रौर ग्रसली जीवन के बारे में ग्रचेत होकर बैठोगे तो सोचो क्या होगा ? इस लिए मुमुक्षु सावधान से चले। इस लिए कहा जो महान पापी हैं, महान पापी कौन ? बुरा कर्म करने की प्रेरणा तो हो रही है, दुष्कर्म करने के संस्कार तो जागरहे हैं, परन्तु सत्कर्म की ग्रोर मन देना, इधर प्रेरणा ही नहीं हो रही। Black out हो रहा है। एक बात ग्रौर समझो ग्रन्तर्यामी प्रेरणा उस को मिलेगी जिस की बुद्धि सात्विक होगी। सद्विचार में होगी। सत्कर्म में होगी, सद्गुण में होंगी उसी को ग्रन्तर्यामी की प्रेरणा होगी। पापी को ग्रन्तर्यामी की प्रेरणा नहीं होती। उस को तो पाप संस्कारों के ग्रनुसार बुद्धि के ग्रन्दर बुरी बातों की प्रेरणा होती रहती है। चोर को चोरी करने की इच्छा होती है। जैसा संस्कार भरोगे वैसी ही इच्छा होगी। वुद्धि के ग्रन्दर पाप संस्कारों के ग्रधीन प्रेरणा होना पाप कर्म का ही प्रभाव है। ग्रौर बुद्धि के ग्रन्दर परमात्मा ग्रन्तर्यामी की प्रेरणा का बोध होना पुण्य कर्म का प्रभाव है। इस लिए मुमुक्षु ग्रपने इस जीवन को ऐसा समझे कि हमारा यह जीवन लोक कल्याण के लिए भी हो। जिस देश में हम हैं जिस जाति में, जिस परिवार में हम हैं। उस जाति का, उस परिवार का, उस समाज का, उस राष्ट्र का भला भी हम को करना है। गाय का दूध तो हम पियें ग्रौर घास पड़ोसी खिलाए ? ग्रांख बन्द करने का नाम मोक्ष नहीं है। जीवन को all round रखो। ठीक तत्त्व दृष्टि को ग्रपने ग्रन्दर जाग्रत करो।

एक बूढा था। चार बेटे थे। पिता बडा उदार था, दाता था। पत्नी मर चुकी थी। बेटों को बुला कर सब बांट दिया। गहने भी वहुग्रों में बांट दिए। ग्रौर बेटों से कहा ग्रब सब बेटों के यहां रहेंगे। दूसरे दिन दूसरे के यहां। ग्रब कुछ दिन तो ऐसे चला। पर बूढे को ग्रनुकूल नहीं रहा तो बेटो को बुला कर कहा कि देखो। हम बूढे हो गये हैं रोज २ इधर उधर ग्राना जाना मुश्किल है। बिस्तर तो एक जगह होना चाहिए। तुम लोग बारी २ से खाना दे जाना। बेटों ने कहा ठीक है। ग्रब बेटे तो दिन भर काम पर चले जाएं ग्रौर बहूएं भी मस्ती में थी। कभी भोजन समय पर मिल जाए ग्रौर कभी नहीं। एक दिन मिला ही नहीं। बुढ्ढा दो बजे तक ताकता रहा। बूढे की हालत खराब होती गई। इधर

एक संत इस के बडे प्रेमी थे। वह आ गये तो लोगों से पूछा उम सेठ का क्या हाल है ? लोगों ने बताया कि उस का तो बुरा हाल है। संत मिलने आए तो बूढे ने बडे दुःख से कहा बस प्राण नहीं निकले। बाकी तो कोई कसर है नहीं। संत ने कहा घबराओ नहीं। युक्ति से ही मुक्ति है एक बडा सा बक्सा लेकर उस में ईट पत्थर भर कर अपनी खाट के नीचे रख दो। थोडे से चांदी के रूपये लेकर उन को समय २ पर बजाते रहो। कहना कि यह बक्सा एक मित्र के यहां रखा था अब मैं ने मंगवा लिया है। मैं अब हरिद्वार जाऊंगा। कुछ पुण्य कार्य करूंगा। बेटों ने देखा तो सोचा अभी तो पिता जी के पास बहुत धन है। बस सब कहने लगे नहीं पिता जी हम आप को कहीं जाने नहीं देंगे। हमारी बद-नामी हो जाएगी। इस को कहते हैं "योगः कर्मसु कौशलम्" अब तो बहुएं भी रोज बढिया २ माल बनाकर लाने लगीं कोई खीर ला रही है तो कोई माल पूआ। खाते २ एक दिन हवा निकल गई। बेटों ने बक्सा खोला तो कुछ भी नहीं निकला सब सिर पीट कर रह गये। यह संसार है सब अपना २ भला चाहते हैं। जब यहां आए अकेले हैं तो जाना भी अकेला ही है। जाना अकेले है तो जीना भी अपनी अकल से अकेला ही है। दूसरे हैं देखने के लिए। इस लिए मुमुक्षु बडी सावधानी से अपने मन को इस अखंड तत्त्व की ओर खीचे।

भगवान सनत्कुमार कहते हैं हे नारद यह जो आत्मविद्या है इसे मुमुक्षु अपने हृदय में धारण करे। जैसे शीशे में अपना मुख देखते हो। पर यदि शीशा साफ नहीं होगा तो मुंह नही दीखेगा। मुमुक्षु अपनी बुद्धि को निर्मल बनाता रहे। यह बुद्धि रूपी दर्पण ही है जिस में आत्मा का साक्षात्कार होगा। "अयमात्माऽहमस्मि" कूटस्थः साक्षी देहादिसंघातविलक्षणः, विलक्षण माने जुदा। बुद्धि का साक्षी बुद्धि से न्यारा। **बृहदारण्यक उपनिषद में मंत्र है "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः, किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्"** मंत्र कहता है रे बेटा यदि तू जीवन में इस तत्त्व को समझ जाएगा, इस आत्मा को यदि तू जान जाएगा तो "किमिच्छन्कस्य कामाय शरीर मनुसञ्ज्वरेत्।" तुम्हारी क्या इच्छा अपूर्ण रहेगी, क्या कामना रह जाएगा। फिर तू किस लिए शरीर को धारण करेगा। समस्त इच्छाएं, समस्त वासनाएं क्षय हो जाएंगी। यद्यपि अहं अहं रूप से तो अपने को आत्मा ही जान रहे है पर

इस के असली स्वरूप को नहीं समझ रहे। शरीर रूप से ही अपने को आत्मा समझ रहे हैं। आत्मा के शुद्ध सत्‌चित् आनन्द स्वरूप से नहीं जान पारहे। यह जो तुम्हारी बुद्धि है, इस बुद्धि के अन्दर निर्मलता को पवित्रता को उत्पन्न करो। यह पवित्र बुद्धि ही तुम को आत्मा साक्षात्कार करायेगी। गीता में भगवान कृष्ण कहते है **"यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च में न प्रणश्यति ।।"** (गीता अ. ६।३०)

इस शरीर में ही देखों अंग २ में चेतन का मान हो रहा है। मालूम पडता है कि आत्मा शरीर में हैं, परन्तु विवेक करने पर मालूम पडा कि यह शरीर ही आत्मा में हैं। इस शरीर को उठा कर कौन चल रहा है? अच्छा यह बताओ यहां से पशुपति जाना हो और किसी के कन्धे पर बैठ कर जाओ तो उस को कितना रूपया देना पडेगा? कम से कम आधा घण्टा उस की पीठ पर चढ कर जाने के लिए दस रूपया तो देना ही पडेगा। तो सोचो जो तुम को चौवीसो घण्टे उठाए २ घूम रहा है। कहते हैं भगवान हम को क्या देता है? क्या करेगा भगवान? तुम को पापड बेल कर खिलाएगा? जहाँ इस चेतन ने इस शरीर को छोडा फिर कौन तुम को पहचानेगा? कोई कहेगा क्या कि यह मेरे पिता हैं? मेरे भाई है? मेरा वेटा है? बताओ कितनी मेहनत कर रहा है भगवान तुम्हारे लिए? पर उस ने कभी कुछ मांगा तुम से? जो तुम्हारे लिए इतना कर रहा है, इतना उपकार कर रहा है तुम जरा सी उस की स्तुति कर लोगे वाणी से या उस की वाणी को अपने कान से सुन लोगे तो क्या बिगड जाएगा तुम्हारा? उस का जरा सा ध्यान करने से तुम्हारे हृदय में विलक्षण शान्ति आएगी। फिर तुम को अशान्ति तंग नहीं करेगी। अशान्ति तो तभी तंग करती है जब तुम उस की ओर ध्यान देते हो। भोगों में शान्ति तो आती है पर उस की बगल में अशान्ति भी बैठी होती है। परन्तु जब परमात्मा का ध्यान करोंगे तो जो जो शान्ति आएगी उस के साथ अशान्ति नहीं होगी। शान्ति की छोटी बहिन है अशान्ति। अन्तरात्मा का ध्यान करोगे तो अशान्ति भाग जाएगी, कहेगी मेरी ओर तो तुम देखते ही नहीं फिर मैं क्या करूं तुम्हारे पास आकर? इस लिए भगवान कहते है "यो मां पश्यति सर्वत्र" मेरे को सब में देखे और सब को मुझ में देखे, इस के लिए दृष्टान्त तुम्हारा यह शरीर ही है और कोई दृष्टान्त नहीं है। इस व्यापक

तत्त्व को जानने के लिए। यह शरीर आत्मा में है और आत्मा शरीर में ओत प्रोत है। एक वात और समझो, यह शरीर आत्मा को उठा कर चल रहा है पर इस के चलने का पैर कौन सा है? अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु: स श्रृणोत्यकर्णः। मंत्र कहता है तुम्हारा हाथ भी कोई नहीं, तुम्हारो पैर भी नहीं किन्तु तुम इतने शक्ति शाली हो कि तुम ने सव को पकड रखा है। जैसे कोई २ पिता बडा बलवान होता है। वडा परिवार है। वेटों की संख्या कम से कम सात आठ रखो। घबडाओ नहीं. पुराने जमाने का पिता है। ज्ञान से भी वडा रहा। सब वेटों को अपने पंजे में रखता है। सव कमा कर लाते हैं और वाप के सामने रख देते हैं। बाप सव को महीने के महीने खर्चा देता है। ऐसा ही यह परमात्मा भी है किसी को हाथ से पकडता नहीं पर सब को पकडा हुआ है। जब यह छोड देगा तो शरीर गिर जाएगा।

ऐसा विचित्र तत्व है यह। इस लिए बुद्धिमान इधर मन को देता रहे। जगत के पापड़ तो बेलने हैं। किसी के वेटा वन के बैठे हो, किसी के बाप वन के बैठे हो तो कर्तव्य तो निभाना ही पडेगा। किन्तु सत्य को समझो कि इस के विना कौन वेटा है? कौन वाप है? इस के विना कुछ होने वाला नहीं। इस लिए इस आत्मा से दोस्ती करो। यह सत्सङ्ग शास्त्र और बुद्धिमान आचार्य का क्या काम हैं? उस आत्मा से दोस्ती कराना। यह उस आत्मा से दोस्ती करवाते हैं पर किन की? जिन के सद्विचार हैं। देखो! सारी दुनियाँ ने एक दिन में समझना नहीं। जैसे मान लो कोई कॉलेज वनाया। तो क्या उस कालेज में एक ही साथ सव एम० ए० हो जाएंगे? इस लिए मुमुक्षु धीरे धीरे आगे बढ़ता है। घवड़ावे नहीं। मंत्र आगे कहता है "**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति।।**" (छांदोग्योपनिषद् – अ – ७।२६।२) आहृयते इति आहारः जो हम अन्दर ले ते हैं वह आहार है। आहार शुद्ध है तो सत्त्व शुद्ध है। तो पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा, बाहर जो विषय हैं, यह पांच प्रकार की जो प्रवृत्ति है, बाहर से विषयों को अन्दर खींच रहे हैं। यह आहार है। यह प्रवृत्ति शुरु होनी चाहिए। अगर प्रवृत्ति शुद्ध होगी तो तुम्हारे अन्दर शोक नहीं आएगा। मोह नहीं आएगा। शान्त प्रवृत्ति में तुम्हारे अन्दर आनन्द ही आनन्द है। चित्त शुद्ध रहेगा तो स्वरूप का भान होगा। इस लिए कहते हैं "आहारशुद्धौसत्त्व शुद्धि"। चित्त निर्मल रहेगा। क्रोध पूर्ण चित्त नहीं

रहेगा। चित्त में शान्ति रहेगी तो "ध्रुवास्मृतिः" स्मृति ध्रुवा रहेगी। ध्रुव स्मृति माने सत्य स्मृति बनी रहेगी।

मान लो एक विशाल भट्ठे में भरी हुई है। और एक अग्नि का कण है उस कण में और माल डाल दिया जाए तो फिर देखो कि कितनी विशाल अग्नि हो जाती है। अब यदि अग्नि का वह्नि कण कहे कि मैं अग्नि हूं तो वह झूठा बोलता है या सच कहता है? है तो वो अग्नि ही। उपाधि में छोटापन होने के कारण कण दीखता है। ऐसे ही तुम्हारे हृदय में दीखने वाला चेतन सत् चित् आनन्द भूमा ब्रह्म स्वरूप होने पर अहंरूप से कण के समान दीखता है। मन से अलग भूमा ब्रह्म है। "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" जब ऐसी भूमा ब्रह्मीभावना करेगा तो उस के अन्दर क्या शोक होगा? क्या मोह होगा? एकत्वभाव में पहुंच कर शोक मोह से मुक्त हो जाएगा।

"स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः" भगवान सनत्कुमार कहते हैं स्मृति सत्य हो जाएगी तब सब ग्रन्थियां, माने गांठे, जैसे लोहे को अग्नि में डाला तो लोहा अग्नि जैसा हो गया। लोहा अग्नि से मिला तो तादात्म्य हो गया। ऐसे ही यह आत्मा शरीर में मिल कर तादात्म्य हो गया। तादात्म्य भंग होना ही ग्रन्थि छुटना है। आत्मा को अनात्मा से जुदा कर दो। इस प्रकार इन गांठो का विप्रमोक्ष हो जाएगा। यह गांठे टूट जाएगी। मिथ्यात्व का निश्चय हो जाएगा।

भगवान सनतकुमार कहते हैं हे नारद तुम शोक मोह से पार होने के लिए इस भूमा ब्रह्म का ध्यान करो।

यह ज्ञान सत्र गर्मी में चलता है। हमारे गुरुजी की भी शुभेच्छा थी की यहां की जनता को कुछ लाभ मिले। प्रिय शास्त्री जी भी रात दिन प्रयत्नशील रहते हैं। घर में भी आप लोग सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहो। आध्यात्मिक संस्कार जाग्रत करते रहो। सब से बढिया खेत तो बुद्धि है, उस में शुभ संस्कार भरते रहो।

हमारी हार्दिक शुभ कामनाएं एवं शुभाशीर्वाद है। हम मन से आप सब के साथ हैं। शरीर से कही भी रहें। इति

हरिः ॐ तत्सत्

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	८, १४, १६, १८, १९	छः, द्धये, ति, तु, त्ति	छ, द्ध्ये, त्ति, नु, त्ति
३	६	श्च	श्च
४	१५, १८	रा, द्	र, त्
५	७, ७	रा, म	र, स
६	२१	मा	म
७	१६	म्हा	ह्मा
५७	२७, २७	भा, का	भ, क
१७६	पृष्ठके वाद १७३,१७४,१७५,१७६,१७७,१७८,१७९,१८०,१८१,१८२, १८३,१८४,१८५,१८६,१८७,१८८ पृष्ठांकमे १७७,१७८,१७९,१८०, १८१,१८२,१८३,१८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९,१९०,१९१, १९२ पृष्ठाँक क्रमशः संशोधन पढिएगा ।		
१८६	१६	सं० ४३	सं० ४७
१८७	१०	जैहया	जह्या
१९८	२६, २८	हात, कंट्री	हत्त, कण्ट्रो
१९९	५	र	रा
२००	२,३,६,६,६,६	दुण्तर्का:,तश,ह,ऋग्वे,न,यजुर्वे	दुस्तर्कात्,तस,हं,यजुर्वे,नं,ऋग्वे
२०२	२३	शक	कह
२०४	२५	घृतिगृही	धृतिगृहीतया
२०९	४	त्तत्वदर्शनम	तत्त्वदशंनम्
२१२	९	वहु पतिनयों	बह्वृचः: पत्न्यो
२१६	६	तृ, भि	दृ, भि
२२०	५	ष्टा	ष्ठा
२२१	४, ११	दू, त्ता	वू, ता
२२२	२१, २७	अ, को	आ, करें
२२३	६, ७,	धु, धु	धू, धू
२५५	११	पुष्प	पुण्य
२५६	१७	सर्व	सर्वं
२६७	१३	१३।६।८५	१६।६।८५

1005